ISSN NUMBER : 2455-9717

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

शिवना प्रकाशन

वर्ष : 9 अंक : 34
जुलाई-सितम्बर 2024
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

हम तो निर्जन के खंडहर हैं

बलबीर सिंह 'रंग'

हम तो निर्जन के खंडहर हैं।
जीवन का साथी सूनापन,
उदासीनता का आराधन;
प्रिय के अधरों से चिर-बंचित
वंशी के मर्माहत स्वर हैं।
हम तो निर्जन के खंडहर हैं।

इच्छाओं के बूढ़े विषधर,
हमें समझते हैं अपना घर;
जन्म-मरण के हाथों निर्मित
चल-चित्रों के मध्यांतर हैं।
हम तो निर्जन के खंडहर हैं।

नभ-चुम्बी प्रासाद रहें ये,
आजीवन आबाद रहें ये;
हम जो कुछ हैं, जैसे भी हैं,
जो भीतर हैं, सो बाहर हैं।
हम तो निर्जन के खंडहर हैं।

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

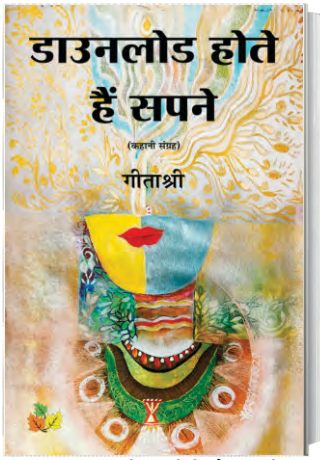

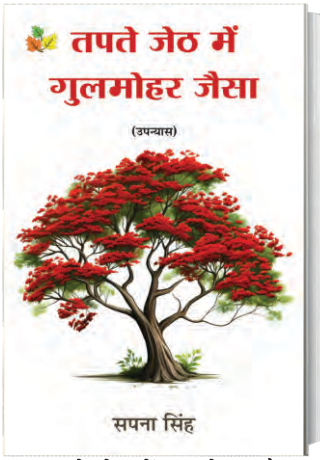

डाउनलोड होते हैं सपने
कहानी संग्रह
लेखक - गीताश्री
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

तपते जेठ में गुलमोहर जैसा
उपन्यास
लेखक - सपना सिंह
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

पन्नी
उपन्यास
लेखक - ज्योत्स्ना सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

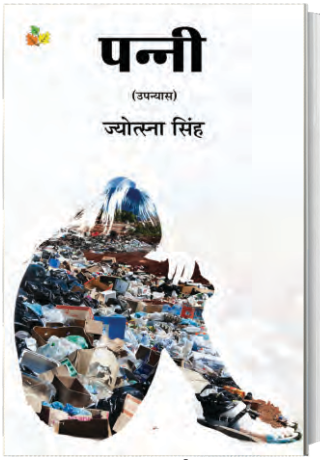

वजूद
उपन्यास
लेखक - अंशु प्रधान
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2024

अष्टछाप के अर्वाचीन कवि
कविता संकलन
संपादक - पंकज पाठक
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

मदिरा बरसे नभ से
वर्षा गीत संग्रह
लेखक - विजया भारती
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

मधुमास उतर आया
नाटक
लेखक - काशीराम सोनी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

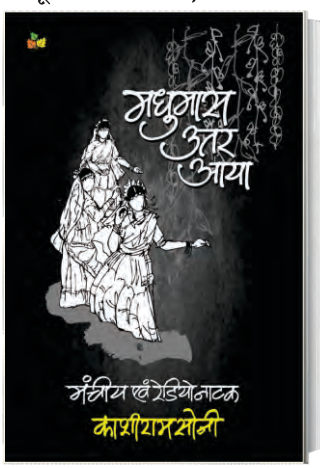

विमर्श- ये वो सहर तो नहीं
आलोचना
संपादक - शहरयार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

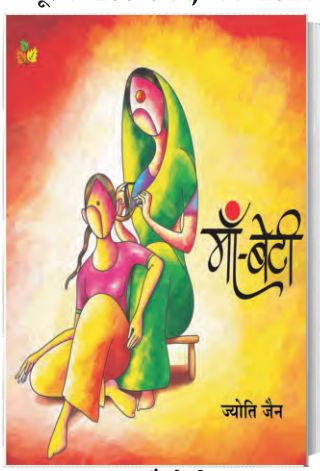

माँ-बेटी
कविता संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

दिल चाहता है
कविता संग्रह
संपादक - विनोद कुमार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

पुरवाई के झरोखे से
साक्षात्कार संग्रह
संपादक - नीलिमा शर्मा
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

रौशनी उस पार
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - ज़हरा क़रार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

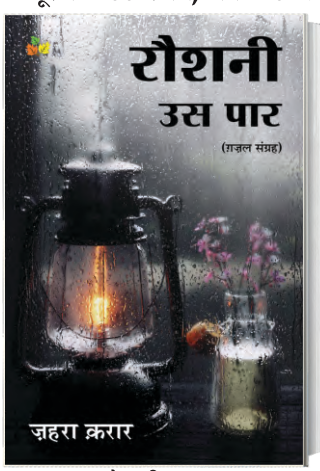

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-8959446244 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
available at amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं प्रकाशकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki
एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यावसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्य प्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 34, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2024
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

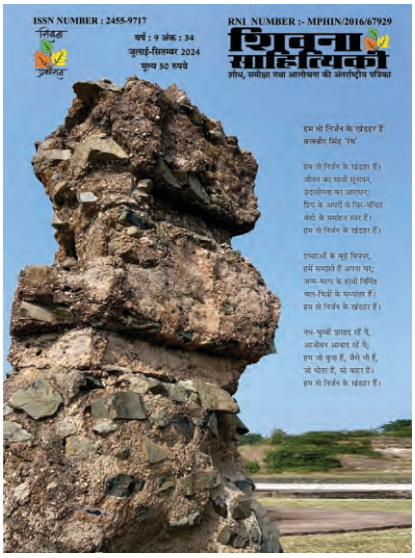

आवरण कविता
बलवीर सिंह 'रंग'

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, जोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।

इस अंक में

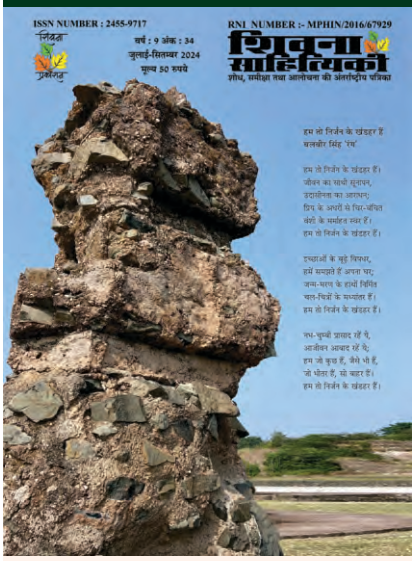

आवरण कविता

हम तो निर्जन के खंडहर हैं
बलबीर सिंह 'रंग'

संपादकीय
शहरयार / 3

व्यंग्य चित्र
काजल कुमार / 4

शोध आलेख

कठिनतर होते समय में मदन कश्यप की कविताएँ
उमाशंकर चौधरी / 5

शोध आलोचना

काँधों पर घर
समीक्षक : अमिता
लेखक : प्रज्ञा / 9

हेति सुकन्या: अकथ कथा
समीक्षक : सुमन बाजपेयी
लेखक : सिनीवाली / 12

अन्तिम नीबू
समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
लेखक : उदय प्रकाश / 15

कथा सप्तक - अनिलप्रभा कुमार
समीक्षक : डॉ. मनोज मोक्षेंद्र
संपादक : आकाश माथुर / 18

और तुझे क्या चाहिए
समीक्षक : सरोजिनी नौटियाल
लेखक : उषा राजे सक्सेना / 21

केंद्र में पुस्तक

चलो फिर से शुरू करें
समीक्षक : प्रकाश कान्त,
विजय कुमार तिवारी, अदिति सिंह भदौरिया
लेखक : सुधा ओम ढींगरा / 24

डोर अंजानी सी
समीक्षक : दीपक गिरकर,
विजय कुमार तिवारी, अनीता सक्सेना
लेखक : ममता त्यागी / 30

ऐ वहशते दिल क्या करूँ
समीक्षक : डॉ. मधु सन्धु,
जसविन्दर कौर बिन्द्रा, आकाश माथुर
लेखक : पारुल सिंह / 36

ज़ोया देसाई कॉटेज
समीक्षक : प्रकाश कान्त,
जसविन्दर कौर बिन्द्रा, रमेश शर्मा
लेखक : पंकज सुबीर / 42

पुस्तक समीक्षा

एकांत का इकतारा
समीक्षक : ज्योति जैन
लेखक : शिरीन भावसार / 49

चुप क्यों हो बसंती
समीक्षक : दीपक गिरकर
लेखक : जयंती रंगनाथन / 51

पंख से छूटा
समीक्षक : दीपक गिरकर
लेखक : प्रज्ञा पांडेय / 53

कथा सप्तक - दिव्या माथुर
समीक्षक : रेनू यादव
संपादक : आकाश माथुर / 55

नीलकंठी प्रार्थनाएँ
समीक्षक : डॉ. रंजना गुप्ता
लेखक : रघुवीर शर्मा / 57

देह-गाथा
समीक्षक : रेखा भाटिया
लेखक : पंकज सुबीर
रेखांकन : अनिता दुबे / 59

श्वेत योद्धा
समीक्षक : दीपक गिरकर
लेखक : ज्योति जैन / 61

सभ्यता के अवशेष
समीक्षक : गोविंद गुंजन
लेखक : क्रांति कनाटे / 63

मुझे पंख दे दो
समीक्षक : रमेश शर्मा
लेखक : इला सिंह / 65

नकटौरा
समीक्षक : डॉ. उमा मेहता
लेखक : चित्रा मुद्गल / 67

करवाचौथी औरतें
समीक्षक : निर्मला डोसी
लेखक : सुधा अरोड़ा / 69

संभावनाओं का शहर
समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश
लेखक : सुशील स्वतंत्र / 71

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 34,

त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2024

संपादकीय

ये सारी लड़ाइयाँ 'ईगो' के टकराव की लड़ाइयाँ हैं, 'एरोगेंस' के बचाव की लड़ाइयाँ हैं

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

पिछले कुछ दिनों से सोशल मीडिया पर हिन्दी साहित्य किसी ग़लत कारण के कारण बार-बार चर्चित हो रहा है। यह ग़लत कारण है- लेखकों के अपने आपसी विवाद, जिनके कारण वाद-विवाद का स्तर वहाँ तक पहुँच जाता है, जिस स्तर तक पहुँचने की उम्मीद कम से कम लेखकों से तो कोई भी नहीं करता है। विशेषकर भाषा के स्तर पर ये विवाद जिन कीचड़ भरे रास्तों से होकर गुज़रते हैं उससे इस बात पर भी प्रश्नचिह्न लग जाता है कि समाज को भाषा सिखाने का काम लेखक के ज़िम्मे रहता है। यहाँ किसी एक बहस की या एक विवाद की बात नहीं हो रही है, यह बात सोशल मीडिया पर जन्म ले चुकी कई सारी बहसों की और कई सारे विवादों की है। ये विवाद सोशल मीडिया जैसे एकदम सार्वजनिक मंच पर इतनी असभ्य और असामाजिक भाषा में किये जाते हैं कि निरपेक्ष होकर बाहर से देख रहे लोगों को सहसा विश्वास ही नहीं होता है कि यह सब कुछ लेखकों के बीच में चल रहा है। असल में इन विवादों की शुरुआत तो असहमति के विमर्श के रूप में, विचारधाराओं के संघर्ष के रूप में होती है, मगर यह शुरुआत तो छद्म होती है, पीछे दूसरे कई-कई कारण होते हैं। इन कारणों में व्यक्तिगत द्वेष, कुंठाएँ, अस्वस्थ प्रतिस्पर्धाएँ होती हैं। असहमति का विमर्श या विचारधाराओं का संघर्ष कोई ग़लत बात नहीं है, यह तो बहुत ज़रूरी है, इसे तो होते ही रहना चाहिए, इससे ही तो नये रास्ते खुलते हैं। लेकिन होता क्या है कि इन बहसों और विमर्शों को कोई पुराना बदला निकालने, किसी की चरित्र हत्या करने, कोई पुराना हिसाब चुकता करने का माध्यम बना लिया जाता है। एक पोस्ट किसी 'अ' के विरोध में लगायी जाती है और कई सारे वे लोग कमेंट्स की तलवारें लेकर कूद पड़ते हैं, जिनको 'अ' से कोई पुराना हिसाब चुकता करना होता है। इन कमेंट्स में इतने निम्न स्तर पर जाकर बात की जाती है कि लगता ही नहीं है कि ये साहित्य की दुनिया है। उस पर जिस व्यक्ति 'ब' ने पोस्ट लगाई है वह भी कमेंट करने वाले को भाषा की मर्यादा रखने की सलाह देने की बजाय, उत्तर में धन्यवाद, शुक्रिया आदि-आदि लिखने लगता है। इसके बाद इस पोस्ट लगाने वाले 'ब' के ख़िलाफ़ वह 'अ' अपने सोशल मीडिया पर पोस्ट लगाता है, जिसको लेकर इसने पोस्ट लिखी थी। उस पोस्ट पर वे लोग पहुँचने लगते हैं, जिनको इस 'ब' से कोई पुराना हिसाब चुकता करना होता है। एक-दो दिन में ही इतनी कीचड़, इतनी गंद मच चुकी होती है कि साहित्य-मोहल्ले की पूरी गलियों में बस ये कीचड़ और गंद ही दिखाई देती है। इतनी कि इनसे तटस्थ और निरपेक्ष होकर गुज़रने की पाँव भर जगह भी दिखाई नहीं देती है। फिर इस विवाद का एक दूसरा पक्ष सामने आता है जब दोनों पक्षों की तरफ़ से कई-कई दूसरे योद्धा भी अपने-अपने सोशल मीडिया मंचों पर इसको लड़ने लगते हैं। लड़ने लगते हैं या तो 'अ' के पक्ष में या 'ब' के पक्ष में। हक़ीक़त यह होती है कि वास्तव में ये किसी के पक्ष में नहीं लड़ रहे होते हैं, ये तो किसी के विपक्ष में लड़ रहे होते हैं, इनको असल में 'अ' या 'ब' से अपना कोई पुराना हिसाब पूरा करना होता है। असल में ये सारी लड़ाइयाँ 'ईगो' के टकराव की लड़ाइयाँ हैं, 'एरोगेंस' के बचाव की लड़ाइयाँ हैं। हिन्दी साहित्य समाज इस समय ऐसे लेखक-लेखिकाओं से भरा पड़ा है, जो अपनी नाक पर ग़ुस्से का पूरा का पूरा ज्वालामुखी लेकर घूमते / घूमती हैं, बात यहीं तक नहीं है नाक से तीन-चार इंच ऊपर भृकुटियों में और माथे पर एरोगेंस के तूफ़ानी समुद्र की लहरें हमेशा बल खाती दिखाई देती हैं। कोई ग़लती से भी ज़रा छू ले तो ग़ुस्से का ज्वालामुखी फट पड़ता है और एरोगेंस का समुद्र सूनामी ला देता है। उसके बाद बस सोशल मीडिया पर अगले कुछ दिनों तक इस ज्वालामुखी का लावा ही लावा बहता दिखाई देता है। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि साहित्य के लिए सबसे आवश्यक शर्त 'स्थित-प्रज्ञ' होना माना गया है, ऐसे में क्या इन सभी को जो अपने व्यक्तिगत कारणों के चलते पूरे साहित्य समाज को अराजक बना रहे हैं, लेखक या साहित्यकार माना जाना चाहिए..? सोचिए..? **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

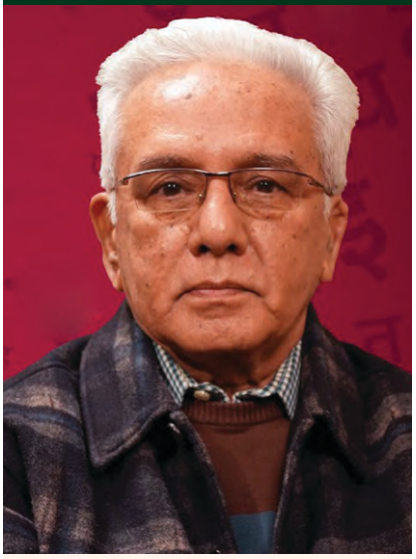

(शोध-आलेख)

कठिनतर होते समय में मदन कश्यप की कविताएँ

उमाशंकर चौधरी

उमाशंकर चौधरी
बी-364, सरिता विहार
दिल्ली-110076
मोबाइल- 9810229111
ईमेल- umashankarchd@gmail.com

मदन कश्यप की कविताओं को पसंद करने, प्यार करने का किसी के पास भी जो सबसे पहला कारण होना चाहिए वह यह कि उनकी कविताओं में अपने समय-समाज को लेकर एक ख़ास राजनीतिक जागरूकता है। एक लेखक-कलाकार के रूप में मदन कश्यप अपनी भूमिका को बख़ूबी समझते हैं और उसे अपने पूरे लेखन और वैचारिकी में शामिल भी करते हैं। साहित्य और कला की भूमिका को वे इस तरह देखते हैं-"एक कलाकार अपनी कला में व्यापक समाज की भावनाओं तथा पीड़ितजनों के संघर्षों और आकांक्षाओं को जगह देता है। अगर उसके इस कृत्य से सरकार तथा शासक समाज को चोट भी पहुँचती हो, तब भी उसे ऐसा करने का हक़ है अथवा हक़ मिलना चाहिए यानी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मतलब है शासक वर्ग के विरुद्ध व्यापकजन की भावनाओं को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता।"1 एक कवि के रूप में मदन कश्यप राजनीतिक स्तर पर इतने सजग हैं कि उनकी कविताएँ अपने आप ही इस समय के लिए प्रामाणिक साबित हो जाती हैं। साहित्य को विभिन्न स्तरों पर स्थापनाओं के प्रतिरोध में होना चाहिए, साहित्य की इस मूलभूत पहचान को अपनी कविताओं में मदन कश्यप शिदद्त से समझते हैं। इसलिए सत्ता का कोई भी चरित्र हो, उनके सामने यह बिल्कुल स्पष्ट है कि साहित्य हाशिये की आवाज़ है और उसे उनकी चिंता के साथ हाशिये पर हमेशा खड़ा होना चाहिए। इस तरह उनकी कविताएँ अपने आप ही अपने समय से इस कदर गुँथ कर निर्मित होती हैं कि उन्हें अपने समय से अलग करना संभव नहीं है। और इस तरह से वे सत्ता के चरित्र के बरक्स कविता का प्रतिपक्ष तैयार कर समानान्तर रूप से एक आख्यान तैयार करते हैं। एक ऐसा आख्यान जिससे गुज़रे बिना इस समय से गुज़रना मुकम्मल नहीं हो सकता। और इस तरह से इस कठिनतर होते समय में मदन कश्यप का अपनी कविताओं के साथ होना एक सुकून की स्थिति है। यह एक ऐसा सुकून है जिसे हर सजग व्यक्ति बहुत ही सुचिंतित रूप में समझ सकता है।

एक आधुनिक कवि को अपने समय के साथ जिस सचेत अवस्था में और जितनी मुस्तैदी के साथ खड़ा होना चाहिए, मदन कश्यप वैसे ही कवि हैं। उनकी कविताओं में एक ख़ास तरह की बौद्धिकता है। उनकी यही बौद्धिकता उनके भीतर अपने चिंतन के प्रति प्रतिबद्धता को तैयार करता है। परन्तु यह बौद्धिकता उनकी कविताओं पर हावी नहीं होती है बल्कि उन्हें समय के सच में गोते लगाने में बहुत मदद करती है। मदन कश्यप की कविताओं को पढ़ते हुए यह प्रतीत हो सकता है कि सच के भीतर प्रवेश करने की जो बौद्धिकता उनके पास है वह उन्हें रघुवीर सहाय से जोड़ती है। हिन्दी कविता को जितना आधुनिक रघुवीर सहाय ने बनाया, उतना शायद किसी ने नहीं। वे एक पत्रकार थे और उनके पास ख़बरें चलकर आती थीं। वे ख़बरों के सच के भीतर के सच को भी जानते थे। जो घटित हुआ और जो घटित हो सकता है वे उसके भीतर के सच को बहुत बेहतर रूप में जानते थे। रघुवीर सहाय के पास यह ताक़त थी कि उनके पास आनी वाली इन ख़बरों को वे कविता में परिवर्तित कर देते थे। मदन कश्यप उस तरह से पत्रकार तो कभी रहे नहीं परन्तु रघुवीर सहाय का यह गुण उनके भीतर जस का तस आया है। सही मायने में एक आधुनिक कवि को जितना बौद्धिक होना चाहिए रघुवीर सहाय अपने समय के एक बड़े उदाहरण हैं और मदन कश्यप इस परम्परा को आगे लेकर आते हैं।

रघुवीर सहाय के यहाँ ख़बरें तो हैं परन्तु ख़बर की तरह नहीं। शुद्ध कविता की तरह। उनकी कविताओं को पढ़कर हमेशा ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि अपने समय से बहुत बेचैनी के साथ जुड़ा हुआ है। मदन कश्यप की कविताओं में भी ठीक यही बेचैनी दिखती है। यह एक जगे हुए व्यक्ति की बेचैनी है जो कबीर की परम्परा से इन्हें जोड़ती है। जैसे कबीर अपने समय के सारे अंतर्द्वंद्वों को जानते थे और उनसे मुठभेड़ करते थे वैसे ही रघुवीर सहाय भी करते हैं और मदन कश्यप भी। वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी यह तो मानते हैं कि मदन कश्यप के यहाँ

राजनीतिक कविताएँ बहुत हैं परन्तु वे उनकी कविताओं को कम तर करके उसे रपट तक में सीमित कर देते हैं। इससे सहमत होना कठिन है। वे लिखते हैं-''मदन कश्यप ने सबसे अधिक संख्या में राजनीतिक विषयों या घटनाओं पर कविताएँ लिखी हैं। उन कविताओं में बोध है, राजनीतिक समझ है किन्तु कुल मिलाकर वे रपट हैं। किसी पक्षधर स्तम्भकार की रपट की तरह। बीच-बीच में भावोद्गार हैं। हिन्दी में राजनीतिक घटनाओं पर कविताएँ या तो शमशेर ने लिखी हैं-('अमन का राग', या 'यह शाम है') या नागार्जुन ने।''2 यह जानना आवश्यक है कि रपट और कविता में सबसे बड़ा अर्थ की व्यंजना से है। अर्थ के स्तर से है। रपट जहाँ एक रेखकीय होता है वहीं कविताओं के अर्थ के कई स्तर हैं। लेकिन बड़ा सवाल तो यह है कि क्या वाकई विश्वनाथ त्रिपाठी की इस बात से सहमत हुआ जा सकता है कि मदन कश्यप की कविताएँ ख़बर से बनती तो हैं परन्तु वह कविता में ढल नहीं पाती हैं और वे महज रपट में रिड्यूस होकर रह जाती हैं। यहाँ सिर्फ एक कविता का उदाहरण लिया जाए -'क्योंकि वह जुनैद था।' यह सीधे-सीधे ख़बर से जुड़ी हुई कविता है। परन्तु क्या यह महज रपट में सिमट गई है। पहले कविता की कुछ पंक्तियों को देखें-'डेढ़ करोड़ लोगों की रोज़ी छिन गई थी/पर लोग नौकरी नहीं/जुनैद को तलाश रहे थे/नए नोट छापने के खर्च बराबर भी/काला धन नहीं आया था/लोग ग़ुम हो गए पैसे नहीं/जुनैद को खोज रहे थे/सबको समझा दिया गया/बस तुम जुनैद को मारो।'3 यह कविता अपने विषय के लिए एक ख़बर के पास जाती तो है परन्तु यह सिर्फ उस विषय तक सीमित होकर नहीं रह जाती। यह कविता अपने विस्तार में अपने समय का साक्ष्य बनती हैं। एक चुनौती की तरह। एक उन्मादी होते समाज के उस कारण को समझने का यह एक समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण है, जिसे एक लेखक-कलाकार के भीतर होना नितांत आवश्यक है। रपट एकार्थी होता है जबकि कविता अपने अर्थ में अपने समय से हस्तक्षेप कर रही है। यह कविता एक घटना से भले ही विषय ले रही हो परन्तु यहाँ वह उसे अपने अर्थ से विस्तार दे रही है। और यह कविता एक ख़ास घटना से जुड़ कर नहीं रह जाती बल्कि एक सार्वभौमिक स्वरूप गढ़ लेती है।

मदन कश्यप की शुरुआती कविताएँ जैसे-बाँके मियाँ, अमेरिका, पृथ्वी दिवस, कूपलेन में अँधेरा, भारत उदय, क़िस्सा एक हत्यारे का से लेकर एकदम आज की कविताओं में, 'क्योंकि वह जुनैद था', 'फिर भी बचा रहेगा यह देश' जैसी कविताएँ कविता के फॉर्म में अपने समय की गवाह हैं। इन कविताओं में ठीक-ठीक ख़बर को ढूँढ़ना आसान नहीं है, और इसकी ज़रूरत भी नहीं है क्योंकि ये कविताएँ इन वाक़यों से सिर्फ एक उत्स लेती हैं और फिर ये कविताएँ अपना भौगोलिक, सामाजिक और राजनितिक विस्तार पाती हैं। अपने समय का एक ऐसा पाठ तैयार करती हैं जिसे अनदेखा किया जाना संभव नहीं है। यह राजनीतिक सजगता ही है कि एक कवि के रूप में मदन कश्यप समय से पहले आने वाले ख़तरे को भाँप लेते हैं। भारतीय संदर्भ में नई आर्थिक सुधार नीति या उदारीकरण की शुरूआत भले ही 1991 में हुई हो और उसके बाद अमेरिका का विश्व पर एक भयानक विस्तार दिखा हो परन्तु एक कवि के रूप में इस ख़तरे का अंदेशा पहले ही हो जाता है। 'अमेरिका' कविता 1985 में प्रकाशित हुई है वह भी उनकी पहली पुस्तिका 'गुलर के फूल नहीं खिलते' में। यह कविता एक वैश्विक संदर्भ की कविता है जहाँ पूरे विश्व पर ख़तरे के रूप में मँडराते अमेरिका की ताकत का अंदेशा है। कविता में बेटा दुनिया का नक्शा फैलाकर पूछता है कि 'कहाँ है अमेरिका'। लेकिन यह सवाल नक्शे के हिसाब से सहज होते हुए भी सहज नहीं है। क्योंकि अमेरिका अब सिर्फ एक देश का नाम नहीं है। वह ताक़त का, तानाशाही का एक प्रतीक है। इसलिए कहाँ-कहाँ ढूँढ़ा जा सकता है अमेरिका को। जहाँ जहाँ यानि 'नक्शे में आँखें मत धँसाओ/ सिर ऊपर उठाकर दुनिया को देखो/जहाँ-जहाँ गूँजती है उत्पीड़ितों की चीख/जहाँ-जहाँ हँसता है तानाशाह/ जहाँ-जहाँ लोग हैं बेहाल/ जहाँ जहाँ है भोपाल/ वहाँ वहाँ है अमेरिका।'4 यह एक वैश्विक संदर्भ की कविता है और सिर्फ वही कवि लिख सकता है जिसके पास एक वैश्विक राजनीतिक चेतना है। सिर्फ इन चंद पंक्तियों में भोपाल का ज़िक्र आना दर्शाता है कि यह कविता बौद्धिकता के किस स्तर पर है।

मदन कश्यप के पास जो सबसे बड़ी चीज़ है, और जो उन्हें बहुतों से अलग करती है वह है उनकी राजनीतिक समझ। अपने विचारों के प्रति जो उनकी प्रतिबद्धता है वह उन्हें हिन्दी का एक ख़ास कवि बनाती है। उनके भीतर एक कोलाहल है। एक ग़ज़ब की बेचैनी है। अंदर एक शोर है। अपने समय को दर्ज कर लेने की यहाँ बेचैनी है। उनके लेखन में यह बेचैनी दिखती है। इसलिए उनके यहाँ जितनी कविताएँ हैं वे सब की सब ज़रूरी कविताएँ हैं। उनकी कविताएँ चूँकि समाज से गुँथी हुई हैं इसलिए वे एक विकास क्रम बनाती हैं। उनमें एक सतत प्रक्रिया दिखती है। उनकी कविताओं को यूँ बीच से उठाकर पढ़ने से ज़्यादा बेहतर है कि उन्हें क्रम में पढ़ा जाए। समय की सतत प्रक्रिया और उस प्रक्रिया में जो सच हम से छूट गया, वह सब इन कविताओं में दर्ज हैं।

इनका पहला कविता संग्रह यूँ तो 'लेकिन उदास है पृथ्वी' है, जो 1992 में प्रकाशित होकर आया परन्तु उससे भी पहले 1990 में उनकी कविताओं की एक पुस्तिका छपी-'गुलर के फूल नहीं खिलते'। उनकी पहली कविता 'पहरेदार के नाम' इस पुस्तिका से भी पहले की कविता है। इस कविता और इस पुस्तिका में जितनी कविताएँ संकलित हैं उनको भी पढ़ा जाए तो वहाँ भी एक सजग कवि मिलेगा। मदन कश्यप ने अस्सी के दशक में लिखना शुरू किया और सबसे पहले यह पुस्तिका-'गुलर के फूल नहीं खिलते' प्रकाशित हुई। जब उनका पहला संग्रह आया तब उन्होंने इस संग्रह में से कुछ कविताओं को उसमें शामिल किया लेकिन कुछ कविताओं को उन्होंने छोड़ भी दिया। जो कविताएँ छोड़ दी गई हैं उनमें से तीन कविताएँ-गुलर के फूल, बच्चा रोता है और तानाशाह चाहता है। इन कविताओं को उनके पहले संग्रह में

शामिल नहीं किया गया है। जब कि ये तीनों कविताएँ अपने समय में अपने राजनीतिक पक्ष के साथ खड़े होने के लिए आज भी याद की जाएँगी।

'पहरेदार के नाम' कविता उनकी पहली कविता है, जिसे आज तक किसी संकलन में शामिल नहीं किया गया है। इन एकदम शुरुआती दौर की कविताओं में एक कच्चापन दिखना चाहिए, लेकिन नहीं है। यह कितना सुखद है कि जो पुस्तिका प्रकाशित हुई उसमें अमेरिका, इथोपिया की भूख, निकारागुआ जैसी कविताएँ हैं। इन कविताओं को देखकर-पढ़कर सहसा विश्वास करना मुश्किल हो जाता है कि यह एक कवि की एकदम शुरूआती कविताएँ हैं। 1986 में लिखित कविता 'तानाशाह चाहता है' में वे लिखते हैं- 'तानाशाह चाहता है/कि लिखी जाएँ कविताएँ/मगर सिर्फ पन्द्रह वर्ष बाद आने वाली/इक्कीसवीं सदी के बारे में/वह हर्गिज नहीं चाहता/कि हम कविता में लिखें उन्नीस सौ छियासी।'5 सत्ता का हर रूप चाहता है कि हर वक्त हर्ष और उल्लास के गीत लिखें जाएँ, सिर्फ उस समय को दर्ज किया जाए जहाँ सितारे चमक रहे हों। सत्ता का हर रूप सिर्फ प्रकाश को इंगित करना चाहता है अंधकार को नहीं। लेकिन कवि अपने वक्त को दर्ज करना चाहता है। अपने वक्त के उस स्याह पक्ष को जिसको सत्ता दीवारों के पीछे छुपा देना चाहती है। मदन कश्यप ने अपनी पहली कविता से ही जो अपने समय को दर्ज करने का काम शुरू किया वह ज़िम्मेदारी के साथ चलता रहा है। बड़ी घुटन है इस कमरे में/यहाँ की हवा तक पुरानी हो गई है/ अपने ही आक्रोश से आहत और लहूलुहान मैं/अब अपने होने से भी डरने लगा हूँ/ अंधेरे में अपना चेहरा भी भयानक लगता है।' ये पंक्तियाँ 'पहरेदार के नाम' कविता से है। इसे पढ़कर विश्वास करना मुश्किल है कि यह वह कविता है जिससे एक कवि साहित्य की दुनिया में दस्तक दे रहा है। यह एक ऐसे राजनीतिक समझ की कविता है जो एक कवि के भीतर अमूमन कुछ वक्त के बाद आता है।

आज जो राजनीतिक परिदृश्य बदला है और जिससे बहुत हद तक सामाजिक परिदृश्य में भी परिवर्तन हुआ है, तो दो तरह की बातें उठनी बहुत लाज़िमी हो गईं। दोनों बहुत हद तक एक-दूसरे के विरोधी बातें भी हैं परन्तु उसका जबाव ढूँढ़ना आवश्यक भी है। एक तो यह कि हिन्दी कविता ने इस कठिनतम होते समय को अपने यहाँ मुखरता के साथ दर्ज किया या नहीं? कविता का जो प्रतिरोधी स्वर होना चाहिए उसका स्वरूप इस समय में इतना प्रतिरोधी रह भी पाया है या नहीं। और दूसरा यह आरोप दूसरे पक्ष से हमेशा उठता रहा है कि क्या सारी बुराइयाँ, सारी समस्याएँ इस बदले हुए समय में ही दिख रही है? क्या इसके पहले के समय के कोई भी कष्ट नहीं थे। कविता में जो प्रतिरोध अभी दिख रहा है वह पहले कहाँ था? हिन्दी कविता के प्रतिनिध कवि के रूप में मदन कश्यप की कविताएँ इन दोनों सवालों के जवाब सामने प्रस्तुत करती हैं। हमेशा से अपने समय को दर्ज करतीं ये कविताएँ वह मिसाल है जहाँ किसी भी प्रश्न के बचे रहने की कोई गुंजाइश बचती नहीं है। मदन कश्यप की कविताओं को पढ़कर साफ पता चलता है कि उनके यहाँ एकदम शुरूआत से लेकर अभी तक लगातार समाज के अँधेरे कोनों को पकड़ने की कोशिश होती रही है। वहीं दूसरी ओर एक कवि के रूप में मदन कश्यप ने सत्ता के हर बदलते चरित्र के ख़िलाफ़ अनवरत अपनी आवाज़ बुलन्द की है, चाहे किसी भी पार्टी या किसी भी विचारधारा की हो। मदन कश्यप के सामने सत्ता का क्रूर चेहरा है न कि कोई विचारधारा या कोई ख़ास राजनीतिक पार्टी। इसे बहुत तार्किक रूप में तभी समझा जा सकता है जब मदन कश्यप की कविताओं को बिना किसी पूर्वग्रह के एक क्रम में पढ़ा जाएगा।

मुझे लगता है नागार्जुन के बाद अकेले मदन कश्यप ही ऐसे कवि होंगे जिन्होंने सत्ता के सामने लगातार मुखर होकर इस तरह से अपनी बात रखी है। सत्ता के सामने, सत्ता को चिह्नित करके, सत्ता के नाम के साथ इतना मुखर होना हमें निस्संदेह नागार्जुन की याद दिलाता है। आज जब समाज के सामने ढेर सारी चुनौतियाँ मुँह बाये खड़ी हैं, मदन कश्यप की कविताएँ उनका दस्तावेज़ीकरण करती हैं। कविताएँ 'क्योंकि वह जुनैद था' और 'तब भी बचा रहेगा देश' अपने समय और समाज को इस रूप में दर्ज कर रही हैं कि आज से वर्षों बाद भी जब इस समय को समझने का प्रयास होगा ये कविताएँ अपने समय की गवाह होंगी। और यही नहीं ऐसी बहुत सारी कविताएँ हैं जो पिछले दिनों उनकी कलम से आईं, वे सब राजनीतिक-सामाजिक समझ को लेकर आगे बढ़ रही हैं। तो कठिन होती चुनौतियों के सामने कवि का जो प्रतिरोधी रूप दिखना चाहिए मदन कश्यप में वह है। वहीं दूसरी ओर यह बात भी बहुत साफ है कि उनके इस प्रतिरोधी रूप में कभी कमी रही ही नहीं। अपनी पहली कविता पुस्तिका में ही उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के विरोध में कविता लिखी-'बच्चा रोता है'। कविता का अंत इस पंक्ति से होता है-"बच्चे चाहे जितने भूखे और गंदे रहें/देश चाहे जितना विकृत और बौना दिखे/आप कितनी ख़ूबसूरत दिखती हैं श्रीमती गांधी।"6 1997 में वही कवि लिख रहा है "वैसे भी खोने की चर्चा क्या करना एक ऐसे समय में/जिसने अपना गौरव खो दिया हो।"7 वही कवि 2011 के आस पास लिख रहा है कि 'ग्राम प्रधान तक का चुनाव/नहीं जीत पाने वाला सौदागर/बेच रहा है लोकतंत्र।' जिस लोकतंत्र के बिक जाने के ख़तरे के अंदेशे को कवि 2011 में देख रहा था वही कवि 2022 में लिख रहा है कि "एक दिन तुम नहीं रहोगे/तब भी बचा रहेगा यह देश।"8 लेकिन तमाम प्रतिरोध के बावजूद लोकतंत्र में उम्मीद है-"एक दिन यह जयकारा बंद होगा/तालियाँ थालियाँ भी शांत हो जाएँगी/सम्मोहन टूटेगा/और ख़ुद को ही घायल करने वाले लोग/लग जाएँगे वापस देश को बचाने में।"9 एक तरफ लोकतंत्र के बिकने के षड्यंत्र की समझ और दूसरी तरफ लोकतंत्र में उम्मीद के बीच में ही है हिन्दी कविता। और इसी हिन्दी कविता की यात्रा का प्रतिनिधित्व कर रही हैं मदन कश्यप की कविताएँ।

मदन कश्यप एक ऐसे कवि हैं जो अपने समय-समाज के प्रति जागरूक तो हैं ही,

उनके पास एक बहुत ही कोमल मन है। यही कारण है कि हाशिये पर पड़े हुए समाज के प्रति उनकी कविताओं में एक ख़ास जगह है। चाहे वे दलित हों, स्त्री हों या आदिवासी। चाहे पुत्री को केन्द्र में रख कर लिखा गया हो या फिर स्त्री चिंतन को केन्द्र में रखकर, उन्होंने स्त्रियों के दुख को अपनी कविताओं का मुख्य मुद्दा बनाया। वे जानते हैं कि "जितना बड़ा होता है घर/उतना ही छोटा होता है स्त्री का कोना।"10 वे जानते हैं जब बेटी बड़ी होती है तो इस समाज में पिता का दुख क्या होता है?- "बड़ी हो रही है बेटी/बड़े हो रहे हैं भेड़िये/बड़े हो रहे हैं सियार।"11 सारा स्त्री विमर्श जिस सामाजिक-सांस्कृतिक चिंतन को आधार बनाकर चल रहा है, मदन कश्यप की कविताएँ समानान्तर रूप से उसका अन्तर्पाठ तैयार करती चल रही हैं। यहाँ स्त्रियों के साथ इतना दुख है कि "उसे निर्वस्त्र करना चाहा/उसने दुख पहन रखा था। /जिसे उतारना संभव नहीं था।"12 लेकिन इन दुखों से ऊपर उठकर एक दिन स्त्रियाँ प्रतिकार करती हैं-"स्त्री अक्सर भूल जाती है प्रतिवाद करना/लेकिन कभी-कभी/वह प्यार करना भी भूल जाती है।"13 मदन कश्यप की कविताएँ वास्तव में अपने समय का ऐसा आख्यान तैयार करती हैं कि जिन्हें पढ़े-गुने बिना इस समय को समझा जाना आंशिक होगा।

मदन कश्यप के पास आदिवासियों के जीवन पर ढेर सारी कविताएँ हैं। परन्तु दलित विमर्श पर 'माफ़ीनामा' नामक जो कविता है वह वास्तव में हिन्दी कविता को बौद्धिक बनाती है। इस हिन्दी कविता की संपदा के रूप में देखा जाना चाहिए। यह दलितों के प्रति सहानुभूति की कविता नहीं है। यह कविता एक सवर्ण कवि के आत्मबोध की कविता है। आत्म स्वीकृति की कविता है। अपने सांस्कृतिक बोझ को आज तक ढोते रहने की कविता है। यह अपनी आत्म श्लाघा को कमतर करने की कोशिश की कविता है। "लेकिन मैं तो लज्जा से ग्रस्त हूँ/कि तुम पुश्त-दर-पुश्त बने रहे पवित्रता के सौदागर/और इतराते रहे अत्याचारों को धर्म संगत बनाने की अपनी क्रूर चतुराई पर।"14

मदन कश्यप का कवि मन बौद्धिक है, सचेत है और कोमल है। वह स्थानीय-वैश्विक स्थितियों पर अपनी पैनी नज़र रखता है। वह घोर राजनीतिक भी है तो घोर सामाजिक भी है और घोर सांस्कृतिक भी। लेकिन अद्भुत यह है कि वह यह जानता है कि कविता अंतत: कला है इसलिए वह सारी बौद्धिकता को कविता के फॉर्मेट में ढालना भी जानता है। जब उनका मन कविता लिखने बैठता है तब वह सिर्फ कवि होता है। वह इस बौद्धिकता को अपने कवितापन पर हावी नहीं होने देता। यहाँ सारा बौद्धिक विमर्श कविता में घुलकर आता है। यदि वह सिर्फ बौद्धिक पाठ होता तो उसकी एक सीमा होती। परन्तु अब यह कालातीत है। ज्यों-ज्यों समय बीतता है ये कविताएँ अपने अर्थ को और ज़्यादा मानीखेज बना लेती हैं। बार-बार वे अपने अर्थ को खण्डित करती हैं और नए अर्थ को अंगीकार करती हैं। यही कारण है कि मदन कश्यप की कविताएँ अपने समय का एक ऐसा अंतर्पाठ तैयार करती हैं कि वे अपने समय का एक ज़रूरी हिस्सा बन जाती हैं।

मदन कश्यप अपने व्यक्तित्व में पूरे कवि हैं। उनका बोलना-बतियाना, चलना-फिरना, हँसना-बोलना, रुकना सब कवितामयी है। वे कवि नहीं होते तो क्या होते? इस सवाल का जवाब नहीं दिया जा सकता है क्योंकि उन्हें देखकर कोई उनके बारे में कवि होने के अतिरिक्त कोई कल्पना कर ही नहीं सकता है। जैसे उनकी कविताओं के बारे में हमेशा विनोद कुमार शुक्ल से पंक्ति उधार लेकर कहा जा सकता है कि उनकी सारी कविताओं में अतिरिक्त कविता एक भी नहीं है। उसी तरह उनके व्यक्तित्व को देखकर भी यह कहा जा सकता है कि उनके पूरे व्यक्तित्व में कविता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कविता से ही उनके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कविता ही उनके भीतर वह आँख और मन देती है जो उन्हें सच के भीतर प्रवेश करा देती है।

यूँ तो उनकी सारी कविताएँ ही पढ़े जाने की अपेक्षा रखती हैं इसलिए उनकी कविताओं में प्रतिनिधि जैसा कुछ ढूँढ़ा जाना बहुत कठिन है। उनकी कविताओं को समय से और उनके क्रम से काटकर नहीं पढ़ा जाना चाहिए। उनकी कविताओं को उनके लिखे जाने के क्रम में ही रखा जाना चाहिए और पढ़ा जाना चाहिए। इन कविताओं को एक कतार में सजाकर पढ़ा जाए तो अपने समय का राजनीतिक- सामाजिक- सांस्कृतिक पाठ अपने आप ही तैयार हो जाएगा।

000

संदर्भ-

1 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सवाल, मदन कश्यप, पुस्तक बीजू आदमी में संकलित आलेख से, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2023, पृ.-124, 2 राजनीति की समझ कविता रचती है, विश्वनाथ त्रिपाठी, मदन कश्यप का कविकर्म पुस्तक में संकलित, संपादक-अरुण होता, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2023, पृ.-25, 3 पनसोखा है इन्द्रधनुष, मदन कश्यप, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2019, पृ.-108, 4 कविता 'अमेरिका' संग्रह-लेकिन उदास है पृथ्वी, मदन कश्यप, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2019, पृ.-115, 5 कविता 'तानाशाह चाहता है' संग्रह-गूलर के फूल नहीं खिलते, मदन कश्यप, किशोर प्रभात प्रकाशन मुजफ्फरपुर, सं.-1990, पृ.-15, 6 कविता 'बच्चा रोता है: दो, संग्रह-गूलर के फूल नहीं खिलते, मदन कश्यप, पृ.-12, 7 कविता 'खोयी हुई चीजों की नज्म', संग्रह-नीम रोशनी में, मदन कश्यप, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2000, पृ.-24, 8 कविता 'तब भी बचा रहेगा यह देश, मदन कश्यप, तद्भव पत्रिका में प्रकाशित, 9 वही, 10 कविता-'लड़की का घर, संग्रह-नीम रोशनी में, मदन कश्यप, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2020, पृ.-21, 11 कविता-'बड़ी होती बेटी, संग्रह-अपना ही देश, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2015, पृ.-15, 12 कविता 'दुख', संग्रह-दूर तक चुप्पी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2014, पृ.-11, 13 कविता-'कभी-कभी', संग्रह-दूर तक चुप्पी से, पृ.-14, 14 कविता-'माफ़ीनामा', संग्रह-अपना ही देश, मदन कश्यप, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2015, पृ.-89

(उपन्यास)

काँधों पर घर

समीक्षक : अमिता

लेखक : प्रज्ञा

प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली

अमिता
426 एच ब्लॉक
नारायणा विहार
नई दिल्ली 110028

'काँधों पर घर' प्रज्ञा का तीसरा उपन्यास है इसके पहले उनके दो उपन्यास 'गूदड़ बस्ती' और 'धर्मपुर लॉज' प्रकाशित हो चुके हैं। प्रज्ञा अपने लेखन में निरंतर हाशिये पर रह रहे लोगों की आवाज़ को चिह्नित कर रही हैं। वे अपने लेखन में उपेक्षित उत्पीड़ित वर्ग के लिए 'स्पेस' निर्मित करती नज़र आती हैं। 'काँधों पर घर' में लेखक की कथा का केंद्र पूर्वी दिल्ली और यमुना पुश्ते की बस्तियाँ हैं। उन बस्तियों की गोद में बैठा श्रमिकों-अभावग्रस्त लोगों का जीवन है, जिसे बार-बार उजड़ना-बसना है। यह उपन्यास 80 के दशक के बाद एशियाई खेलों से लेकर राष्ट्रमंडल खेलों तक के समय को समेटे हुए है। देश में जब भी कोई बड़ा आयोजन होता है तो सबसे ज़्यादा मार ग़रीबों पर ही पड़ती है विस्थापन के दंश में उनकी भागीदारी सबसे पहले सुनिश्चित की जाती है। उपन्यास यमुना किनारे बसे उजड़े श्रमिकों के जीवन का, उनके घरों का मार्मिक आख्यान प्रस्तुत करता है।

लेखन की दुनिया पर अगर विस्तृत नज़र डाली जाए, तो यहाँ सपनों के संसार का कोलाहल अधिक सुनाई देता है। जिसकी डार्क फैन्टेसी पाठक को वर्तमान दुनिया से खींचकर एक ऐसे संसार में ले जाती है जहाँ पाठक चमत्कृत और विस्मित होता रहता है। ऐसा लेखन मोहित और आकर्षित करता है पर उसके समानांतर यथार्थ जीवन की झलकियाँ अपरिचित नज़र आती हैं। हिन्दी साहित्य में मध्यवर्ग पर आधारित उपन्यास अधिक लिखे गए। जिनमें मध्यवर्गीय रिश्तों की जटिलताओं, अतृप्त प्रेम जैसे पक्षों का चित्रण मिलता है। मिथक आधारित उपन्यास भी इस समय लिखे जा रहे पर जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है निम्न वर्ग पर कम लिखा जा रहा है। उनकी मुश्किलों, उनके हालात से मध्यवर्गीय लेखक दूर हुआ है। मध्यवर्गीय लेखक कहीं और प्रवेश कर रहा है। ऐसे समय में प्रज्ञा अपने लेखन की दुनिया में जो सबसे निचले पायदान पर है उसके साथ क़दम मिलाकर चलने की जद्दोजहद करती हैं। भाईचारे पर टिकी इस दुनिया का जीवित दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। उन लड़ियों को पिरोने की कोशिश करती हैं, जो बिखरी हुई पड़ी हैं- खाना, कपड़ा, घर, द्वार, बच्चों का इस दुनिया में होना जो दुनिया बच्चों के लिए क्रूर है जिसे मासूम बच्चे नहीं समझते..! ग़रीब-अमीर की दुनिया जिनके बीच में दो खाइयाँ हैं, जिन्हें ज़रूरत पर अमीर लाँघ लेते हैं पर ग़रीब उस खाई को अपनी ज़रूरत पर लाँघे तो उसके लिए सज़ा का विधान है। इसलिए ग़रीब अपने जैसी दुनिया में ही पल्लवित, पुष्पित होना चाहता है वह डरता है निडरता उसके पास चलकर बहुत कम आती है। ऐसी ही दुनिया के बीच उन्हें जीना और मरना होता है। एक दिन वे सीख जाते हैं ऐसे ही जीना है इस तरह जीवन एक छोर से दूसरे छोर की ओर चलता रहता है।

'काँधों पर घर' उपन्यास दिल्ली के छोर पर बसे उस पुश्ते के साथ चलता है। जो चमक दमक से दूर जीविकोपार्जन के हिसाब-किताब भर की दुनिया है। जिन बस्तियों में देश का भविष्य नहीं निर्धारित होता। जो दुनिया रसूखदार लोगों की दुनिया से दूर है। देखने वाली बात है यमुना कछार का यह भूखंड भी ग़रीबों को नहीं मिल पाता। एक तरह से दिल्ली के इस भूखंड के एक इतिहास का दस्तावेज़ीकरण भी है यह उपन्यास। एक ऐसा इतिहास जिसे कथा के केंद्र में पहली बार लाया गया है। उपन्यास की प्रस्तावना में लेखक लिखती हैं-"शहर की चमक के नीचे हजारों-लाखों ज़िंदगियाँ जलती हैं तब जाकर शहर की रोशनी कुछ और बढ़ती है। मैं अपने उपन्यासों में इन्हीं ज़िंदगियों की कहानी कहना चाहती हूँ।" लेखक ने स्वीकार किया है कि इस उपन्यास में कई वास्तविक पात्र हैं- पूनम, मुनमुन, इमाम साहेब, फ़रीदा। यानी ये पात्र इसी जीती जागती दुनिया का हिस्सा हैं। इन वास्तविक पात्रों का साथ देने के लिए लेखक की कल्पना से उपजे हुए पात्र भी हैं। उपन्यास की बनावट को देखकर लगता है कि लेखक ने इसे लिखने के लिए गंभीर शोध कार्य किया है। वरिष्ठ आलोचक अरुण होता ने कहा है आजकल बहुत से उपन्यासों में शोध दीखता है पर प्रज्ञा ने काँधों पर घर में इस शोध को उपन्यास का आधार बनाकर कथा में विन्यस्त किया है जिससे यह अन्य उपन्यासों से विशिष्ट बनता है। यमुना पुश्ते की सारी परिस्थितियों से अवगत होने के बाद लेखक के मन में यह विचार आया कि इन

स्थितियों को वृहत कथा का संदर्भ बनाना चाहिए। क्योंकि उपन्यास पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि लेखक ने पैदल चलकर, घूमकर, लोगों के हालचाल जानने के बाद इसे लिखा है।

इस उपन्यास की सबसे प्रमुख चिंता यही रही होगी कि यमुना पुश्ते और उसके आस पास की बस्तियों में श्रमिक समाज के बीच जो घटित हुआ है वह अपने सबसे यथार्थवादी रूप में लोगों के सामने आए। इन कामगारों की मेहनत भरी दोपहरियों को प्रज्ञा पूरी तन्मयता से उपन्यास में उकेरती, प्रस्तुत करती रही हैं यह उपन्यास की कथा से सिद्ध होता है। उपन्यास की नायिका कम पढ़ी-लिखी पूनम है जो बदायूँ से अपने पति सूरज के साथ दिल्ली रहने आई है। दिल्ली में इस दम्पति को एक घर की ज़रूरत है। घर सिर छुपाने की जगह देता है उस घर की चाहत सभी में होती है। घर के इस काम में एक वृद्धा पूनम और सूरज का साथ देती हैं। पुराना जर्जर घर जिसे वहाँ के लोग बिहारी बिल्डिंग के नाम से पुकारते हैं में कोठरी भर की जगह पूनम वृद्धा से कुछ पैसों में ख़रीदती है। वह वहाँ अपना कमरा डाल कर रहना शुरू करती है। वृद्धा पूनम से स्नेह करती है पर कमरा बन जाने के बाद वृद्धा बदल जाती है। अब वह नहीं चाहती कि पूनम उस घर में रहे। वृद्धा का मन अचानक परिवर्तित हो जाता है। रिश्ते का यह उतार-चढ़ाव बताता है कि मानव मन की कोठरियाँ तंगहाली से भरी हुई हैं। प्रज्ञा मन की भी पड़ताल करती चलती हैं। यद्यपि वृद्धा अकेली है और उसे पूनम की ज़रूरत है। पूनम उनकी थोड़ी बहुत सेवा-टहल भी कर देती है पर न जाने क्यों अब वृद्धा नहीं चाहती कि पूनम वहाँ रहे। लालच का भाव उनके मन में बैठ गया है पर पूनम अपने हक़ की लड़ाई लड़ती है और जीतती है। वहाँ रहती है वह हिम्मती है। इसी हिम्मत से वह वहाँ रहने आई बंधक बनी छोटी बच्चियों को भी छुड़वाती है जो किसी पेशे में धकेले जाने के लिए गाँव से लाई गई थी। पूनम उन लड़कियों को लाने वाले आदमी को गिरफ़्तार करवाकर बच्चियों को मुक्त करवाती है। उपन्यास का यह अंश बेहद सशक्त और महत्त्वपूर्ण है।

पूनम की दिली इच्छा है कि वह एक स्कूल खोले। स्थानीय छुटभैया नेता महावीर ने उसे आश्वासन दिया- "पक्का न सही कच्चा सही पर कुछ दिन में एक स्कूल हो जाएगा। पाँच से दस साल के बच्चों के लिए एक स्कूल खुल सकता है। जिन्हें तू कुछ पढ़ना-लिखना, गाना-वाना सिखा देना। पुश्ते में भी ऐसे ही एक-दो स्कूल हैं छोटे बच्चों के लिए। तेरे स्कूल का बंदोबस्त हो जाएगा। ज़मीन पुश्ते के पास की पहाड़ी पर है। वहाँ जंगल साफ कर ले और लगा दे टीन-टप्पर"। (काँधों पर घर, पेज-91) पुश्ते के पास की पहाड़ी पर छोटी सी जगह की साज-सँभाल होने के बाद स्कूल खुल जाता है। जिसमें पूनम पड़ोस में रहने वाली सहेली फ़रीदा के बच्चों को पढ़ाती है। इसके अलावा पुश्ते के और भी बच्चे उसके स्कूल में पढ़ने आते हैं। पूनम ज़्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है पर मन में भाव है कि वह जितना जानती है उसी से उन बच्चों के भविष्य को सँवारेगी। पढ़ाने में पंकज नाम का लड़का उसका सहयोग करता है। लगन थी तो स्कूल चल निकलता है। पति सूरज किताब की दुकान चलाता है। सूरज का बदायूँ का दोस्त नेचू है जो सूरज पूनम को इस शहर में रचने बसने में हर तरह की मदद करता है। नेचू ज़िंदगी से भरपूर पात्र है। सूरज है तो छोटे शहर का पर पूनम के काम के प्रति उसके मन में बेहद सम्मान है वह पूरी कहानी में कहीं भी पूनम को प्रतिबंधित नहीं करता। वह जो चाहती है उसे सूरज उसका साथ देता है। उन दोनों का दाम्पत्य जीवन शांत और सुलझा हुआ है। सामान्यत: ग़रीब परिवारों में स्त्रियों को सम्मानित जीवन उपलब्ध नहीं हो पाता। यहाँ यह उपन्यास का उजला पक्ष है जो मधुर है।

उपन्यास में पुश्ते में रहने वाले इन पात्रों के अलावा जनमंच जैसे समाजसेवी संगठन के लिए कार्य करने वाली एक मुखर पात्र सुगन्धा है जो पुश्ते के लोगों की हर प्रकार की मदद करती है। जिन परेशानियों से वहाँ के निवासी नहीं निकल पाते वहाँ हाथ पकड़कर सुगन्धा इन्हें निकालती है। सुगन्धा सामाजिक कार्यकर्ता है जो दिल्ली के अपने घर में बेटे अनीश के साथ रहती है। पति लखनऊ में रहते हैं जिनसे वह बहुत पहले अलग हो चुकी है। बेटा अनीश उन दोनों के बीच आता जाता रहा है। पर अब युवा अनीश अपने पिता की ओर अधिक झुका हुआ है। उसे सुगन्धा के कार्यों से कोई सरोकार नहीं है। बल्कि वह इन्हीं ग़रीब लोगों के विरुद्ध खड़ा हो जाता है जिनके लिए उनकी माँ बिना रात-दिन देखे निरंतर काम करती रही है। अनीश इन कामगारों के लिये विद्रोही रुख़ अपनाता है। वह कहता है कि दिल्ली की गन्दगी का कारण यही सब लोग हैं इनकी बस्तियों को ख़त्म होना चाहिए। सुगन्धा को न पति का प्रेम मिला और न अनीश वह बन सका जैसा वह चाहती थी। यह उसके जीवन का प्राप्य है। अनीश तो सुगन्धा का विलोम बन कर इस संसार में आया है। फिर भी सुगंधा मनोवेग के साथ अपने कामों में आगे बढ़ती जाती है। अनीश जिस मीडिया कम्पनी में काम करता है वहाँ लगातार ग़रीबों के विरोध में अपनी आवाज़ ऊँची करता है। विचारों के इन्हीं बड़बोलेपन में जिस उमा नाम की लड़की को वह पसन्द करता है उससे दूर हो जाता है उमा को भी ऐसे बड़बोले व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। इस तरह यह उपन्यास मीडिया के दो चेहरों की पड़ताल भी करता है एक तरफ़ जन विरोधी मीडिया तो दूसरी तरफ़ जन सरोकारों से जुड़ा मीडिया जिसकी बुलंद आवाज़ें हैं-उमा, समीर प्रताप और निशांत मीणा जैसे पत्रकार।

सूरज का दोस्त नेचू बेहद हँसमुख है जिसकी वजह से सूरज को दिल्ली में गृहस्थी बसाने में सहूलियत रही है। उपन्यास पुश्ते की अनेक कहानियों को कहने के लिए पूरी बस्ती को रचता है। वहाँ अनेक पात्र हैं, अनेक घटनाएँ पर विशेष बात यह है कि सभी का एक-दूसरे से नाता है। नेचू की पत्नी का नाम गुड़िया है और उन दोनों का बेटा अमित, जो पूनम के स्कूल में पढ़ता है। अमित एक दिन बच्चों के साथ यमुना में तैराकी के लिए जाता है और फिर नदी के तेज़ बहाव में बह जाता है। नेचू और गुड़िया उसकी बहुत खोज-बीन करते हैं पर वह तो अब इस दुनिया में ही नहीं

तो कैसे मिलता..! नेचू और गुड़िया की दुनिया एक क्षण में उजड़ जाती है अब वे यहाँ और नहीं रहना चाहते। उनका मन टूट जाता है। अमित की जो यमुना में बहने वाली दुर्घटना है वह हमारे देश के कितने ही बच्चों के साथ बाढ़ के दिनों में आए दिन घटती रहती है। ऐसी दुर्घटनाओं में ग़रीब के बच्चे की ही क्षति होती है। क्या हम अपने नौनिहालों को इन दुर्घटनाओं से बचा सकते हैं यह वाकई बेहद चिंतनीय है।

सुगन्धा के घर में उसकी सहयोगी मुनमुन काम करती है। जिसका भतीजा परवेज़ कम उम्र में मीडिया हाउस में चाय-पानी के काम में लग गया है। वह किशोर है ऑफ़िस के कुछ लोग उसे आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। पर तभी एक दिन पुलिस वाले उसे पूछताछ के लिए उठाकर ले जाते हैं। उपन्यास सत्ता और पुलिस प्रशासन का साम्प्रदायिक चेहरा भी सामने लाता है। कथाकार पंकज सुबीर का कहना है कि इस सन्दर्भ में लेखक पाठक समाज को उद्वेलित करता है कि वह समय और समाज के समीकरणों को पकड़े। पुश्ते में मुस्लिम आबादी को घुसपैठिया कहने का एक पूर्वाग्रह है जिसके चलते आतंक और दंड का कठोर विधान सामने आता है। मनुष्य-विरोधी शक्तियाँ सामने आती हैं। परवेज़ घर लौटकर वापस नहीं आता तो मुनमुन और उसके पति को चिंता होती है। उन दोनों ने बचपन से ही उसे अपने सगे बच्चे की तरह पाला है। चौकी के पास रहने वालों से पता करने पर पता चलता है कि परवेज़ की मौत पुलिस चौकी पर ही हो गई थी। पुलिस उस की मौत के रहस्य को छुपा रही थी वह झूठी ख़बर से पुश्ते वालों को अवगत कराती रही, उनको डराती, धमकाती रही। भीड़ को सच पता चल जाता है जिससे प्रदर्शन होता है पुलिस लाठी, डंडे और आँसू गैस का सहारा लेती है। जिसमें पुश्ते के लोगों को चोटें आती हैं। उपन्यास के अंत में आठ साल लम्बे चले मुकदमे के बाद पुश्ते के लोग मुकदमा जीतते हैं। पुलिस को दोषी होने की सज़ा मिलती है। यह सब सुगन्धा के सहयोग और पूनम के साहस की वजह से हो पाता है। उपन्यास में तीन स्त्रियाँ सचेत आवाज़ के साथ उठती दिखाई देती हैं-पूनम, सुगंध और उमा।

पूरे उपन्यास को देखा जाए तो अपनी संरचना की महीन पच्चीकारी में गुँथा हुआ है। नन्हें-नन्हें द्वीप खण्डों में बँटा हुआ उपन्यास अपने क़दमों की निशानदेही में आगे बढ़ता है - ज़िंदगी की राह, नए सिक्के, गति, सपना, परवाज, नई बयार, क्रूरताएँ, साँप-सीढ़ी का खेल, चमक, संघर्ष ये सभी उपन्यास के अध्यायों के शीर्षक हैं जिनसे होते हुए ये उपन्यास ज़िंदगी के उतार चढ़ाव, उसके संघर्षों और उम्मीद की कहानी कहता है।

उपन्यास में पात्रों की संख्या काफी है लेखक ने सभी पात्रों के साथ बेहतर समायोजन किया है। पुश्ते की दुनिया एक भीड़ का इन्झावात है जिस श्रृंखला में कई तरह के पात्र प्रविष्ट होते हैं। पुश्ता अपनी अभावों की दुनिया को लेकर खड़ा है। वह बताना चाह रहा है जो आपको नहीं दिख रहा है उसे यहाँ देखा जा सकता है। 'उपन्यास' अपने साथ कई अनुत्तरित प्रश्नों को लेकर आता है जिनके माकूल जबाब देश के प्रभुता सम्पन्न लोगों के पास नहीं हैं। यह वह समाज है जो तंबू के पीछे है जिसकी मुश्किलें देखने का सम्पन्न वर्ग आदी नहीं है। कहते हैं जीवन को सही प्रकार से जीने का हक़ सभी को है पर वह इन मेहनतकशों को कहाँ मिल पाता है। उन्हें हर कदम पर हज़ार दुश्वारियाँ झेलनी पड़ती हैं। यहाँ अनपेक्षित मौतें हैं पुलिस के लाठी डण्डे हैं और उन घरों की मौतें हैं जिस घर के बारे में कहा जाता है कि घर बार- बार नहीं बनते..! पर इनके यहाँ वही घर बार -बार बनते हैं। इन घरों को अपने ही हाथों से बिगाड़ना भी पड़ता है। लेखक ने इन कामगारों के जीवन की पच्चीकारी करते हुए उनके जीवन के उल्लास को भी चित्रित किया है। कैसे वे मिलजुल कर सब साथ हो जाते हैं। महिलाएँ कैसे एक-दूसरे के सुख दु:ख में संगी साथी बन जाती हैं। फ़रीदा की बहन का पति जब उसकी पिटाई करता है तो पूनम झट से फ़रीदा के साथ चल देती है। वे दोनों फटाफट उसके घर का सारा काम कर देती हैं चूल्हे पर चाय चढ़ जाती है। टूटे मन को ऑक्सीजन मिल जाती है।

उपन्यास की भाषा जीवंत है वह कई बार काव्यात्मक हो उठती है। भाषा में बिंबात्मकता है। आँखों के समक्ष सिनेमा की तरह पूरी कथा घटित होती दिखती है। लेखक की सहजता और संवेदनशीलता को उपन्यास के प्रत्येक पृष्ठ में आसानी से पहचाना जा सकता है। भाषा में जटिलता और उलझाव बिलकुल नहीं है जो है पूरी तरह से स्पष्ट और पारदर्शी है। उपन्यास हाशिये के जीवन को बख़ूबी रचता है। प्रज्ञा के लेखन संदर्भ में ब्रह्मदत्त शर्मा का कथन है - "हाशिये के प्रति पक्षधरता प्रज्ञा के लेखन की विशिष्टता रही है"। इस पक्षधरता के साथ प्रज्ञा के किरदार प्रतिरोध की लड़ाई लड़ते नज़र आते हैं। व्यवस्था उन्हें विस्थापन दर विस्थापन में धकेलती जाए पर उपन्यासकार के अनुसार ये लोग फीनिक्स पक्षी की तरह अपनी राख से पुनर्सृजित होते हैं।

यह बात ध्यान देने की है कि पूरा उपन्यास यमुना नदी के किनारे पर बुना हुआ है। लेखिका नदी का ज़िक्र करने के बाद नदी के किनारे बसे इन लोगों के जीवन में प्रवेश कर जाती है। पर नदी के इस किनारे की बस्ती को पढ़ते हुए यह बात दीगर बैठती है कि हम अपने पर्यावरण नदियों, जल, पेड़ों को लेकर कितने संवेदनशील हैं। एक छोटा प्रयास इस पर्यावरण को बचाने में सभी का बनता है।

प्रज्ञा का उपन्यास बेहद महत्त्वपूर्ण है। राजनीति, अर्थशास्त्र और मीडिया के गलियारों से गुज़रते हुए यह उपन्यास यमुना पुश्ते के बहाने से देश की तमाम झुग्गी बस्तियों के यथार्थ का प्रमाणिक चित्र बनता है। यह उपन्यास पाठक को भावुकता में नहीं डुबा ले जाता बल्कि तर्क से सवाल खड़े करता है। उपन्यासकार का एक ज़रूरी सवाल है-"ये कहानी देश के सामने एक सवाल है कि पुश्ता और उन जैसे स्थानों पर रहने वाले लोग क्या इस देश के नागरिक हैं ? यदि हाँ तो देश इनके बारे में क्या सोचता है?" ढाई दशक के इतिहास को समेटे इस समय का एक कलात्मक और महत्त्वपूर्ण आख्यान है- 'काँधों पर घर'।

000

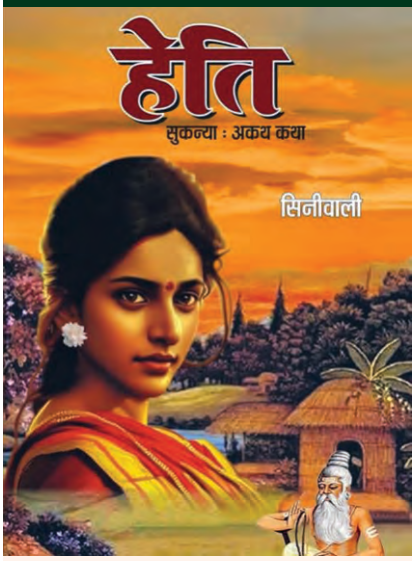

(उपन्यास)

हेति सुकन्याः अकथ कथा

समीक्षक : सुमन बाजपेयी
लेखक : सिनीवाली
प्रकाशक : रुद्रादित्य प्रकाशन

सुमन बाजपेयी
12, एकलव्य विहार, सेक्टर-13
रोहिणी दिल्ली-110085
मोबाइल- 9810795705
ईमेल- sumanbajpai@gmail.com

सिनिवाली एक ऐसी साहित्यकार हैं जो भाषा की शुद्धता के साथ खिलवाड़ न करते हुए अपनी रचना में न तो अंग्रेज़ी शब्दों का समावेश करती हैं, न ही किसी तरह से अपने शब्दों व अभिव्यक्ति के द्वारा प्रवाह को बाधित होने देती हैं। जिस शैली से उपन्यास आरंभ करती हैं, वही शैली बिना किसी ढंग से बाधित हुए पाठक को अंत तक बाँधे रखती है।

उनका यह उपन्यास ऋषि च्यवन और सुकन्या पर केंद्रित प्रचलित पौराणिक कथा पर आधारित है जो वर्तमान स्त्री की स्थिति को भी रेखांकित करता है। ऋषि च्यवन और सुकन्या की कहानी को इस पुस्तक में जिस तरह से प्रस्तुत किया गया है, वह उनके जीवन के अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालती है। उन दोनों के अंतर्द्वंद्व, जीवन के प्रति सोच, और अपराधबोध को तो लेखिका ने बहुत कुशलता से इस पुस्तक में रेखांकित किया ही है, साथ ही उनके दृष्टिकोण को भी पाठकों के समझ निरपेक्ष ढंग से रखा है। ऋषि च्यवन और सुकन्या दोनों का एकालाप उनके भीतर चल रही दुविधा को स्पष्ट करता है।

कथा का आरंभ सुकन्य द्वारा देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों को अपनी कहानी सुनाने से होता है जिनको वह अपना परिचय समिधा, अर्थात हवन की जलती हुई लकड़ी के रूप में देती है। लेकिन उसका नाम जानकर वे कहते हैं, "जिनके रूप की ख्याति स्वर्गलोक तक है जो अप्सराओं के लिए भी ईर्ष्या का विषय है।" तब वह कहती है कि अगर आप मुझे मेरे रूप से नहीं, अपितु मेरे गुण से जानते तो मुझे प्रसन्नता होती।

स्त्री देह, और रूप ही आख़िर क्यों महत्त्वपूर्ण है? उसके गुणों को प्राथमिकता क्यों नहीं दी जाती? यह प्रश्न उस युग में भी क़ायम था और आज भी क़ायम है। साधारण मनुष्य से लेकर देवता तक केवल स्त्री देह को पाने की इच्छा रखते हैं, उसे भोग्या के रूप में देखते हैं। इस उपन्यास में ऐसे बहुत से प्रकरण हैं जो इस बात की ओर इंगित करते हैं।

बरसों से तप कर रहे ऋषि च्यवन का सुकन्या के सौंदर्य से अभिभूत हो उसे पाने की चाह, सुकन्या की पीड़ा, ऋषि का अहंकार और पुरुष मानसिकता, सुकन्या से विवाह कर लेने के बावजूद उसे न पा पाना, उनके भीतर जलती क्रोध की ज्वाला और बीच-बीच में सिर उठाने वाला अपराधबोध... ऐसे कई पहलू हैं जिनको सरसता के साथ विभिन्न घटनाओं का सहारा लेते हुए संवेदनशीलता और वास्तविकता के तंतुओं के साथ जोड़ते हुए कहानी में समाविष्ट किया गया है।

अश्विनी कुमारों को यह जानकर हैरानी होती है कि उसके पति च्यवन ऋषि हैं। वह एक उचित सवाल उठाती है, जिसकी प्रासंगिकता आज भी है और वस्तुत: वह प्रश्न अभी तक उचित जवाब नहीं पा सका है। वह कहती है, "नारी को स्वपरिचय देने के लिए पुरुष की आवश्यकता क्यों? क्या मेरी गर्भधारिणी का नाम मेरे परिचय के लिए यथेष्ट नहीं है? मैं किसकी अर्धांगिनी हूँ! आपका प्रश्न आपसे ही पूछती हूँ? आप ही बताएँ-माता पार्वती के अतिरिक्त यह सौभाग्य किस स्त्री को प्राप्त हुआ? शिव के अतिरिक्त... अर्धनारीश्वर त्रिलोक में अन्य कौन हैं? मैं किसकी भूत्या हूँ, गृहदासी हूँ आपका प्रश्न ये होना चाहिए।"

वे फिर प्रश्न करते हैं, "आप जैसी सुंदरी, श्री एवं सौंदर्य जिसके चरणों की दासी हो वो ऐसा विवेकहीन निर्णय कैसे ले सकती है? उन्होंने छल से अथवा तपोबल से आपसे विवाह किया?"

"इसे विवाह नहीं... स्त्रीहरण कहिए।"

"स्त्रीहरण!" दोनों के मुख एक साथ निकला।

"ये स्त्रीहरण नहीं तो और क्या है? मैंने स्वेच्छा से उन्हें अपना पति नहीं वरण किया... बलात् मुझे धर्म की बेड़ी से जकड़कर, मेरे समस्त अधिकार छीनकर, ऋषिवर ने अपने अधिकार मुझ पर आरोपित कर दिए! मुझे बलपूर्वक धर्मपत्नी बनाकर संसार में एकाकी कर दिया! मेरे परिजन को एवं मुझे भयाक्रांत करके विवाह किया।"

सुकन्या के कथन में छिपी वेदना स्त्री जीवन की सबसे बड़ी विडंबना की ओर इशारा करती है। सुकन्या के भीतर एक हाहाकार मचा हुआ है जिसे लेखिका ने बहुत ही संगत ढंग से व्यक्त किया है। उसे पढ़कर आँखों के कोर भीग जाते हैं। "पिता अपना धर्म निर्वाह नहीं कर सके क्योंकि वे राजा हैं इसलिए विवश हैं, परंतु... उपस्थित प्रजाजन भी मूक रहे! विरोध का एक भी स्वर मेरे कर्ण सुनते तो कदाचित कष्ट तनिक कम हो जाता। परंतु सभी भयातुर अपनी सुरक्षा के लिए चिंतित थे। क्या प्रजा का कोई दायित्व नहीं? यदि ऐसे राज्य का सर्वनाश हो ही जाए तो आश्चर्य क्या? जहाँ स्त्रियों का सम्मान नहीं... जहाँ उसके जीवन का बलिदान कर सभी अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करते हों, जहाँ सभी अपना कर्त्तव्य, अपना धर्म विस्मृत कर चुके हों! उस राज्य को नष्ट हो जाना चाहिए।"

स्त्री की स्थिति जैसी तब दिखती थी, वैसी अगर कुछ प्रतिशत महिलाओं को छोड़ दिया जाए, तो उनके जीवन में कुछ ख़ास परिवर्तन नहीं आया है। इसीलिए सुकन्या कोई पौराणिक चरित्र नहीं लगती, और ऋषि च्यवन की लोलुप मानसिकता और काम-वासना को तप से अधिक महत्त्व देने की चाह... किसी साधारण पुरुष की छवि से ही मेल खाती है।

राजा शर्याति की पुत्री, गुणों से समृद्ध, प्रकृति उपासक और सच्चे प्रेम की कामना रखनी वाली सुकन्या, महल में पधारे राजकुमार प्रद्योतन को देख उनके सपने देखने लगती है, लेकिन उसका भाग्य उसे खींचकर उस वन में ले जाता है जहाँ ऋषि च्यवन बरसों से तप कर रहे थे। दूसरों की मदद करने का भाव रखने वाली संवेदन शील सुकन्या के साथ छल होगा, उसने कभी सोचा न था। मदद करने को किया गया कृत्य ही उसके जीवन में ग्रहण लगा देता है।

पिता, भाई और सखियों के साथ, वन भ्रमण को निकली सुकन्या किसी की पुकार सुनती है और उस दिशा में बाँबी में कुछ चमकता देख कुश से उसका परीक्षण करने लगती है। बरसों से तपस्या कर रहे ऋषि च्यवन की देह के ऊपर बाँबी का निर्माण हो गया जो लताओं से आच्छादित था। चमकती चीज़ ऋषि की आँख थी। कुश के स्पर्श से उस आँख की ज्योति चली जाती है। क्रोधित ऋषि, जो बरसों पहले अपनी पत्नी आरुचि को खो चुके थे, क्रोधित हो गए। लेकिन सुकन्या के रूप में उन्हें इतना मोहित कर दिया कि अपनी बरसों की तपस्या को नकारते हुए ऋषि ने शर्त रखी, "घमंड से उन्मत्त तुम्हारी पुत्री से मैं विवाह करूँगा। इसी में तुम सब का कल्याण है।"

सुकन्या यह सुनकर जड़ हो गई। क्या विवाह दंड का पर्याय है? वह छली गई है। 'मुझे दर्पी कह रहे हैं जबकि स्वयं दर्प से चूर हैं। ये कैसे तपस्वी हैं जिनमें प्रेम, करुणा, क्षमा, आदि मानवीय गुण नहीं हैं?'

सुकन्या पितृसत्तात्मक ढाँचे का विरोध नहीं कर पाई, क्योंकि उसे राजा ही नहीं, प्रजा की भी चिंता है। विनाश के डर से राजा शर्याति को शर्त माननी पड़ी और सुकन्या राजभवन छोड़ एक साधारण स्त्री की रहना स्वीकार कर लिया। वह पति धर्म निभाती है उनकी सेवा करके, लेकिन ऋषि जो उसकी देह पाना चाहते थे, उसे वह समर्पित नहीं करती। जब वह उसकी शैय्या पर आकर बैठते हैं तो वह कहती है, "आप मेरे धर्म पति हैं। हमारे मध्य प्रेम नहीं है।"

ऋषि अपने तपोबल की श्रेष्ठता भूल अपनी दुर्बलता के आगे विवश हैं। सुकन्या को पाने को आतुर हैं। वह कहते हैं, "तुम्हारे दर्शन के पश्चात मैं पुन: सांसारिक मनुष्य हो गया। तुम्हारे सौंदर्य का ही प्रभाव है कि मुझ जैसे पाषाण हो चुके पुरुष में भी प्रेम समीर की भाँति प्रवाहित होने लगा।"

सुकन्या का उन्हें न अपनाना, उन्हें विचलित करता है। वह कहते हैं साधारण जन ऋषि-महर्षि को केवल जप-तप, ध्यान, योग, कर्मकांड निष्पादित करने वाला महान व्यक्ति मान लेते हैं। वे ये क्यों नहीं समझ पाते कि महान व्यक्ति से पूर्व वह एक साधारण मनुष्य भी है, जिसके भीतर सहज, स्वाभाविक प्रेमिल इच्छाएँ, आकांक्षाएँ वय के संग जन्म लेने लगती हैं। तभी तो मैंने कहा साधारण जन केवल मेरे दम्भी, हठी एवं तपोबल की शक्ति से युक्त महर्षि के रूप से अवगत हैं। मैं आज आपके समक्ष अपने हृदय का वो द्वार खोलना चाहता हूँ जो महर्षि च्यवन की महानता के असह्य भार में दब गया है।

सुकन्या में धैर्य है, संयम है, एक राजकुमारी होने के बावजूद वह कठिन परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर रही है। उसके चरित्र की दृढ़ता इस उपन्यास में बार-बार दृष्टिगोचर होती है। ऋषि च्वयन का अहं जाग्रत होता है। "तपस्वी च्यवन को त्रिलोक में कोई पराजित नहीं कर सकता तो एक स्त्री... तुच्छ स्त्री से वह पराजय स्वीकार कर लें? मैं उसके रूप, उसकी काया को मर्दित कर दूँगा। इसे मेरे श्राप का भय नहीं, मेरी मंत्र शक्ति का ज्ञान नहीं?

यहाँ ऋषि के अपने को श्रेष्ठ मानने का अहंकार दृष्टिगोचर होता है। एक स्त्री को पराजित करने की भावना में वह यह तक भूल जाते हैं कि वह एक तपस्वी हैं और उन्होंने बरसों तक तप-साधना की है। प्रेम और काम-वासना में क्या अंतर है, इसे सुकन्या अपने तर्कों के माध्यम से ऋषि के सामने जिस तरह से परिभाषित करती है, उससे वह निरुत्तर अवश्य हो जाते हैं। पर क्रोध भी प्रस्फुटित होता है। वह समिधा की तरह एक अग्नि में जलते रहते हैं, क्योंकि वह सुकन्या हेती (आग की लपट) है। उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता भी इससे सिद्ध होती है। वह विक्षुब्ध हैं। लेकिन उन्हें ज्ञात है कि 'मैं केवल उसकी काया को ही अपने संग ला सका, उसका मन नहीं।'

ऋषि च्यवन भी ग्लानि से दग्ध हैं। उनकी स्वीकोरोक्ति इस बात का प्रमाण है। "एक चक्षु के लिए दंड स्वरूप मैंने विवाह तो कर लिया, परंतु सत्य तो यह था कि मेरी वासना के कारण मेरी दृष्टि गई। जिसके लिए मैंने अपने नेत्र का मूल्य दिया, उसने अभी तक मुझे दृष्टि भर देखा भी नहीं। मेरी आंतरिक वेदना प्रतिदिन सघन होती जा रही थी। जिस तपोबल पर मुझे घमंड था, जो क्रोध मेरा अस्त्र था, उसके माध्यम से मैं सुकन्या का प्रेम प्राप्त नहीं कर सका। भय के अस्त्र से विवाह तो किया जा सकता है, परंतु प्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता। मैं त्रिलोक पर विजय प्राप्त कर सकता था, किंतु अपनी भार्या पर नहीं।"

सुकन्या का संवेदनशील करुणामय हृदय, वनस्पतियों व वन्यजीवों के प्रति प्रेम, मदद करने को तत्पर रहना, लेखिका ने उसकी चारित्रिक विशेषताओं को अनेक प्रसंगों के माध्यम से बहुत ही सुलझे ढंग से वर्णित किया है। वनस्पतियों का साहचर्य उसे औषधि ज्ञाता बनने में मदद करता है और वह रोगियों और पीड़ितों की सहायता करते हुए मानव कल्याण में जुटी रहती है।

कथा में ऋषि के गुरु भाई उदधि और सुकन्या की सखी उर्वी के चरित्र को भी बख़ूबी उभारा गया है।

पूरी कथा सुनने के बाद अश्विनी कुमारों को लगता है कि सुकन्या चाहे तो अपना प्राप्य पा सकती है। एक वैद्य कहता है, "आपकी पीड़ा हमें व्यथित कर रही है, परंतु यदि कोई स्वयं के साथ ही न्याय नहीं करे तो किसी अन्य को दोष देना क्या उचित है?"

इस पर सुकन्या जानना चाहती है कि आख़िर वे कहना क्या चाहते हैं। वे कहते हैं, "आपकी भाँति सुकुमारी इस वन में कैसे सुखी रह सकती है? वृद्ध ऋषि ने तो आपसे विवाह कर सेविका बनाया है। वह तो अपने संसार में रमे हुए हैं।"

अश्विनी कुमार उसके नज़दीक आकर जब उसकी रक्षा की बात करते हैं तो उनमें से किसी एक का वरण करने का प्रस्ताव रखते हैं। वह फुफकार उठती है, "यह घृणित मानसिकता इतनी क्रूर क्यों है कि एक स्त्री को रक्षा की आवश्यकता हो, एक देह को दूसरी देह से भय हो!

अंत में अश्विनी कुमार च्यवन ऋषि को तरुण रूप देने की बात कहते हैं और शर्त रखते हैं उसे उन तीनों में से किसी एक का वरण करना होगा। सुकन्या हतप्रभ है, पर अडिग है।

"आपको स्वयं के बारे में अवश्य विचार करना चाहिए। इसलिए हे सुंदरी आप हमारे सुझाव पर विचार करें। हम दोनों ही आपके योग्य हैं, सुंदर बलिशठ, ऐश्वर्यशाली एवं युवा हैं। हम में से किसी एक का आप वरण कर लें।" यह सुनते ही उसके चक्षु, उसका हृदय, उसकी देह जल उठती है। वह कहती है, "स्वयंदूत पुरुष में वासना, क्या सर्प में विष के समान समाहित होती है? आपको मेरे सुख की कामना नहीं... मधुर शब्दों का प्रयोग कर तथा सुख ऐश्वर्य की पुष्प वाटिका दिखाकर आप भी तो वही कर रहे हैं जो ऋषिवर च्यवन ने किया। आपको इतना भी ज्ञान नहीं कि मेरे समक्ष ऐसा प्रस्ताव रखना मेरा कितना बड़ा अपमान है?"

ऋषि च्वयन के तरुण बनने पर सुकन्या कहती है, "आपने मेरे रूप से आकर्षित होकर मुझे बंदी बनाया। अब यदि मैं आपके सुंदर तरुण रूप के कारण ही आपका परित्याग कर दूँ तो? स्त्री धर्म, पत्नी धर्म का अपमान किया। अतएव हे महर्षि आपका परित्याग करना ही श्रेष्ठकर है।" सुकन्या की दृढ़ता और निश्चय उसके हर संवाद में परिलक्षित होता है। वह विवश नहीं है, कमज़ोर नहीं है। केवल अपने कर्त्तव्य निभाने के लिए वह बंधन में बंधी रहती है तो यह उसकी शालीनता है।

वह सवाल करती है कि "समर्पण प्रेम में होता है। नर को नारी का स्वामी होने का दम्भ क्यों? मैं स्वयं के बारे में निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र क्यों नहीं? शरीर मेरा, वेदना मेरी, दुख मेरा नितांत निजी तो निर्णयकर्ता आप कैसे हो सकते हैं? क्या आपका अनुसरण कर मनुष्य वासना की ओर अग्रसर नहीं होगा? दम्भ कल्याण के मार्ग में बाधक है। इस प्रकृति से पूछिए... लोक कल्याण किसे कहते हैं। यहाँ आपणिककर्म का स्थान नहीं। निष्काम आप होते तो अपने क्रोध, अहंकार, वासना से सर्वप्रथम स्वयं को मुक्त करते। अभी मैं यहाँ आप तीनों के मध्य खड़ी आपसे प्रश्न नहीं कर रही होती..."

यह सवाल ऋषि को निरुत्तर कर देता है। उनकी दृष्टि झुक जाती है और वह उससे पर्णकुटी में चलने का अनुरोध करते हैं।

स्त्री के कोमल मन, प्रेम पाने की स्वाभाविक इच्छा, देह के अंदर जागती कामनाएँ, संताप, दुविधा, तार्किक परिप्रेक्ष्य और दृढ़ता और अन्ततः अपने लिए स्वयं निर्णय लेने की सजगता से होता हुआ, यह उपन्यास पुरुष हठधर्मिता, अहं व स्त्री द्वारा उठाए गए प्रश्नों, उसके अस्तित्व की गरिमा पर सवाल करता हुआ, उसके निर्णय पर जाकर समाप्त होता है। लेकिन ने पृष्ठ-दर-पृष्ठ इस उपन्यास में अनेक सवाल उठाए हैं जो स्त्री जीवन से जुड़े हैं।

कथा के साथ-साथ, स्त्री सौंदर्य का वर्णन और दूसरी ओर अद्‌भुत बिंबों और उपमाओं की वेणी गूँथते प्रकृति चित्रण, पुस्तक को और अधिक पठनीय बना देता है। एक उदाहरण देखें-

'वहाँ से कुछ ही दूरी पर श्वेत पुष्पों से लदा वृक्ष झूम था। उसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे तरु ने अपनी भुजाएँ बढ़ाकर सुरपथ में विचर रहे श्वेत मेघों को उतार कर ओढ़ लिया हो। धवल वृक्ष, पवन साथ मंद-मंद झूम रहा था ज्यों संगीत सुन थिरक रहा हो। उससे झरते पुष्प...! अहा, कितना सुन्दर पेड़ था। उस दिवस से पूर्व वैसा वृक्ष नहीं देखा था। वो तरु मुझे स्वयं की भाँति क्यों प्रतीत हो रहा था? क्या मेरी भाँति प्रेम के अमृत बूँदों के आस्वादन का सुख मिला था! तभी आनंद विभोर हो थिरक रहा था। मैं निकट से उस वृक्ष के दर्शन हेतु व्यग्र हो उठी।

कथानक में घटनाओं के साथ लंबी-लंबी वैचारिक बहसें और एकालाप आरंभ से तक चलता रहता है। यह उपन्यास सुकन्या और ऋषि च्यवन की कथा के न पढ़े गए पृष्ठों को एक व्यापक फ़लक देते हुए संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है।

000

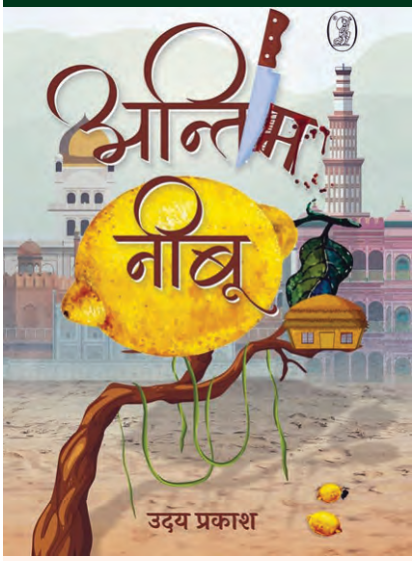

(कहानी संग्रह)

अन्तिम नीबू

समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : उदय प्रकाश

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, पहली मंज़िल
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली 110048
मोबाइल- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

उदय प्रकाश की नवीनतम पुस्तक 'अंतिम नीबू' की ख़ासियत यह है कि इसमें उनकी सबसे पहली कहानी 'बिजली का बल्ब और मौत का फ़ासला' और अब तक की आख़िरी कहानी 'अंतिम नीबू' शामिल है। उदय प्रकाश को पढ़ने वाले उसकी कहानी विधा की तकनीक को जानते ही हैं कि उनकी कहानी को आप केवल आनंद प्राप्त करने के लिए या समय बिताने के लिहाज़ से पढ़ नहीं सकते। हो सकता है, पहली बार में आपको उनकी कहानी पूरी तरह से समझ भी न आएँ। वैसे भी समय बिताने या आनंद लेने के लिए आजकल साहित्य कौन पढ़ता है, न किसी के पास समय है और मनोरंजन के लिए सोशल मीडिया के चैनलों का अंत ही नहीं। मेरे हिसाब से साहित्य का अध्ययन वर्तमान समय में 'लग्ज़री कैटेगरी' में आता है, जिसे हर कोई 'अफोर्ड' नहीं कर सकता। इसलिए साहित्य का अध्ययन और उसमें उदय प्रकाश की रचना को पढ़ना अपने आप में गंभीरता का विषय है। इस पुस्तक की लंबी भूमिका में लेखक ने इस संग्रह में शामिल सभी कहानियों के प्रथम प्रकाशन के साथ, उस पत्रिका और संपादक का भी उल्लेख किया है। उसी में से यह बात निकल आई कि इस पुस्तक में पहली और आख़िरी (अब तक की) कहानी एक साथ प्रकाशित हुई है।

उदय प्रकाश की कहानी का केंद्र सामान्य व्यक्ति रहा है, जिसका अस्तित्व समाज व व्यवस्था के कारण अस्तित्वहीनता के कगार तक पहुँच चुका है, जिसे अगर पंजाबी भाषा में कहे तो 'अणहोए' होने की स्थिति तक पहुँचा दिया गया, जिसके होने न होने से इस दुनिया, देश व समाज को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। वह केवल भीड़ का हिस्सा है, ऐसा हिस्सा, जिसका कोई सिर नहीं, जनसंख्या की ऐसी संख्या जिसका कोई ख़ास नंबर नहीं। वह केवल आँकड़ों की गिनती में गिना जा सकता है। ऐसी सोच व्यवस्था, प्रशासन, राज्याधिकारियों व पुलिस व्यवस्था की हो सकती है, पर ऐसे लोगो को कला, साहित्य, फिल्मों में स्थान दिया जाता रहा है और यहाँ तक कि अब ओटीटी व सोशल मीडिया भी ऐसे 'अणहोए' या अस्तित्वहीन लोगों को स्थान देने में पीछे नहीं है। देखने में दोनों बातें भले ही विरोधाभास प्रतीत हो परन्तु वास्तविकता यह है कि जीवन जीने, ज़िंदगी के धड़कने की बात इसी वर्ग के द्वारा ही सार्थक होती है। इसी वर्ग के पास संघर्षों की, भूख, तड़प, ज़रूरतों की गाथा है, जिसमें से रोज़ाना आम आदमी को गुज़रना पड़ता है। इन लोगों के द्वारा ही हमें शब्दों के सही अर्थ समझ में आते हैं, ज़रूरत क्या है, इच्छा, आकांक्षा, लालसा में क्या अंतर है। जब हम जीने के लिए रोज़ाना की ज़रूरत को समझ लेते हैं तभी हम इससे आगे के शब्दों की ओर बढ़ सकते हैं। तब तक वे कुछ शब्द बेमानी से प्रतीत होते हैं। ऐसे लोग उदय प्रकाश की कहानियों के केंद्र में है, भले वह 'जज साहब' हो या 'रुक्कू' या 'अंधा' हो।

'जज साहब' नामक कहानी सिर्फ इस पात्र की कहानी नहीं है, बल्कि लेखक की अन्य कहानियों की तरह कई परतों वाली है। जिसमें वैशाली का पॉश एरिया जजों की कालोनी का है, जिसे 'न्याय मार्ग' कहा जाता है। परन्तु इस न्याय मार्ग का रास्ता गड्डों व हादसों से भरा, 'वन वे' ही है। इस वाक्य के द्वारा ही लेखक न्याय व्यवस्था का पूरा चिट्ठा बयान कर देता है। इसी कहानी का पात्र सरकारी मुलाज़िम होने के बावजूद 'बेरोज़गार' है क्योंकि जिस मंत्री ने उसे

किसी अदालत में 'जज' लगवाया था, वह बलात्कार के केस में जेल चला गया और सिफारिशी जज की अस्थायी नियुक्ति से छुट्टी हो गई। अब वह प्रतिदिन सूट पहन कर तैयार होकर निकलता है कि उसे कहीं न कहीं से नौकरी का ऑफर आ जाएगा, मगर ऐसा हुआ नहीं। विडंबना देखे, यहाँ 'जज' तक की कोई हैसियत नहीं। ऐसे में पत्नी व बच्चे का घर छोड़ कर चले जाना और अंत में सपरिवार आत्महत्या की ख़बर वक्ता को उस पानवाले से मिली, जिसकी गुमटी पर दोनों की मुलाकात हुई थी। उसी पानवाले से छह हज़ार उधार लेकर गए जज साहब कभी नहीं लौटे। पैसों के चक्कर में पानवाले ने झाँसी में उनके घर के आसपास खोजा और सील लगे बंद ताले के पीछे सपरिवार आत्महत्या की बात सामने आई। कहानी में पान वाला ही ऐसा है, जो सारी परेशानियों के बावजूद व्यवस्था व प्रशासन को रोज़ाना मोटी-मोटी गालियाँ देने की योग्यता रखता है और उसके पक्के ग्राहक जज ने उसी से उधार में पैसे माँगे। क्योंकि पान की गुमटी पर दिन-रात ग्राहक आने से 'कमाई' होती ही हैं और उसके द्वारा दी गई उन सभी गालियों पर उसे टोकने की बजाय सभी हँसते हैं क्योंकि शराफ़त के मुखैटे में जो बात वे सरेआम नहीं कह सकते, वह खुल कर कहता है। इस हिसाब से हमारे सिस्टम में पानवाला जन-प्रतिनिधि है, जो रोज़ की कमाई भी कर सकता है, अपने बड़े परिवार को पाल भी सकता है और सभी को गालियाँ भी दे सकता है। यहाँ प्रतिदिन आवश्यकता का सामान रेहड़ी पर बेचने वाला समाज के हाशिये पर हैं, इसलिए वह कमाई भले ही कर ले, सफेद पट्टी पर नहीं आ सकता और पढ़े-लिखे को नौकरी के लिए पैसे और सिफ़ारिश की आवश्यकता है, वर्ना उसे सपरिवार जीवन का अंत करने की ओर धकेल दिया जाता है।

'रुक्कू' विवाहित छात्रों के हॉस्टल में रहने वाले नव-विवाहित के घर काम करने वाली माया का छोटा लड़का, जो माँ के साथ आता। जिसके हाथ पर घर का युवक कुछ सिक्के रख देता। हालाँकि इन सिक्कों को देने के पीछे उस युवक की किसे छिपे स्वार्थ की कोई मंशा या नीयत शामिल नहीं थी, बस यूँ ही कि वह छोटा लड़का टॉफी वगैरह खाकर ख़ुश हो जाएगा। पर एक दिन उसके सामने ही दुकान से उसके दिए सिक्कों से ही टॉफी लेकर निकले माँ-पुत्र अभी सड़क पर ही पहुँचे कि एक तेज़ रफ्तार बस में जल्दी से चढ़ने की कोशिश में रुक्कू उसकी चपेट में आ गया। बस का पहिया उसकी कमज़ोर टाँगों से गुज़र गया। खून से लथपथ रुक्कू को आसपास तमाशाबीनों की सड़क तो नज़र आई मगर सहायता के लिए एक भी हाथ आगे नहीं आया। जब रुक्कू की नज़रें भीड़ में पीछे खड़े उसी युवक से टकराईं तो वह युवक भी एकदम लड़खड़ा गया। माया उस बस के टायर के साथ गुमसुम हुई बैठी थी। यह कहानी शायद तब की है, जब लोगों को किसी भी हादसे या दुर्घटना से ज़्यादा उसका 'लाइव कवरेज' अन्य लोगों को परोसने की आदत नहीं पड़ी थी। ख़रीदी हुई टॉफियाँ आसपास बिखरी पड़ी थीं। युवक को लगा, ऐसे उन्मादी बस ड्राइवरों को नींद की गोलियाँ दी जानी चाहिए, जिनसे इनका तनाव और आगे बढ़ने की होड़ कम हो सके। परन्तु माया के वेतन से बाकी रह गए पाँच सौ पचास रुपयों से ऐसी कितनी गोलियाँ ख़रीदी जा सकेगी, जो इस उन्मादी सभ्यता को सुलाने के लिए काफी होगी। एक टॉफी खाकर शर्मीली सी मुस्कान देने वाला रुक्कू सड़क हादसे में मारा गया, इससे किसी को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। यह ऐसी घटना है, जिसका उल्लेख किसी अख़बार के छोटे से कॉलम में भी नहीं मिलेगा। यह हमारे जीवन के रोज़मर्रा की कहानी है, हालाँकि ढूँढ़ें तो इसमें से कई मुद्दे मिल सकते है, हमारी परिवहन व्यवस्था, निजी बस चालकों को क्यों हर समय दूसरी बसों से आगे निकलने की जल्दी रहती है। वैसे स्कूल जाने की उम्र में रुक्कू को अपनी माँ के साथ दूसरों के घरों में क्यों जाना पड़ रहा है ? ढूँढ़ने निकलेंगे तो और भी बहुत कुछ निकल आएगा...।

उदय प्रकाश की कहानी में छिपा सूक्ष्म व्यंग्य बहुत धारदार होता है, इसे 'अनावरण' कहानी में देखा जा सकता है। एक छोटे क़स्बे में प्रसिद्ध मूर्तिकार अनंतराव दत्तात्राव पेंढे द्वारा निर्मित बाबा साहब अंबेडकर की काँसे की बनी मूर्ति का अनावरण 25 दिसंबर को राज्य के खनिज संपदा और मानव संसाधन मंत्री श्री सिद्धेश्वर पांडे द्वारा होना निश्चित किया गया था, जो संयोग से वहाँ से गुज़रते हुए, किसी दूसरी ट्रेन को पकड़ने वाले थे। इस बीच दस मिनट के लिए मंत्री जी की कृपादृष्टि पाने की कवायद युद्धस्तर पर की गई। इसमें नगरपालिका के अध्यक्ष, उद्योगपति तरुण केडिया, बसपा के स्थानीय नेता बुचई प्रसाद सभी अपने अपने स्वार्थ सेंक लेने की ताक में थे। परन्तु मूर्ति जिस रेशमी पीताम्बर आवरण से ढकी थी, उसे घड़ी पर तारीख़ बदलते ही कोई आधी रात सर्दी के मारे खींच ले गया। अब 'अनावरण' कैसे होगा, जब उस पर आवरण ही नहीं रहा। जबकि आवरण के रंग को लेकर भी सभी महानुभावों द्वारा ख़ासी माथा-पच्ची की गई थी। किसी को पीताम्बर खींचे देख नशे में जा रहा बुचई प्रसाद चीख उठा और यह ख़बर जंगल की आग की तरह रात को ही फैल गई। मंत्री जी किसी चार्टर विमान में बैठ सीधे दिल्ली निकल लिए और कार्यक्रम संपन्न न हो पाया। मगर सारा ठीकरा उस बूढ़े दुबेरा पर ही फूटा, जिसने मंत्री से पहले ही उस मूर्ति का 'अनावरण' अपने कर कमलों से कर दिया था। बाबा साहेब की मूर्ति का अनावरण करने का असली हकदार या सुपात्र एक ग़रीब ही हो सकता है। उसे अब आंतकवादी, मुस्लिम, ईसाई, साजिशी बता कर 'इनकांउटर' किए जाने तक की ख़बरें अख़बारों में घूमने लगी थी। जबकि उसका वास्तविक गुनाह ग़रीब होना था, अस्तित्वहीन होना था।

संग्रह की एक कहानी 'आवरण', बेहद गंभीर, व्यंग्यमयी होने के साथ संवेदनशील और मर्मस्पर्शी है। आवरण से अर्थ पुस्तक कवर से है। इसके माध्यम से लेखक ने लेखकों, चित्रकारों और प्रकाशकों की दुनिया का चित्रण करने के साथ ही प्रकृति के अबूझ रहस्यों से भी परिचित करवाया है, जो आज के समय की जलवायु और संक्रमण के दौर को भी साथ ही लपेट लेती है। हमारे यहाँ लेखक

सदा बेचारे की श्रेणी में ही रहा है। किसी कवि की पुस्तक का शीर्षक आख़िरी या अंतिम जैसा कुछ जान कर, वक्ता कवि उस कवि की दशा देखकर ही समझ गया था कि कविताएँ निराशा व अवसाद से भरी होगी। उसके साथ खड़े व्यक्ति को प्रकाशक कह कर मिलवाया गया, जिसकी स्थिति भी उस समय उजड़ी सी थी। मगर कुछ समय के पश्चात् उस बेचारे से कवि को सरेआम एक व्यक्ति ने छुरे से काट डाला और यह कहते हुए उसका सिर थाने के सामने पटक दिया कि 'ठेकेदारों का विरोध करोगे, तो यही हाल होगा।' उस ठेकेदार का बाल भी बाँका नहीं हुआ, शिकायत कौन करता और गवाही कौन देता! परन्तु वक्ता कवि ने अर्से बाद उस उजड़े प्रकाशक को बड़ी सी गाड़ी, बेशक़ीमती घड़ी और ब्रीफ़केस के साथ शानदार होटल में एक राज्याधिकारी के साथ जाते और हाथ मिलते देखा। वक्ता कवि ने अपने काव्य संग्रह के लिए बंद गली के कोने वाले प्रकाशक को ढूँढ़ा, जिसने कभी-कभार उन जैसों की सहायता करने के लिए किताब छापने का वादा किया। किताब छप भी गई परन्तु आज वह प्रकाशक उस सँकरी गली से निकल कर किसी शानदार ऑफ़िस में पहुँच चुका है। और आजकल वक्ता कवि को बाहर से ही जाने का कह रखा हुआ है क्योंकि वह कवि बार-बार उस ज़माने से उस चित्र को वापस माँगने आ रहा है, जो एक फ्रेम किया हुआ स्केच उसने अपनी पुस्तक के आवरण के लिए प्रकाशक को दिया था और उससे वायदा लिया था कि वह उसे लौटा देगा। आज इतने बरसों वाद भी वह लौटाया नहीं गया। वह स्केच कवि के चित्रकार मित्र के उस पुत्र का था, जिसकी उम्र भले छह-सात बरस हो गई थी परन्तु उसकी आँखों से कही बातों की भाषा केवल वह चित्रकार पिता ही समझ पाता था। उस बच्चे की दयनीय शारीरिक स्थिति और उससे उपजी मनस्थिति का वह चित्र सजीव चित्रण था। उसे देख-देख कर ही चित्रकार कोई भी चित्र या स्केच बना पाता था। चित्रकार को मालूम था कि यदि वह नहीं रहेगा तो उसका पुत्र किसी अन्य से कभी बात नहीं कर पाएगा। ऐसे में उस खो दिए गए चित्र की अहमीयत और उसका बेशक़ीमती होना केवल कवि और उस चित्रकार को ही मालूम था। बार-बार आग्रह करने के बावजूद वह स्केच वापस नहीं मिल पाया। बाज़ारवाद के दौर में उपभोग और उपभोक्ताओं की रंगीन, चमकती दुनिया में हाथ से बने किसी काले स्याह स्केच की क़ीमत कहाँ रह गई है। किसी पुलिसवाले की किताब के कई-कई संस्करण प्रकाशित कर, सेठ बने उस प्रकाशक को क्या मालूम कि यह स्केच तो उस चित्रकार के अपने पुत्र का था जबकि यह चित्रकार दूर किसी जंगल में किसी प्रजाति के इकलौते फूल को बचाने के लिए उसकी मिट्टी और पानी को बदलने का प्रयास करते हुए कितने दिनों तक घर वापस नहीं आया था। उस प्रजाति के फूल को संरक्षित करने के प्रयास में उसे समझ में आया कि जंगल की सारी मिट्टी ही संक्रमित हो चुकी है। इससे अन्य फूलों के जीवन पर भी ख़तरा मँडराने लगा है। उस प्रजाति के फूल को संरक्षित करने के दौरान बनाए गए उन फूलों के चित्रों की क़ीमत आज विश्व की कला गैलरियों में करोड़ों में पहुँच गई थी। परन्तु चित्रकार के लिए वे सब बेमानी था क्योंकि अभी भी उसने कला दीर्घा में उन फूलों के चारों चित्रों के बीच में अपने पुत्र के स्केच के फ्रेम की जगह को वैसे ही ख़ाली छोड़ दिया था। पुत्र अब रहा नहीं था, उसकी याद वाला वह स्केच भी नहीं मिला था, जिसे पाने के लिए अब चित्रकार प्रकाशक के मुँह पर पैसे फेंकने तक को तैयार था। शोहरत की बुलंदी पर पहुँचा चित्रकार स्केच की उस ख़ाली जगह की तरह चेतना से भी ख़ाली होकर 'कोमा' में पहुँच चुका था। वक्ता कवि को मालूम है, यदि अभी भी उसे प्रकाशक के गोदाम में वह स्केच मिल जाए तो तीन साल से कोमा में पड़ा उस का मित्र, फिर से उठ कर बैठ जाएगा, जब वह उसके कानों में फुसफुसाकर स्केच के मिल जाने की बात कह देगा। यह एक संभावना है, जो जीवन और साहित्य में अभी भी बची हुई है, जो रक्त को शिराओं में और चेतना को चेतनाहीनता से बचाती आ रही है। लेखक और प्रकाशकों के जीवन में ज़मीन-आसमान का अंतर अब आ चुका है। लेखकों की पुस्तकें छाप कर प्रकाशक करोड़पति बन रहे हैं और लेखक अभी भी वही 'बेचारा...।' समाज में जब कभी भी सिस्टम को ख़तरा महसूस होता है, वह अपनी फ़ाइलों की पूर्ति के लिए विजयी भाव से सबसे निरीह प्राणी को पकड़ कर उसे सज़ा देने में ही अपनी सफलता समझता है। किसी मुहल्ले का नितांत-एकांत 'अंधा' भी इसी प्रकार व्यवस्था की बलि पर चढ़ाया जाता है, उसके होने न होने से न कोई परिवार बिखरेगा न कोई रोने वाला है। इस प्रकार अनेक स्थानों में, अनेक घटनाओं में व्यक्ति के अस्तित्व को हीन-थीन बताकर, उसे आँकड़ों में तब्दील कर दिया जाता है।

अपनी एक कहानी में लेखक ने आख़िरी या अंतिम शब्द को किसी के काव्य शीर्षक में बहुत बेचारगी व निराशा के रूप में पेश किया था जबकि इस कहानी के शीर्षक 'अंतिम नीबू' में उसका पात्र इसे उस ब्रह्मास्त्र के रूप में देख रहा है, जो चीन के वुहान से शुरू हुए कोरोना वायरस को ख़त्म करने के प्रयास में अंतिम हथियार साबित हो सकता है। जो उसके पात्र को अपने घर के बगीचे से अनायास मिल गया और अचानक ही उस पर यह इलहाम हुआ कि इस नीबू के सेवन से ही इस वायरस पर विजय पाई जा सकती है। परन्तु जब तक वह रसोई से चाकू लेकर वापस उस मेज़ तक पहुँचता, जिस पर वह उसे छोड़ कर गया था, वह नीबू वहाँ पर नहीं था। पात्र अब युद्धस्तर पर जीवन प्रयास के उस अंतिम नीबू की खोज में लगा हुआ है।

उदय प्रकाश की कहानियों में व्यंग्य भी कई परतों में और कई प्रकार से उजागर होता है। सामान्य व्यक्ति की सामान्यता की बात-बात करते हुए वे उसे असामान्य स्थिति तक ले जाते हैं। उनकी कहानियाँ लंबी होती हैं, परत-दर-परत खुलती हैं और पाठक को अपने साथ धीरे-धीरे उस खोल में लपेटते चली जाती हैं। इन कहानियाँ का अध्ययन संवेदनशील पाठक को अपनी सामान्य स्थिति से इतर सोचने पर मजबूर करता है।

000

शोध-आलोचना

कथा-सप्तक - अनिलप्रभा कुमार
संपादक - आकाश माथुर

(कहानी संग्रह)

कथा सप्तक - अनिलप्रभा कुमार

समीक्षक : डॉ. मनोज मोक्षेंद्र
संपादक : आकाश माथुर
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल- +91-9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

मनोज मोक्षेन्द्र
145, ओमिक्रोन - 1ए, पॉकेट-ए, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर 201310 उप्र
मोबाइल- 9910360249
ईमेल- drmanojs5@gmail.com

अनिल प्रभाकुमार प्रवासी कथाकारों में एक महत्त्वपूर्ण नाम है। कथा-साहित्य में उनके हस्तक्षेप ने हिन्दी साहित्य को एक अलग प्रकार के शिल्प और कथ्य को जन्म दिया है। वह एक उर्वर कथाकार हैं जो अपनी कहानियों में समाज, परिवार और आदमी को परस्पर कड़ीबद्ध करते हुए एक ऐसे संसार की कल्पना करती हैं जहाँ मानवीय संबंधों में समरसता की बाढ़ उमड़ती हो।

उनके सद्य:प्रकाशित कहानी संग्रह 'कथा सप्तक' में कुल सात कहानियाँ हैं और सभी कहानियाँ भाव पक्ष और कला पक्ष की दृष्टियों से परिपक्व हैं। अगर उनकी कहानियों में कथानक पर नज़र डाला जाए तो बेशक वे भिन्न-भिन्न मुद्दों और विषयों पर आधारित हैं। उनकी कहानियाँ हमारे समय के जागृत साक्ष्य हैं जो हमारा सामना जीवन के यथार्थ से करवाते हैं। उनमें सूक्ष्म मानवीय स्पर्श है। संवेदनाओं की असीम गहराई है। मनुष्य से मनुष्य को जोड़ने की अकुलाहट है। ज़मीन से जुड़ी हुई ज़िंदग़ियों का आह्वान है, आलाप है। मनुष्य की पीड़ा और वेदना का थर्मामीटर हैं; या, यूँ कहा जाना चाहिए कि उस पीड़ा का मापक यंत्र हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'सफ़ेद चादर' ज़िंदगी की क़ीमत का आकलन करने वाली विशिष्ट कहानी है। इस कहानी में कार दुर्घटना में एक हिरण की मौत हो जाती है। हिरण के संबंध में पति जो कार चालक है और उसकी पत्नी के उदासीन विचार हैं। यदि किसी मनुष्य की मौत, कार-दुर्घटना में होती तो इसकी सूचना पुलिस को दी जाती; लेकिन, यह तो जानवर ठहरा। अधिकतर, वे अपने ही हितों की बातों में लिप्त रहते हैं। वे कंधे के दर्द से राहत पाने के लिए डॉक्टर ली से 'टुइना थैरेपी' करवाने आगे निकल पड़ते हैं। कहानीकार छोटे-छोटे कथा-तंतुओं को जोड़ते हुए आगे बढ़ती हैं। पति को हिरण से टक्कर के कारण कार को हुए नुक़सान की चिंता है। दूसरी ओर, पत्नी को मरे हुए हिरण की चिंता बार-बार सताती है। आदमी को अधिक चिंता इस बात की है कि क्षतिग्रस्त कार की मरम्मत में कितने पैसे ख़ुद खर्च करने होंगे और कितने पैसे इंश्योरेंस से मिलेंगे! तब, पत्नी को अपने छोटे भाई मुकेश की कुछ समय पहले दिल्ली में बस की चपेट में हुई मौत की स्मृति कुरेदने लगती है। हिरण की मौत का मुकेश की मौत से सादृश्य दिया जाना कथाकार द्वारा प्रयुक्त एक रूपक की भाँति है। पर, मुकेश की मौत पर उसके पति की वैसी ही उदासीनता है जैसी कि हिरण की मौत पर थी। पति को तो इस बात की चिंता है कि इंश्योरेंस द्वारा पूरी रक़म मिल जाए ताकि वह इस तरह की बचत से कहीं छुट्टियाँ मनाने जा सके। रात में पत्नी सपने में अपने भाई के शव को कुछ लोगों द्वारा सफ़ेद चादर ओढ़ाते देखकर व्याकुल हो जाती है। जब वह जागती है तो अपने पति से कहती है कि उन्हें भी हिरण के शव पर सफ़ेद चादर ओढ़ा देनी चाहिए थी। इस प्रकार, यह कहानी मानवीय संवेदना के जुड़ने और उखड़ने की कहानी है। कहानी संवेदनाओं की तलाश करती है। ये संवेदनाएँ किसी जानवर की मृत्यु और किसी मनुष्य की मृत्यु पर अलग-अलग होती हैं। अनिल प्रभा कुमार बड़ी सूक्ष्मता से इन संवेदनाओं की परतों को खोलती हैं।

संग्रह की अगली कहानी का शीर्षक है- 'महानगर में ही कहीं'। यह मर्माहत करने वाले एक रिपोर्ताज़ की तरह है। ग़रीब परिवार का एक भारतीय लड़का हरजीत ग्रोवर कैलीफोर्निया में ग़ुमनाम ज़िंदग़ी गुज़र-बसर करता है। वह स्याह, सन्नाटे और कोलाहल से भरे महानगर की पृष्ठभूमि में एक ठिगने से कमरे में अपनी सारी उम्र गुज़ार देता है। वह ग़ुम इच्छाओं के क़ब्रिस्तान में इसी कमरे में डेरा डाले बैठा रहता है। यह कहानी एक ऐसे हताश व्यक्ति की है जो स्वयं के लिए भी अपरिचित है। वह अत्यल्प सुविधाओं के साथ सीमित दिनचर्या में अपने निष्क्रिय जीवन का अवसान कर देता है। उसका जीवन चकरघिन्नी करते समय की चाक पर बिल्कुल ठहरा हुआ है। उसे घंटे, दिन, महीने और सालों के बीतने का इंतज़ार नहीं है। शायद इंतज़ार है इंतज़ार के ख़त्म हो जाने का। उसकी युवावस्था में, माँ सिलाई मशीन पर सिलाई का काम करके जो पैसे मिलते थे, उसे वह उसके पिता को सौंप देती थी। पिता उसे अपनी तरह मेकैनिक बनाना चाहता था लेकिन वह मस्त आज़ाद रहना चाहता था।

अमेरिकी प्रवास में उसने लीसा नाम की एक लड़की से प्रेम भी किया था जिस प्रेम में शुष्कता थी, नीरसता था, जिससे तंग आकर लीसा उसे छोड़कर कहीं चली गई। उस एकाकी जीवन में उसने अंतिम साँस ली और उसकी लाश कई दिनों तक कमरे में ही तब तक सड़ती रही, जब तक कि उसकी बदबू ने पडोसियों की नाक में दम नहीं कर दिया।

तदनंतर, समर नाम के एक फ्री लांसिंग पत्रकार का प्रवेश होता है। वह भी अमरीका में अपना भविष्य तलाशता है जो अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता की पढ़ाई करने के साथ-साथ फ्री लांसिंग करता है। समर, हरजिंदर ग्रोवर से हैरी ग्रोवर बने व्यक्ति की मौत के बाद उसकी अस्मिता की तलाश करता है। समर को आश्चर्य होता है कि हैरी की मौत के बाद उसकी डेड बॉडी का क्लेम करने के लिए उसका न तो कोई रिश्तेदार है, न ही कोई मित्र। उसकी बॉडी सार्वजनिक शवघर में पड़ी रहती है। यह भी एक बहुत बड़ी विडंबना है कि उसकी जायदाद का वारिस तो मिल जाता है, लेकिन उसके मृत शरीर का कोई वारिस नहीं मिलता है जो उसका अंतिम संस्कार कर सके। बड़ी छानबीन के बाद उसकी वसीयत मिलती है जिसमें उसकी हार्दिक इच्छा का उल्लेख होता है कि उसके शव को विद्युत शव-दाहघर में जलाया जाए। यह कहानी महानगरीय जीवन में व्याप्त वीभत्स हृदयविहीनता को रेखांकित करती है। इस कहानी को पढ़ कर हमारे मस्तिष्क में दिल्ली में घटित एक घटना की याद ताज़ा हो जाती है जिसमें आशा साहनी नामक वृद्धा की लाश उसके घर में नौ माह तक सड़ती रहती है और उसकी ख़बर लेने वाला कोई नहीं होता है।

अनिलप्रभा कुमार आज के आधुनिकतावादी परिवार में आए आँधी-तूफ़ान, झंझावात का मार्मिक चित्रण अपनी कहानियों में करती हैं। एक ऐसी ही कहानी है 'फिर से' जिसमें पति-पत्नी के बीच अलगाव का दंश भोग रहे बच्चों की व्यथा को बड़ी मार्मिकता से वर्णित किया गया है। राष्ट्र की सीमा की रक्षा कर रहे पिता केशी को पत्नी तिया से कई-कई महीनों तक दूर रहना पड़ता है। यह बात तिया को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होती है और वह केशी को त्याग कर चली जाती है। उसके बाद बच्चे पिता की देख-रेख में बडे होते हैं। पुत्री संजना की शादी माँ की अनुपस्थिति में होती है क्योंकि उसके पिता केशी को यह स्वीकार्य नहीं है कि तिया उस विवाह-कार्यक्रम में मौजूद हो। पर, शादी के बाद संजना और उसका पति सोहम फ़ोन के माध्यम से तिया से संपर्क में आते हैं।

पति से पत्नी के अलगाव और बच्चों से माँ के बिछोह की यह दर्दनाक कहानी है। फिर, बच्चों की ज़िद पर माँ तिया वापस पति केशी के घर आती है। केशी, तिया, दामाद और बच्चों के फिर से एक-साथ होने पर जो औपचारिक क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ, भावनाओं और विचारों का विनिमय, बीते दिनों की स्मृतियों का आवर्तन होता है, ये सभी पाठकों को भावनाओं की तेज़ लहरों में बहाकर ले जाने के लिए काफी है। इस कहानी में कथाकार घटनाओं का विस्तार संवादों के माध्यम से करती है। सहज और सुग्राह्य भाषा-शैली में लिखी गई यह कहानी पाठकों को बाँध लेती है। ऐसा लगता है कि जो कुछ इस कहानी में घटित होता है, वह किसी का अनुभवजन्य है। कहानी अत्यंत गतिशील है जिसमें घटनाक्रम स्वाभाविक रूप से हमें खींचता हुआ-सा लगता है।

अनिलप्रभा कुमार का ऑब्ज़र्वेशन पॉवर क़ाबिले-तारीफ़ है। जब वह अफ़साने बुनती हैं तो उनमें प्रकृति और आसपास का वातावरण आत्मसात होता जाता है। उनकी वर्णन-क्षमता अत्यंत प्रखर है। कहानियों की पूर्व-पीठिका का स्वाभाविक सृजन करते हुए वह कथा-वस्तु में आहिस्ता-आहिस्ता प्रवेश करती हैं। कथानक का पल्लू तो वह हमेशा मज़बूती से थामे रहती हैं। कथा-तंतुओं का विकास बड़े सधे हुए हाथों से करती हैं। शब्दों के चयन में वह कभी कोताही नहीं बरतती। बस, आम पाठक की समझ में जो आ जाए, उसी भाषा-शैली का प्रयोग करती हैं। ऐसे में, गंभीर कथानक भी स्वादिष्ट और सुपाच्य-सा लगने लगता है।

'बेमौसम की बर्फ़' ऐसी ही कहानी है। यह कहानी पति-पत्नी, हेमंत और चारु के रिश्तों को उकेरती है। पुत्री महक बीमार है और पिता उसकी सेवा-सुश्रूषा में समर्पित है। जाड़े का बर्फ़ीला मौसम तबाहकुन है जो बीमार महक के लिए सही नहीं है। मौसम के और बिगड़ने पर अस्पताल का सहारा लेना होगा क्योंकि महक का बुखार बढ़ने लगता है। बीमार बेटी के लिए बर्फ़ीले तूफ़ान जैसे आपातकाल में घर में ही सारे बंदोबस्त किए जाते है। बिजली ग़ुल होने पर मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं। फिर, मौसम के और ख़राब होने पर वे अपने परिचित रमेश और लीना के यहाँ कार से बर्फ़ीली सड़क को चीरते हुए निकलते हैं जहाँ पॉवर गुल नहीं है। वहाँ पहुँचकर कुछ घंटों के बाद, उन्हें पता चलता है कि उनके घर में बिजली आ गई है। सो, वे आधी रात को फिर वापस घर को निकल पड़ते हैं। घर पहुँचकर बाहर उन्हें मैग्नोलिया का हरा-भरा पेड़ बर्फ़ीले तूफ़ान से गिरा हुआ मिलता है। मैग्नोलिया के वृक्ष का ज़िक्र कई बार किया जाता है। मौसम की मार झेलते हुए उसमें आए परिवर्तनों को कथाकार प्रतीकात्मक रूप में वर्णित करती है। इस तरह यह कहानी बिगड़ैल मौसम के बदौलत दुश्कर इंसानी कवायद के लिए मज़बूर करती है। कथाकार सारे विवरण बड़ी सटीकता और सिद्धहस्तता से देती है और जिज्ञासा को आद्योपांत बनाए रखती हैं।

अनिलप्रभा कुमार की कहानी का आरंभ ढलती शाम, पेड़ों की झुरमुट, साँवले बादल, रंग बदलते आकाश, मौसम के नानाविध मूड जैसे प्राकृतिक ब्योरों से भरा होता है। कहानी के उतार-चढ़ाव में भी वह कथानक को परिवेश और वातारण के साथ पिरोकर प्रस्तुत करने में अपनी कुशलता का परिचय देती हैं। इस तरह उष्ण कथानक को भी सरस और सजीव बनाती हैं। इन सबके साथ मानवीय हाव-भाव के साथ मनोवैज्ञानिक सामंजस्य स्थापित करने की उनकी कला भी श्लाघ्य है।

संग्रह की अगली कहानी 'किसलिए' इस लिहाज़ से उल्लेखनीय है कि कथाकार अपना ध्यान एक कुत्ते, जिसका नाम पेपे है, पर टिकाती है। चिड़िया और गिलहरी का पीछा करने, बाँहों के घेरे में आकर हाथ-पैर-मुँह

चूमने-चाटने, पूँछ हिलाने और जीभ लपलपाने जैसी कुत्ते की मनचली आदतों का सजीव चित्रण है। कहानी में पारिवारिक बातों, समस्याओं, गतिविधियों आदि का जीवंत ब्योरा मिलता है जिनसे पाठक पूरी जिज्ञासा से स्वयं को जोड़ सकता है। फिर, रिटायर्ड डैडी की देखरेख में कुत्ते को ईशा द्वारा घर पर छोड़ जाना डैडी के लिए एक ज़हमत जैसा है। कुत्ते की बीमारी में उसके चिकित्सीय निदान के लिए उपाय किया जाता है। एक तरह से यह कहानी कुत्ते के मनोविज्ञान की कहानी है जिसे पढ़कर पाठक विस्मय-सागर में डूबते-उतराते नज़र आएँगे। नि:संदेह, कुत्ते के उच्छृन्खल व्यवहार के साथ मानवीय आचरण का तालमेल बैठाना, कथाकार का आपबीती अनुभव जैसा लगता है।

अनिलप्रभा कुमार की कहानियों के शीर्षक भी बड़े मज़ेदार से लगते हैं- किसलिए, बेमौसम की बर्फ़, फिर से, महानगर में ही कहीं आदि। ये शीर्षक किसी रूपक जैसे लगते हैं जिनका प्रत्यक्ष सादृश्य कथानक में व्यवहृत किसी विशेष घटना से हो सकता है। बहुत कम कहानियाँ किसी पात्र या चरित्र पर केंद्रित होती हैं, बल्कि वे कुछ ऐसी घटनाओं के घटित होने की ओर संकेत करती हैं, जिससे कि पाठक का ध्यान बरबस आकर्षित हो जाए कि आख़िर, कहानी में ऐसा क्या आश्चर्यजनक है जिसे कथाकार बताना चाहती है। उसके बाद पाठक कहानी की कथा-वस्तु को तलाशने और खँगालने में पूरी तरह खो जाता है।

अब देखिए, अगली कहानी का शीर्षक है- बहता पानी। इस कहानी में एक प्रवासिनी काफी समय के बाद भारत लौटती है और एयरपोर्ट पर जैसे ही क़दम रखती है उसका मन भाव-विह्वल हो उठता है। अपनी मूल जन्मभूमि में होने का अहसास उसे भावुक कर देता है। उसका यादों में खोकर बदहवास होना किसे द्रवित नहीं कर देगा? अनिल प्रभा उसकी मन:स्थिति का वर्णन कुछ इस प्रकार करती हैं- 'इस बार कुछ बदला हुआ ज़रूर होगा। मायका होगा, माँ नहीं होगी। पीहर होगा, पिता नहीं होंगे। भाई के घर जा रही है। भाभी होगी, भतीजी ससुराल में होगी।'

एक प्रवासिनी के अपनी मातृभूमि के अपने गृह में प्रवेश करने पर जितना जीवंत चित्रण अनिलप्रभा कुमार करती हैं, वैसा चित्रण एक कथाकार की प्रस्तुतिकरण की क्षमता की पराकाष्ठा है। यह प्रवासिनी स्वर्गवासी हो चुके स्वजनों के स्मृति-सागर में गहराई से डूबने-उतराने लगती है। लेकिन बाबुल का घर अब भाई का हो चुका है-यह अहसास उसके हृदय को विदीर्ण कर जाता है। आख़िर में, भारत में अपने अधिवास-काल के ख़त्म होने पर, जब वह वापस विदेश जाने को होती है तो उसका मन फिर से कचोटने लगता है। वह कार में बैठी-बैठी अपने भाई के स्वामित्व में अपने पिता के घर को आख़िरी बार तीव्र इच्छा से निहारती है। तब, उसे एक चेतावनी का स्वर सुनाई देता है- "मत देख पीछे मुड़कर, पत्थर हो जाएगी।"

नि:संदेह, कहानी का कथानक एक कहानी में घटित घटनाक्रम की दृष्टि से छोटा तो है लेकिन इसका पाठक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक प्रवासी की अपने मूल देश में न होने की विषादावस्था का अंदाज़ा इस कहानी को पढ़कर लगाया जा सकता है। कहानी को आद्योपांत पढ़ने के बाद मन में यह सवाल हूक सा उठता है कि हम विदेश-गमन क्यों करते हैं?

संग्रह की अन्तिम कहानी 'वायवी' मुख्य रूप से दो स्त्रियों यानी, माँ वीरो और उसकी बेटी प्रीत की दैनंदिन की कहानी है। उनकी ज़िंदगी को समय की परिधि में संकुचित नहीं किया जा सकता है; बल्कि, उनके द्वारा जीवन जीने का पैमाना उनकी साँसें हैं। माँ वीरो घर में होकर भी नहीं है और उसकी बेटी अपनी माँ के साथ सर्वत्र है। माँ, प्रीत के पिता निन्धे के इंतज़ार में है जो कोई बीस वर्षों से घर वापस नहीं आया है। शायद, वह किसी अज्ञात जुर्म में जेल की सज़ा काट रहा है। माँ वीरो दुल्हन के कपड़ों पर कढ़ाई और पच्चीकारी का काम करके घर का गुज़ारा करती है। उन्हें ढाँढस बँधाने के लिए प्रीत के ताया जी हैं। इसके अतिरिक्त, कहानी की पृष्ठभूमि में मायूसी का साम्राज्य है जो कहानी के हर पात्र पर हावी है।

अनिल प्रभा कुमार के पात्र प्राय: अंतर्मुखी होते हैं जो स्वयं से बतियाते हुए बातों का तूफ़ान खड़ा करते हैं। ख़ुद से उलझते हैं, ख़ुद से झगड़ते हैं, ख़ुद से बतियाते हैं आत्मालाप करते हैं और ऐसा करते हुए ख़ुद से ही बहल भी जाते हैं। वे गृहस्थ जीवन के विभिन्न मसलों से जूझते हैं, रिश्तों को भावनात्मक स्तर पर तौलते हैं, स्मृतियों की भूल-भुलैया में भटकते हैं, जो कुछ अपने समाज, समय और प्रारब्ध से मिलता है-उससे वे संतुष्ट नहीं होते हैं। एक शांत कुंठा के साथ वे दुनिया से अलविदा भी कर जाते हैं। वे अभाव, संत्रास, प्यास, क्षुधा और एकाकीपन से संघर्ष करते हुए अपनी अस्मिता को मिटा देना ही अपनी नियति समझते हैं।

एक बात स्पष्ट हो जाता है या यूँ कहा जा सकता है कि इन कहानियों को पढ़ते हुए एक सच उद्घाटित होता है कि विदेश प्रवास करना अंततोगत्वा सुख और संतोष का स्रोत नहीं बन सकता। इसके अलावा, अनिलप्रभा कुमार कई बार वस्तुस्थितियों और पात्रों का ब्योरा देते हुए दार्शनिकों की भाँति भी बतियाने लगती हैं। उनके चिंतन में समूचे मानव-समाज की पीड़ा के शमन करने की बेचैनी साफ नज़र आती है।

अनिलप्रभा कुमार में अव्यक्त को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है। इम्प्लिसिट को एक्सिप्लिट करने का माद्दा है। उनकी भाषा में मुहावरा गढ़ने का लालित्य है। भाषा में संक्षिप्तता तो होती है लेकिन उसकी अभिव्यंजकता भी प्रशंसनीय है। उनके पात्र बातूनी तो हैं, लेकिन उनके संवाद में संक्षिप्तता है। जब वे बतियाते हैं, किसी से या स्वयं से, तो उनके भीतर और उनके बाहर का वातावरण एक्सपोज़ हो जाता है। कथाकार, कहानी लिखते समय शब्दावलियों के चयन पर काफी परिश्रम करती हैं। वर्तमान कहानी-शिल्प के अनुसार वह कथानक के विस्तार के लिए पात्रों के संवाद पर अधिक निर्भर करती हैं और संवाद के जरिए ही घटनाक्रम को आगे बढ़ाती हैं।

000

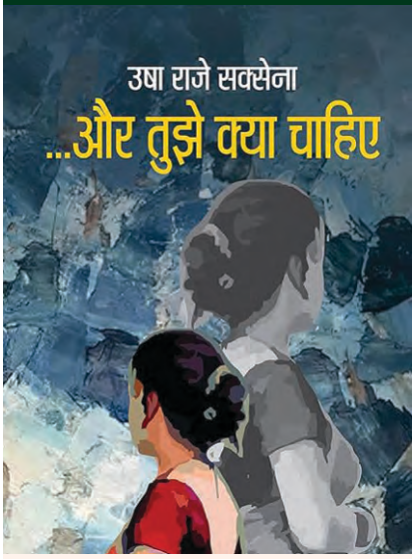

(कहानी संग्रह)

और तुझे क्या चाहिए

समीक्षक : सरोजिनी नौटियाल

लेखक : उषा राजे सक्सेना

प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

सरोजिनी नौटियाल
176, आराघर, देहरादून
मोबाइल- 9410983596
ईमेल- snautiyal1@gmail.com

उषा राजे सक्सेना का नया कहानी संग्रह 'और तुझे क्या चाहिए' उनकी ऐसी दस कहानियों का संकलन है जिनमें जो बीत गया उसके कुछ ज़िद्दी दाग़ हैं, जो उपस्थित है, उसके धमाकेदार तगादे हैं और इनके मध्य हर आदमी के अपने-अपने युद्ध हैं। लड़ाई अस्तित्व की है। स्थूल से सूक्ष्म तक विस्तार पाती इस लड़ाई को बयाँ करती इन कहानियों में जग-जीवन के कई रंग हैं। बदलते समय के साथ बहुत-कुछ रूपान्तरित हो रहा है। पोषे हुए सत्य भी बदल रहे हैं। परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है लेकिन जो उल्लेखनीय है वह यह है कि आज परिवर्तन की गति बहुत तेज़ और पैमाना बहुत बड़ा है। चीज़ें बहुत जल्दी कालातीत हो जाती हैं। समय के साथ बदलने का दबाव है हम सब पर। फलत: आग्रह क्षीण होते जा रहे हैं।

कथानक की दृष्टि से 'और तुझे क्या चाहिए' की कहानियों मैं विषय वैविध्य है। कालखंड की दृष्टि से सत्तर के दशक से लेकर आज तक का समय-विस्तार है। अधिकतर कहानियों में पश्चिम की आबोहवा है, समाज है, राज्य है। पहली तीन कहानियों में यद्यपि विषयवस्तु अलग-अलग है तथापि पृष्ठभूमि में लंदन की ख़ुशबू है, जीवन है, अनुशासन है। पात्रों के साथ पाठक भी वहाँ की गति से चलने का प्रयास करने लगता है। कहीं लड़खड़ाता है तो कहीं घुटन में बेबसी के आँसू बहाता है। लेकिन जीने की लड़ाई जारी रखता है। वह पूरब से पश्चिम की ओर भौतिक रूप से भले ही आकाशमार्ग से पहुँचा हो लेकिन मन-चेतना से वह पगडंडी के रस्ते धीरे-धीरे ही पहुँच रहा है। मंदा, सचिन, सौम्या किसी हिलते झूला पुल के किनारों को पकड़-पकड़ कर ही चलने का प्रयास कर रहे हैं, रास्ता डगमगा ज़रूर रहा है लेकिन दिशा ठीक है। पराई ज़मीन पर अपने-अपने हालात में क़ैद पात्रों के अकेलेपन को कहानियाँ महसूस कराने में कमोबेश सफल हुई हैं।

शीर्षक कहानी कठिन कहानी है। 'और तुझे क्या चाहिए औरत' हथौड़े की तरह मन्दा पर सतत वार करता रहता है। नई-नई विवाहिता मन्दा सात वर्षों के वियोग के बाद जब जैसे-तैसे पति घनश्याम के साथ लंदन जाती है। मगर तब तक थेम्स में बहुत पानी बह चुका होता है। उसे खाने को मिल जाता है, रहने को मिल जाता है, आवश्यक दिशा-निर्देश भी मिल जाते हैं लेकिन पति नहीं मिलता। उस आश्वस्तिशून्य मनोभूमि में वह उफनती नदी की धारा नहीं बनती बल्कि चुपचाप बहती नदी तरह अपना मार्ग बनाने की जुगत तलाशती है। जितना है, उसी की टेक से खड़े होने की जद्दोजहद में है। हालाँकि इस टेक की क़ीमत बहुत है- उसका संपूर्ण वजूद। गाली-गलौच और घुड़कियों के एवज में मिली इस टेक को फिलहाल गँवाने का उसके पास कोई विकल्प नहीं है। लिहाज़ा कहानीकार के पास भी कोई रास्ता नहीं। सिवाय इसके कि पति की तमाम छल-क्रूरता-मजबूरियों की बेढंगी शिला को अपने हृदय पर रख कर एक अनजानी जगह वह स्वयं अपना रास्ता बनाए। स्वयंसिद्धा बन जाए। बलपूर्वक, ख़ुद से लड़ते हुए चलने का उपक्रम करे। बात कठिन है। सो कहानी भी कठिन है। हजम नहीं होती। कसमसाती है।

'अम्मा, अमृता और कुनाल अरना की शादी में' अमृता का आत्मबोध है। उसको आत्मग्लानि होती है कि उसने अपनी सास को कितना कम जाना। अरना के संबंध में उनकी कही हर बात के निहितार्थ जब खुलने लगते हैं तो किताबी शिक्षा में प्रवीण अमृता जीवन की शिक्षा में निखर कर सोना बन गई अम्मा की तुलना में स्वयं को बहुत छोटा पाती है। एक बात और जो कहानी में उभर कर आती है कि अपनी कमियों को लेकर हम दूसरे से जिस उदारता की अपेक्षा रखते हैं, वैसी उदारता दूसरे की कमियों के प्रति हममें मुश्किल से ही सृजित हो पाती है।

'इंटरनेट डेटिंग' में माता-पिता और विदेश मतलब यूरोप में भविष्य तलाशती अगली पीढ़ी के मध्य छूटते-पकड़ते सूत्रों में पाठक भारत में छूट गई पीढ़ी की छटपटाहट और देश से बाहर गई पीढ़ी के अकेलेपन को असहाय होकर देखते-सुनते हैं। समय की रफ़्तार में हमारे आग्रह किस प्रकार क्षीण हो रहे हैं, इसकी बानगी भी देखने को मिलती है। अब माता-पिता को जात-बिरादरी और रंग-नस्ल से कोई दिक़्क़त नहीं है। बस लड़का जोड़ का होना चाहिए। कहानी का उत्तरार्ध साइबर क्राइम के रोमांच, असमंजस और नए-नए प्रेमियों के बनते-बिगड़ते विश्वास

को समेटे एक चेतावनी के साथ सुखद अंत को प्राप्त हो जाता है।

'एक मुलाक़ात' में भारत की गंध है। लंबे समय से स्वच्छ-सहज वातावरण में रहने के अभ्यस्त व्यक्ति की दृष्टि में वह भारत की दुर्गंध हो सकती है। अनचाहे चेहरों से अनचाही मुलाक़ात अनायास स्वयं से भी एक मुलाक़ात बन जाती है। अपने कल्पना लोक में वैश्विक चिंतन करने वाले बुद्धिजीवी अच्छी ज़िंदगी न मिलने पर असहज हो जाते हैं। वे परपीड़ा पर अच्छा वक्तव्य दे सकते हैं, मर्मस्पशी कहानी रच सकते हैं लेकिन समय आने पर उनसे एक सुरक्षित दूरी बनाए रखना चाहते हैं। उन खुली किताबों से विमुख हो जाते हैं और अपनी बनाई किताबों की दुनिया में आश्रय लेकर यथासंभव उनसे इतने तटस्थ हो जाते हैं कि वहाँ होते हुए भी वहाँ पर नहीं होना चाहते। लेखिका पूरी ईमानदारी से स्वीकार करती भी हैं और कहती हैं, 'सच पूछें तो मेरी फितरत रूमानी है। ज़िंदगी की सच्चाइयों से मैं ज़्यादा वास्ता नहीं रख पाती। अक्सर यह होता है जहाँ मैं नहीं होती हूँ, वहाँ होती हूँ और जहाँ होती हूँ वहाँ नहीं होती हूँ'। कह सकते हैं कि रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ। किसी परिस्थिति विशेष पर हम अपने में इतना सिमट जाते हैं कि अपनी दृश्य-श्रव्य- सारी इन्द्रियाँ बंद कर लेते हैं उन सब से जिनके अब हम आदी नहीं रहे। हाँ, चौकन्ने ज़रूर हो जाते हैं- माल-असबाब की सुरक्षा के लिए। धीरे-धीरे लेखक उस भीड़-भड़क्के में मैले-कुचैले झोलों-गट्ठर-बिस्तरबंद जैसे सामान से घिरी-दबी ज़िंदगियों से बहते जीवन रस को महसूस करने लगीं। कुछ न होते हुए भी उनके पास हमेशा देने को कुछ होता है। जगह देते हैं, खाना देते हैं, साथ देते हैं, सम्मान देते हैं। उनमें स्वभावत: 'विनम्र दासता' होती है। वे हर प्रकार से ग़रीब नहीं हैं। वे हैं तो सबके लिए जगह हो ही जाती है, एक कमज़ोर- अकेली माँ की बच्चियों को सँभालने वाले हाथ मिल जाते हैं। जिसके पास खाना नहीं है, उसकी तरफ भी खाना आ जाता है। कितनी भी कशमकश क्यों न हो, ज़िंदगी अपने लिए जगह बना ही लेती है। अपने खोल में दुबका व्यक्ति मजबूर हो जाता है कि वह अपना चश्मा उतारे, साफ करे और फिर देखे। अपने खोल से बाहर आए और ज़र्द चेहरे वाली उस बाईस साला औरत को अपना संपर्क सूत्र थमाए। शिल्प की दृष्टि से कहानी प्रभावोत्पादक है। पाठक पढ़ते-पढ़ते जाने कब उसी कंपार्टमेंट में बैठ जाता है उसे पता ही नहीं चलता। वह भी उस 'मोनालिसा' को पढ़ने लगता है और उसके चेहरे पर बिछी मायूसी से उदास हो जाता है। उसके उतरने पर उसे झटका लगता है, व्यग्र हो जाता है कि वह जिस घेरे में है, वह संदेहास्पद है। चाह कर भी वह उसके साथ उतर नहीं पाता। इसलिए बेचैनी बनी रहती है। बस एक संबल को पकड़े ख़ुद को थामने की कोशिश करता है कि उसके पास कोई आश्वासन है। किसी ने उसको कहा हुआ है 'मुश्किलों में मुझे याद करना'। कहानी एक मजलूम औरत की टूटन से उपजी असहाय करुणा से भिगो देती है। क्षुब्ध भी करती है। सच बात यह है कि अब मन को औरत की इतनी बेबसी मंज़ूर नहीं। उषा जी की कहानियाँ ख़ुद को नकारात्मकता से दूर रखती हैं। ख़ुदकुशी जैसे वृत्तान्त के साथ भी यह कहानी शेष बची बच्ची की सुरक्षा व परवरिश के संकल्प से इंसानियत पर भरोसा बनाए रखती है।

'एक मनचाहा दिन' स्त्री वह भी शादी-शुदा, कभी केवल अपने लिए जी ले तो हटकर तो होगा ही। कहानी एकाएक मृदुला गर्ग की कहानी 'हरी बिन्दी' का स्मरण करा देती है। अपनी मर्ज़ी का पहनना, घूमना और खाना- चाहे बेतुका हो। मर्ज़ी बिना विद्रोह के तो हो नहीं सकती। इसलिए वह वही पहनती है जिसे पहनने पर अक्सर उसे टोक दिया जाता है। उसे जहाँ तबियत हो, वहाँ घूमना है और अपने को आज़ाद करना है। आख़िर ज़िंदगी पर मेरा भी कुछ हक़ है- इस तेवर के साथ निकल जाती है वह, लंदन की सैर पर। नायिका की घुमक्कड़ी के बहाने पाठक भी लंदन की थोड़ी-बहुत सैर कर लेता है। कई अनदेखे-अनछुए ऐसे दृश्यों से भी साक्षात्कार हो जाता है, जिन पर हम रोज़ की भागम-भाग दिनचर्या में ग़ौर नहीं कर पाते। सबके अपने-अपने संघर्ष हैं। सबके लिए सब कुछ आसान नहीं होता। तभी तो वह चौंक जाती है, क्या बस्किंग के लिए भी लाइसेंस मिलता है ! यह भी कोई कला है ! इसके लिए भी अभ्यास की ज़रूरत है ! इसके भी आलोचक, प्रशंसक और पारखी हो सकते हैं ! कहानी व्यक्ति के मन के कोने से समाज के विस्तीर्ण फलक की ओर जाती है और पात्रों की केन्द्रीय स्थिति बदल जाती है। धीरे-धीरे आकार लेती हुई कहानी अपने चरम पर पहुँचती है, जब वह कवि सत्येंद्र की पंक्तियों को छूती है। अनायास स्ट्रीट आर्टिस्ट साजिंदा, बस्कर कुछ नहीं से कुछ महत्त्वपूर्ण बन जाता है। अपने संतुलित व्यवहार, संघर्षशीलता और दिलेरी से नायिका को उसी की नज़र में छोटा कर देता है। रोचक संवादों से आगे बढ़ती कहानी नायिका के चाइनीज़ कॉलर के ऊपर लटकते हरे बुंदों पर बस्कर की प्रशंसात्मक टिप्पणी 'विशिष्ट' पर जा कर रुक जाती है। मगर कहानी ख़त्म नहीं होती। वह चलती रहती है पाठकों के चिंतन में। हिंदुस्तान में बैठे पाठक को कभी अपने इर्द-गिर्द विचरने वाले नौटंकी कलाकार, स्वाँग करने वाले बहुरूपिये, नट, मदारी, मजमेबाज़ यहाँ तक कि सरकस के कलाकार- एकाएक याद आ जाते हैं। ये सब कहाँ विलुप्त हो गए ! आख़िर ये सब वहीं लोग थे न जो 'घास का गट्ठर पकड़ कर अटलांटिक पार करने का हौसला' रखते हैं, केवल समाज की आश्वस्ति के बल पर। कहानी में बस्कर का चरित्र बहुत प्रभावशाली बन पड़ा है। उसके लिए सब कुछ आसान नहीं है। मगर उसे जीना आता है। अपनी ज़िंदादिली से वह विवश कर देता है कि अगला अपने 'मनचाहागाह' से बाहर आ कर इस नेक विचार को पोष सके कि प्रोत्साहित करना भी प्रशंसनीय कार्य है। और, इस प्रकार बन जाती है 'एक मनचाहा दिन' संग्रह की एक सफल कहानी।

'मेरा अपराध क्या है' एक उपेक्षित-तिरस्कृत बचपन की जटिल कहानी है। अगर किसी बच्चे को यह लगे कि उसका घर संदेह के घेरे में रहता है, कभी भी सोशल वर्कर आ धमकती है बच्चों को सरकारी व्यवस्था में ले

जाने के लिए तो उस बढ़ते हुए बच्चे की मनोदशा को समझना इतना आसान नहीं है। ग़ैर ज़िम्मेदार माँ, सौतेला पिता और नानी का छूटता साथ स्टेला को पार्क हाऊस से असेस्मेंट सेंटर के दरवाज़े तक पहुँचा देता है। उसकी इस यात्रा के दौरान लेखिका ने इंग्लैंड के समाज और सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था का जो चित्र खींचा है, उससे भी पाठक रूबरू होता है। यह लेखक का अपने नए समाज को खोज कर सम्मुख लाने का उपक्रम है। एक सोलह साल की आहत किशोरी अपनी रिपोर्ट को लेकर आशंकित है। भयभीत भी। जाने सूची में उसके नाम के आगे कौन सा 'चिप्पड़' लगेगा। ऐसे में असेस्मेंट सेंटर के इंचार्ज के मुख से निकला यह वाक्य 'मैं पहले कहानी पढ़ता हूँ, आलोचना नहीं', उस किशोरी को ही नहीं, पाठक को भी बड़ी राहत देता है। इस वाक्य को कहानी का ब्रह्मवाक्य कह सकते हैं। सचमुच स्वतंत्र आकलन के लिए ज़रूरी है कि किसी और की नज़र से देखने से पहले हम अपनी विवेक दृष्टि का प्रयोग करें।

इस कड़ी में 'समझौते' कहानी कुछ हट कर है। जीवन की विसंगतियाँ आत्मदर्शन का द्वार खोल देती हैं। कई दफ़े जैसा दिखाई देता है, वैसा वास्तव में होता नहीं है। हम आवरणों में ख़ुद से भी ख़ुद को ओझल करने लगते हैं। एक फ़र्क़ मुल्क में अपने-अपने अकेलेपन से जूझतीं रिफत, उसकी ज़हीन वॉकिंग पार्टनर और उसकी वाचाल सखी शाहीन ने अपने-अपने आशियाने तलाश लिए हैं। जो समझौतों के पैबंदों से अटे पड़े हैं। ज़िंदगी चल रही है मगर जारी है जीने की तलाश। ख़ूबसूरत शहर के सुविधामय जीवन और ख़ुशनुमा परिवेश की हलचल में अपना स्व कहीं गुम हो गया और वे अपनी जड़ों से उखड़ कर कटी पतंग की मानिंद समझौतों की कठिन डोर को पकड़े हवा में फड़फड़ा रही हैं। वॉकिंग पार्टनर अपना औरा बना कर उसमें क़ैद हो गई है। रिफत को जद्दोजहद करनी पड़ती है ख़ुद को रैशनालाइज-विवेकसम्मत महसूस करने के लिए। और, बेचारी शाहीन अपने बेवफ़ा पति की छुटपुट कृपाओं और मेंटली रिटार्टेड बच्चे की माता होने की एवज में मिलने वाले राजकीय अनुदानों पर टेक लगाए हुए है। जाहिर है समझौतों की क़ीमत होती है। सबसे बड़ी क़ीमत होती है आत्म सम्मान की। वही ये औरतें चुका रही हैं और ख़ुद से ही हारती जा रहीं हैं। अपने को थामने का स्तर इतना नीचा चला गया कि वे इसमें संतोष करने को विवश हैं कि कम से कम साफिया और प्रफुल्ला की तरह मेंटल केस तो नहीं बने, कि अपने दम पर एक ग़ैर मुल्क में रह रही हैं।

संग्रह की अन्य कहानियाँ भी अपने-अपने मिज़ाज से पाठकों को बाँधती हैं। 'और जल गया उसका सर्वस्व' में इल्लीगल इमिग्रेंटस की दयनीय दशा का चित्रण भयभीत करता है। ऐसी क्या विवशता होगी कि व्यक्ति एक अनाम ज़िंदगी के लिए देश तक छोड़ देता है! कहानी में रास्ते से रास्ता निकलता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी प्रवास भूमि के किसी भी अनुभव को लेखिका ने जाया नहीं होने दिया। उसका रेशा-रेशा अपने अवचेतन मन में सुरक्षित रख कर उसे फुरसत से अपनी कहानियों में गूँथ दिया।

'आन्टोप्रेन्योर' में एक कर्मठ और सफल प्रोफेशनल स्त्री के साथ रहने वाले उसके परिजनों की आत्मिक हीनता और भावनात्मक कुंठा को जिस प्रकार उभारा गया है, वह बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है। ज़िंदगी केवल विवेकसम्मत और तर्कसम्मत बातों के दम पर नहीं चलती। कभी-कभी मनसम्मत भी होते रहना चाहिए। मगर कहानी में जिस प्रकार अति प्रोफ़ेशनल पत्नी की गति से चलने के लिए पति को ख़ुद से मजबूर होना पड़ा, वह रोहन जैसे समर्पित पति के प्रति ज़्यादती कही जा सकती है।

'हिन्दी माथे की बिन्दी में' भी विदेश परोक्ष रूप में मौजूद है। दो सौ साल अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से उपजा आत्महीनता का मनोविज्ञान एक आम भारतीय का स्वभाव बन गया है। आशू से ऐश बने दोस्त की उदंडता का जैसा जवाब निरंजन ने दिया, वह मन को ख़ुश कर देता है। हिन्दी को एक झटके में उसकी सही जगह प्रतिष्ठित करने वाले निरंजन का चरित्र बहुत रोचक बन पड़ा है। वह सौ सुनारों के ऊपर एक लुहार है। उसमें बुद्धिजीवी की वैचारिक दुविधा नहीं, एक सफल कारोबारी की निर्णय क्षमता है।

कथन की दृष्टि से संग्रह की कहानियों में विषय विस्तार है। वे खुली कहानियाँ हैं, किसी विषय विशेष पर केन्द्रित विमर्श नहीं। समय की बहती नदी में अपनी-अपनी नावों में सवार आमजनों की कहानियाँ हैं। नदी में दो धाराएँ हैं- व्यक्ति की और समाज की। कुछ मोड़ ऐसे हैं जहाँ पर ये एक-दूसरे से उलझ जाती हैं। कुछ देर की कशमकश के उपरांत धाराएँ फिर प्रवाह में विलीन हो जाती हैं। कहानियों में किसी प्रकार का आरोपण नहीं है सिवाय अर्थ देने के। बात कितनी भी पेचीदी हो, उसका रुख मोड़ कर कहानी को सकारात्मक बनाने की चेष्टा कभी-कभी कहानी के साथ ज़बरदस्ती लगती है। कुछ कहानियों के शीर्षकों की लंबाई भी अखरती है।

कहन शैली सामान्यतया सीधी-सादी है। हिन्दी के तत्सम शब्दों के अगल-बगल अरबी-फारसी और अंग्रेज़ी के शब्द बेधड़क गतिमान हैं। अपने आस-पास के शब्दों में बात को पिरो देना ही आज के साहित्य का सामान्य भाषिक व्यवहार है। लेकिन इसी आम के बीच प्रसंग की उद्भावना के अनुरूप 'विनम्र दासता' और 'आँखों की चुगली' या फिर 'यादों का वफ़ादार कुत्ते की तरह वक्त-बेवक्त लपक कर आ जाना' जैसे भाव-भाषा प्रयोग लेखिका के प्रस्तुति नैपुण्य के उदाहरण कहे जा सकते हैं। कहीं-कहीं वर्णन शैली में अनावश्यक फैलाव भी देखने को मिला तो कुछेक जगह शब्दों का जमघट अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ पाया। विशेषकर इंटरनेट डेटिंग में सौम्या और नील के प्रणय प्रसंगों में शृंगार की अभिव्यक्ति अनुभूति पर हावी रही। वस्तुत: विस्तार रोचकता की क़ीमत पर नहीं होना चाहिए। अनेक बार बात संकेतों में अधिक प्रभावी होती है। इन कुछेक बातों को छोड़कर कहानियाँ अपनी विषय वस्तु और स्थापनाओं से पाठकों को स्वस्थ चिंतन के लिए प्रेरित करती हैं। रोज़मर्रा की भाषा में पिरोई कहानियों में पाठक स्वयं को ढूँढ़ लेता है और पात्रों से जुड़ जाता है।

000

केंद्र में पुस्तक

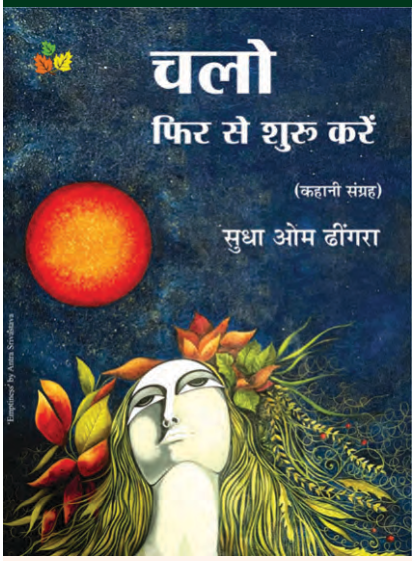

(कहानी संग्रह)

चलो फिर से शुरू करें

समीक्षक : प्रकाश कान्त, विजय कुमार तिवारी, अदिति सिंह भदौरिया

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

प्रकाश कान्त

155 एलआईजी, मुखर्जी नगर, देवास 455011, मप्र

मोबाइल 9407416269

ईमेल- prak.kant@gmail.com

विजय कुमार तिवारी

टाटा अरियाना हाउसिंग, टावर-4 फ्लैट-1002, पोस्ट-महालक्ष्मी विहार-751029, भुवनेश्वर, उड़ीसा

मोबाइल - 9102939190

ईमेल- vijsun.tiwari@gmail.com

अदिति सिंह भदौरिया

साहिल, सिद्धि विनायक टॉवर, फ़्लैट नंबर 404, ब्लाक -ए, बंगाली चौराहा, विछोली मरदाना, इंदौर, मप्र -452016,

मोबाइल- 8959361111

ईमेल- aditisingh9977@gmail.com

प्रवासी जीवन की चिंताएँ और सरोकार !

प्रकाश कान्त

प्रवासी लेखन की इधर काफ़ी चर्चा रही है। पिछली सदी के सातवें-आठवें दशक में कमलेश्वर ने प्रवासी लेखन से हिन्दी पाठकों को परिचित करवाने के लिए 'सारिका' के माध्यम से काफ़ी काम किया था। हालाँकि, प्रवासी लेखन इसके पहले से होता आया था, पिछली डेढ़-दो सदियों में जो भारतीय अंग्रेज़ शासकों द्वारा अपने विभिन्न उपनिवेशों में काम करने के लिए ले जाए गए और बाद में भी स्वेच्छा से बेहतर भविष्य की तलाश में लोग वहाँ जाते रहे और वहीं स्थाई रूप से आबाद होते गए, उन्होंने विपुल मात्रा में लिखा। अपने संघर्ष या यातनापूर्ण जीवन के अलावा हर तरह के अनुभवों को लेखन में दर्ज किया, वह आज बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। इन दिनों अनेक देशों में बड़े पैमाने पर प्रवासी लेखन हो रहा है। हालाँकि, वहाँ के रचनाकारों को उनके लेखन को सिर्फ़ 'प्रवासी लेखन' माना-कहा जाए, इस पर आपत्ति भी रही है। ख़ासकर, उसके पीछे मंशा अगर दोयम दर्जे की समझने और हाशिये में डाले रखने की हो तो! उनका आग्रह मुख्य धारा का लेखन माने जाने से ही रहा है। ख़ैर। सुधा ओम ढींगरा कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना इत्यादि कई विधाओं में सक्रिय रही हैं। उन्होंने कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया है। उनका रचना फ़लक देश से विदेश तक फैला हुआ है। आमतौर उच्च और सामान्य मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न अनुभवों को उन्होंने अपनी रचनाओं में दर्ज किया है। उनके नवीनतम कहानी संग्रह 'चलो, फ़िर से शुरू करें' की कहानियों में भी इसे देखा जा सकता है। संग्रह में दस कहानियाँ हैं। जिनमें से अधिसंख्य में विदेशी समाज के जनजीवन के विविध रंग चित्रित हुए हैं। वैसे, संचार सुविधाओं के चलते आजकल भौतिक दूरियाँ एक तरह से पहले जैसी नहीं रह गई हैं। अपरिचय भी घटा है। हालाँकि, बहुत संभव है कि विदेश की विशेष प्रकार की जीवन शैली और सामाजिक संरचना के चलते वहाँ के जीवनानुभवों को लेकर लिखी रचनाओं से एकदम कनेक्ट कर पाने में सामान्य पाठक के लिए थोड़ा कम आसान रहता हो!

यह सही हो सकता है कि इन कहानियों में वहाँ के तीसरे-चौथे दर्जे के जीवन का अंकन नहीं है। जो बाजवक़्त सामान्य हिन्दी पाठक को इधर की रचनाओं में मिलता है। इसके बावजूद ये कहानियाँ वहाँ के कामकाजी वर्ग के विभिन्न प्रश्नों, संकटों और द्वंद्व को व्यक्त करती हैं। कथा साहित्य का एक बड़ा हिस्सा इन्हीं अनुभवों से भरा हुआ है। यूँ भी भारतीय समाज बल्कि दक्षिण एशियाई समाज काफ़ी पुराना समाज है। यू.एस., कनाडा जैसे देशों के समाज अपेक्षाकृत नए हैं, दोनों जगह के समाजों में संरचनागत अंतर रहा है। सिर्फ़ भौतिक ही नहीं मानसिक, आत्मिक भी! आर्थिक संरचना की भिन्नता ने जीवन शैली को भी प्रभावित किया है। इस संग्रह की भी कुछ कहानियों में इसे देखा जा सकता है।

यह सही है कि आर्थिक बदलावों ने तेज़ी से सामाजिक-पारिवारिक संबंधों का बदलाव किया है। पुरानी पारिवारिक ऊष्मा ख़त्म या कम हुई है। हालाँकि, कहीं-कहीं उसमें सुधार की भी कोशिश हुई है। 'कभी देर नहीं होती' कहानी इसी को व्यक्त करती है। हालाँकि, उसकी कथा-भूमि भारतीय है और पृष्ठभूमि में नागर रिश्ते - ख़ासकर पति-पत्नी के रिश्ते में आनेवाली खटास है। कहानी का एक सिरा विदेश से जुड़ता है। संग्रह की शीर्षक कहानी 'चलो, फिर से शुरू करें'

के केंद्र में भी भिन्न पृष्ठभूमियों से आए स्त्री-पुरुष के वैवाहिक संबंध में आनेवाली दरार है जिसमें पत्नी सब कुछ समेट बच्चों को पति के ज़िम्मे कर अपनी माँ के पास लौट जाती है। आहत पति फिर से सब शुरू करने के लिए बच्चों के साथ विदेश में ही रह रहे अपने माँ-पिता के पास आ जाता है। कहानी उस समायोजन की भी बात करती है जो भिन्न पृष्ठभूमि के लोग आम तौर पर आपस में स्थापित नहीं कर पाते, विशेषकर बहुत भिन्न पृष्ठभूमियों से आए पति-पत्नी!

प्रवासी भारतीयों की मानसिक गुत्थियाँ, काल्पनिक भय, अंदेशे भी संग्रह की कहानियों में है। ख़ासकर, 'भूल भुलैया' जैसी कहानियों में जिसमें सारी प्रशासनिक चौकसी, प्रबंधन वग़ैरह के भी विदेशियों पर हमले, अपहरण, मानव अंगों की तस्करी इत्यादि की खबरों को सुनते-पढ़ते रहने से सामान्य भारतीय आशंकित बना रहता है। वैसे, आशंका-कुंशका को लेकर संग्रह में दो अलग-अलग कहानियाँ हैं जो मानव मन के गहरे अँधेरे को देखने-समझने के साथ-साथ अदृश्य, अघटित और आगत को देख पाने या उसकी पूर्व प्रतीति होने की बात करती हैं। ख़ासकर, 'इस पार से, उस पार' और 'अबूझ पहेली' जो परिवार के सदस्यों को संभावित दुर्घटनाओं से बचाती है और किसी अच्छे होने की भी सूचना देती हैं ! ऐसी शक्तियों को लेकर काफ़ी बहस रही है। मनोविज्ञान उन्हें अलग ढंग से देखने की कोशिश करता है।

स्त्री मन, उसकी पीड़ा को लेकर 'उदास बेनूर आँखें", 'वह ज़िन्दा है', 'कँटीली झाड़ी' जैसी कुछ विशेष प्रकार की कहानियाँ हैं। 'वह ज़िन्दा है' की स्त्री तीसरे मरे हुए बच्चे के जन्म के बाद से गहरी तन्द्रा में है और जीवन-मृत्यु का संघर्ष कर रही है। डॉक्टर उसके अगली बार माँ बन पाने की संभावना से इंकार कर चुके हैं। 'कँटीली झाड़ी' की अनुभा अपने पारिवारिक श्रेष्ठता, अतीत की स्याही और ईर्ष्या का शिकार है। लेकिन, 'उदास बेनूर आँखें' की युवती यौवन की शुरूआत में ही दैहिक दुराचार और नतीजे में मिले एच.आई.वी. पॉज़िटिव का शिकार हो चुकी है। कहानी का एक आश्वस्तिदायक कोमल पक्ष भी है जो उसे उम्मीद बँधाता और जीवन में विश्वास पैदा करता है।

'वे अजनबी और गाड़ी का सफ़र' इस कारण विशिष्ट कहानी है कि उसमें 'ह्यूमन ड्रग बॉम्ब' के रूप में स्त्री के निकृष्टतम दुरुपयोग का चित्रण है। एक युवती के पूरे शरीर की चीर-फाड़ कर ड्रग छुपाये गए हैं। कहानी में इस घृणित व्यवसाय में शामिल एक पूरा रैकेट सामने आता है। यह एक असामान्य कहानी है। 'कल हम कहाँ, तुम कहाँ' की युवती इन सबसे बिल्कुल अलग और उलट है। वह बौद्धिक और अकादमिक क्षेत्र में सक्रिय है और उसका अपना एक सुनहरा भविष्य है। कहानी में अव्यक्त और असफल प्रेम की हल्की-सी परछाईं भी है!

संग्रह की कहानियाँ एक साथ व्यक्ति मन और सामाजिक जीवन इन दोनों की बात करती हैं। उनमें स्त्री लगभग हर कहानी में है और हर जगह उसका रंग है! निश्चय ही वह पुरानी स्त्री नहीं है। वह अपने नएपन को लेकर सजग भी है। हर कहानी का अपना एक सामान्य ढाँचा है और कथानुकूल सहज भाषा, बिना किसी तरह की अतिरिक्त कलाबाज़ीवाली!

000

भावुक करने वाली कहानियाँ
विजय कुमार तिवारी

'चलो फिर से शुरू करें' कहानी संग्रह में सुधा ओम ढींगरा की हर कहानी भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि, भिन्न-भिन्न भाव-चिन्तन लिए पाठकों के भीतर संवेदना जगाने वाली है। वह प्रवासी भारतीय हैं और उनकी रचनाओं में देश-विदेश दोनों की संगतियाँ-विसंगतियाँ देखी-परखी जा सकती हैं। इसका मूल सन्दर्भ यही हो सकता है, उन्होंने अपनी चेतना में दोनों को आत्मसात् किया है। यह स्वाभाविक भी है और ज़रूरी भी। उनके लेखन में पारिवारिक टूटन-विघटन के मार्मिक दृश्य उभरते हैं और तब ऐसी स्थितियाँ विशेष तौर से मुखरित होती हैं जब कोई पात्र कहीं विदेश की धरती से अपनी स्मृतियों के झरोखों में अपना गाँव, अपना देश देखता-झाँकता है। सुधा जी को पारिवारिक अन्तर्विरोध की पीड़ा की अनुभूति कहीं अधिक है और वह पूरी ईमानदारी से उसका चित्रण करती हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'कभी देर नहीं होती' की शैली तनिक भिन्न लगती है, शायद कोई बाहरी प्रभाव है क्योंकि पाठक बहुत देर से दृश्यों से जुड़ता दिखाई देता है और कहानी की मूल भावना को समझ पाता है। इसे कथाकार के लेखन में भाषा-शैली की कोई नवीनता मानना चाहिए। अंग्रेज़ी भाषा में बोल-चाल आज का फ़ैशन है और आज का पाठक भी हिन्दी कहानियों में इस बदलाव को स्वीकार कर चुका है। सुधा जी भावनाओं की अभिव्यक्ति सधे अंदाज़ में करती हैं, मार्मिकता से जोड़ती हैं और पात्रों के मनोविज्ञान को चित्रित करती हैं। यह पारिवारिक अन्तर्कलह, ससुराल और मायके के बीच के वर्चस्व, स्त्री के बदलते स्वभाव और घर व बच्चों को बचाए रखने के लिए पिता के मौन होते जाने की कहानी है। बच्चों के मन में शुरू से ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर पिता के साथ वार्तालाप में मिलता है और सबके एकजुट होने की संभावना के साथ कहानी का सुखद अंत होता है।

'वे अजनबी और गाड़ी का सफ़र' स्वदेश और विदेश का अंतर बताती कहानी है जिसमें तकनीकी विकास, प्रशासन तंत्र की सक्रियता, अपराध और उसको पकड़ पाने की मुस्तैदी के साथ-साथ अमानवीय क्रूरता रची-बसी है। इसमें रहस्य-रोमांच है, मानवीय संवेदना और दुनिया में हो रहे तरह-तरह के आपराधिक हथकंडों की कहानी है। 'ह्यूमन ड्रग बॉम्ब' बनी लड़की के नस-नस में नशीली दवाएँ भरी हुई हैं, जो कई मिलियन डालरों में बेची जाती और कितने युवाओं के जीवन तबाह हो जाते। सुधा जी मार्मिक व कटु सच्चाई बताते हुए विह्वल हैं- "मानव कौम जानवरों से भी बदतर है। इतनी क्रूरता इनमें कहाँ से आती है, सोच कर ही रोंगटे खड़े हो रहे हैं।" वह विघटन की पूरी प्रक्रिया समझाती हैं-"यह संक्रमण का समय है, इसमें सबसे पहले जीवन मूल्य टूटते हैं और इंसानियत का हनन होता है।" अच्छे संदेश के साथ उन्होंने अच्छी

कहानी बुनी है जिसके सारे पात्र जीवन्त हैं और कहानी प्रभावशाली बन पड़ी है।

'उदास बेनूर आँखें' कहानी में पात्रों का चरित्र भावुक करता है। ड्यू स्मिथ का सौन्दर्य, उसका संघर्ष, बलात्कार जैसी सच्ची घटना, फिर असाध्य बीमारी, घर-समाज का व्यवहार सब कुछ विचलित करने वाला है। सुधा जी अपनी कहानियों में रोमांचक मोड़ देने और भाव-संवेदनाओं की सामयिक अभिव्यक्ति में माहिर हैं। उनके मन की अपनी उड़ान भी कम नहीं है। हर रचनाकार अपने पात्रों में होता ही है और अपनी भावनाओं को उजागर करता है। गौरव और ड्यू स्मिथ यानी शबनम के बीच के व्यावहारिक व समर्पित मन के प्रेम का सुखद अंत पाठकों को सुखद आश्वस्ति देने वाला है। गौरव का कहना आनंद से भर देता है-''तुम्हारी उदास बेनूर आँखों में सपने सजाना चाहता हूँ, जब तुम्हारा मन और जिस्म तैयार हो जाए, ड्रेस और अँगूठी पहन लेना।''

'इस पार से उस पार' साँची के भीतर स्थित अतीन्द्रिय शक्ति की कहानी है, उसे अपनी खुली आँखों व्यक्ति विशेष के जीवन में घटने वाली घटना का दृश्य दिखाई दे देता है और वह सावधान करती है। लोग सहसा स्वीकार नहीं करते और हवा में उड़ा देते हैं। सुधा ओम ढींगरा इस कहानी में उसके ऐसे अनेक प्रसंगों की चर्चा करती हैं और दुनिया को ऐसी संभावनाओं की जानकारी देती हैं। साँची समझ नहीं पाती, अगर वह कुछ बताती है, जो दृश्य उसे नज़र आते हैं, उसके बारे में जानने, सुनने और समझने की बजाय नज़रअंदाज़ क्यों किया जाता है? सुधा जी इसको लेकर पारिवारिक, सामाजिक कारणों का हवाला देती हैं, सशक्त कहानी बुनती हैं और मज़बूती से जीवन के इस पक्ष को सामने रखती हैं। सहमत होते हुए मैं भी कहना चाहता हूँ, ऐसी किसी स्थिति में यथार्थ को समझना चाहिए। प्रकृति और मनुष्य के भीतर बहुत कुछ है जिसे खोजना और समझना है। सुधा ओम ढींगरा अंत में लिखती हैं-''साँची के जन्म से ही उसकी अन्तर्दृष्टि, जिसे इनर आई कहते हैं, और लोगों से ज़्यादा डेवेलप हो चुकी थी, साँची को इंट्यूशन्स होती हैं।''

''चलो फिर से शुरू करें-'' कहानी के नाम पर ही सुधा ओम ढींगरा ने अपने इस संग्रह का नामकरण किया है। निश्चित ही यह कोई उनका अनुभूत या देखा-सुना कथानक है। यह कहानी विस्तार से उन सारी परिस्थितियों, कारणों की पड़ताल करती है जो ऐसे हालात में उभरते और दिखाई देते हैं। हमारे देश में विवाह संस्था मज़बूत होती है, परिवार और पूरा समाज सहभागी होता है और वैवाहिक संबंध को पवित्र माना जाता है। विदेशों की स्थिति भिन्न है। सुधा जी ने मार्था और उसकी माँ के चरित्र की व्यापक सच्चाई लिखी है। मार्था को अपने बच्चों से भी लगाव नहीं है। यहाँ कुशल की दुर्दशा समाज के लिए चेतावनी की तरह है। हमारी परिवार व्यवस्था की ख़ूबसूरती ही है, ललित-अंजना, अपने पुत्र कुशल और उसके बच्चों के साथ सहर्ष खड़े होते हैं और कहते हैं-''चलो फिर से शुरू करें।'' कुशल अपने पिता की बातों को याद करता है और संकल्प लेता है-''ज़िंदगी विकल्प नहीं देती। सामने जो पल आते हैं और जो अवसर मिलते हैं, उन्हें भरपूर जीना सीखो। बीता पल कभी भी पलटता नहीं, बस पछतावा रह जाता है। डैड, मैं पछतावे में समय नहीं गँवाऊँगा।''

अगली कहानी 'वह ज़िंदा है' पाठकों का ध्यान तनिक दूसरे तरीक़े से खींचती है। पहली ही पंक्ति का संदेश डराने वाला है-''सच बोलने और सच सुनने की कभी-कभी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। इंसान का जीवन बदल जाता है।'' यहाँ व्यक्ति का मनोविज्ञान चित्रित हुआ है और कहानीकार ने जीवन की कोई गुत्थी सुलझाने की कोशिश की है। संयोग जीवन में बहुत कुछ उलझाते-सुलझाते रहते हैं। कविता सिंह प्रसव पीड़ा की स्थिति से गुज़र रही हैं, उन्हें अपनी रुनझुन को जन्म देना है। नर्स बिना किसी लाग-लपेट के बोल पड़ती है-'मिसेज सिंह युअर बेबी इज डेड।' सुधा ओम जी ने कविता सिंह की मन:स्थितियों का, पूरे घटनाक्रम का मार्मिक, जीवन्त चित्रण किया है और उनके विमर्श ''रोगियों के प्रति हो रही असंवेदनशीलता, अनैतिकता और अचार-विचार'' को लेकर क़ानूनी लड़ाई शुरू हो गई है। रहस्य, रोमांच, मार्मिक पीड़ा और दुखद अंत लिए संवेदनाओं से भरी उनकी कहानी अनेक प्रश्न खड़ी करती है जिसका उत्तर खोजा जाना चाहिए और व्यवस्था में बदलाव करना चाहिए।

'भूल-भुलैया' विकसित समाज में भी अफवाहों के शिकार होते लोगों की कहानी है। हालाँकि ऐसी मानसिकता 'साउथ एशियन' से जोड़कर देखना कहानी के फ़लक को कम कर देता है या कहानीकार का कोई पूर्वाग्रह दिखाई देता है। ग़लत-सही लोग हर जगह हैं और उनका खेल चलता रहता है। सुरभि पाण्डेय के शक़ कि उनका पीछा किया जा रहा है, से शुरू हुई कहानी शंका निवारण तक पहुँचती है। सुधा जी तकनीकी विकास, चुस्त-दुरुस्त व्यवस्था और वैज्ञानिकता से प्रभावित हैं और संवेदना के साथ यथार्थ दृश्य बुनती हैं और सच्चाइयों से सामना करवाती हैं। अफ़वाह को लेकर उनका वक्तव्य समझने लायक है।

'कँटीली झाड़ी' सशक्त बिंबों के साथ लड़कियों, स्त्रियों के भीतर के अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष और उसके दुष्परिणामों की कहानी है। ऐसा होता ही है हमारे समाज में और उसका प्रभाव सब पर पड़ता है। ऐसे हालात में पात्रों के स्वभाव का सही व यथार्थ चित्रण हुआ है मानों कहानीकार ने आँखों देखा दृश्य लिख डाला है। हम दुनिया में कहीं भी चले जाएँ, अपना स्वभाव, विचार, ईर्ष्या की भावना, एक-दूसरे को नीचा दिखाना जैसे दुर्गुण साथ लिए रहते हैं। अनुभा का नकारात्मक और नेहा का सकारात्मक चरित्र ख़ूब सशक्त तरीक़े से उभरा है और शेष सारे पात्र अपनी सार्थक भूमिका में दिखाई देते हैं। ऐसे हालात के दृश्य बुनने के अपने ख़तरे भी होते हैं, सुधा जी भी कहीं-कहीं प्रभावित होती दिखाई देती हैं और निर्लिप्त नहीं रह पातीं। पात्रों का मनोविज्ञान खुलकर उभरा है और कहानी कोई सार्थक संदेश देने में सफल दिखाई देती है। कहानी के भीतर अनेक कहानियाँ बुनते हुए सुधा जी ने इसे औपन्यासिक स्वरूप दे डाला है और नाना

रोमांचक दृश्य पाठकों को बाँधे रहते हैं। यहाँ भी अफ़वाह और दुष्प्रचार का सहारा लिया गया है और कहानी उसके प्रभाव को समझाने में सफल है। सुधा जी सौन्दर्य चित्रण में पारंगत हैं और स्त्री के भीतर की उड़ान को शब्द देती हैं। उनके संवाद परिस्थिति के अनुसार चुटीले और सुखद भाव-भूमि बनाते हैं। अंत में उन्होंने सुखद वाक्य लिखा है जिसमें कहानी के शीर्षक का बिंब समझ में आता है-''अनजाने में नेहा कँटीली झाड़ी के पास से निकल गई थी, जिसने नेहा की चुनरी तार-तार कर दी और पाँव ज़ख्मी।''

'अबूझ पहेली' संग्रह की दूसरी कहानी है जिसमें आगामी घटना का पूर्व दृश्य नायिका देखती है। उसकी मन:स्थिति सहित सम्पूर्ण हालात का चित्रण और कहानी के शुरू में भूमिका का संकेत उनके लेखन की अपनी शैली है। उनका यह विवरण समझने लायक है, लिखती हैं-''इतना कुछ पढ़ने के बाद, सहज भावों, इंट्यूशंज़, दृश्य भ्रम, छठी इन्द्री की जागृति, अवचेतन की सचेतता, तीसरी आँख का विकास, अन्तर्दृष्टि, सुषुप्त सचेतता की चेतना इत्यादि नामों से परिचित हुई और तरह-तरह की जानकारी लेकर भी कुछ नहीं समझ पाई। जिज्ञासा की तृप्ति नहीं हुई।'' किसी-किसी की ऐसी चेतना जागृत हो उठती है और उसे निकट भविष्य में होने वाली घटना का आभास मिलता है। यह कहानी सुखद व आत्मीय पारिवारिक वातावरण का दृश्य दिखाती है जहाँ आदर, सम्मान, प्यार है और घर का हर सदस्य एक-दूसरे की चिन्ता करता है। सबकी भावनाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हैं। पुत्र पिता को यूके जाने से रोकना चाहता है परन्तु पिता रुकने वाले नहीं है। माँ को लगता है- 'बच्चे कितनी जल्दी बड़े हो जाते हैं,' जब आर्यन को अपनी चिन्ता करते पाती है। कोई ईश्वरीय लीला होती है, पिता एयरपोर्ट जाते हैं, फ्लाइट में बैठते हैं परन्तु वह फ्लाइट रद्द हो जाती है और वे घर लौट आते हैं। ठीक उसी समय वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर आक्रमण होता है, जिसके दृश्य उन्हें पिछले दो दिनों से दिखाई दे रहे हैं।

''कल हम कहाँ तुम कहाँ'' भावना, प्रेम, सहानुभूति, सीखने-सिखाने, एक-दूसरे को समझने-समझाने, विरोध के बाद सहमत होने परन्तु पूरी ज़िंदगी के लिए अलग हो जाने की कहानी है। सुधा जी ही नहीं, अनेक प्रवासी भारतीय महिलाओं ने अपने लेखन में इस बिखराव को पूरी गहराई से उकेरा है। देश से, अपने लोगों से दूर होने की पीड़ा के साथ-साथ उन पलों में प्रेम की फूटती कोपलें, शीतल-सी बहती कोई मलय बयार और न मिल पाने का दंश पूजा और दीपक के माध्यम से उन्होंने पूरी शिद्दत से चित्रण किया है। इस कहानी में भी विस्तार है, जबरदस्त भाव-संवेदनाएँ हैं, कोई गहरी कसक है और प्रेम की डगर की अतृप्त यात्रा है। सुधा जी बिल्कुल सही लिखती हैं- ''उम्र के इस पड़ाव में आकर व्यक्ति का मन अतीत की गलियों में बार-बार घूमने जाना चाहता है।'' उनके पास स्मृतियों का ख़ज़ाना है और उन्होंने इस पृष्ठभूमि पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं। यह भी सही है, जीवन के मोड़ों पर लोग मिलते ही हैं, जुड़ते भी हैं, अच्छे भी लगने लगते हैं परन्तु मुकाम तक पहुँच पाना सबके हिस्से में नहीं आता। पूजा मानती है, दीपक विद्वान है, बुद्धिमता और प्रतिभा से भरपूर है परन्तु उसे पुरुष होने का दंभ है। वह सोचती हैं-''क्या लाभ इतने ज्ञान का अगर उससे मस्तिष्क की खिड़कियाँ नहीं खुलतीं, दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं आता।'' उनकी यह पंक्ति भी प्रभावशाली और सही है- ''उम्र का एक दौर ऐसा भी होता है जब आदर्शवाद पूरे जीवन पर हावी होता है और व्यावहारिकता का कोई ज्ञान नहीं होता।'' कहानी मोड़, चौराहों से गुज़रते हुए जीवन के नाना दृश्य दिखाती है, सहयोगी सभी पात्र अपनी-अपनी सशक्त भूमिकाएँ निभाते हैं, अंत में दीपक अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है-''जिस लड़की ने मुझे जीवन जीने का नया दृष्टिकोण और सोच दी। जिसके परिवार से मैंने रिश्तों को दोस्ती की तरह निभाना सीखा। महिलाओं को इंसान समझना सीखा और जिसके घर से आज़ाद, उदार और खुली हवा ली, उस लड़की को भूलना बेहद मुश्किल है।'' कहानी के माध्यम से सुधा जी कोई सच्चाई बताती हैं, दीपक कहता है-''ईश्वर जो करता है, ठीक करता है। जिस रोशनी में उसने आँखें खोली हैं, वह मेरे घर तक अभी नहीं पहुँची। मना भी लेता तो उसे जीते जी मार देता।'' पूजा की यह स्वीकारोक्ति लिखकर सुधा जी ने कहानी का सुखद अंत किया है- ''अपने दोस्त के लिए आँखें उसकी भी नम हुई थीं। दिल को फिर से टटोला। पापा के पूछने पर कुछ महसूस नहीं किया था और सुमन के बताने पर भी वहाँ शांति थी, पर, दोस्त के दर्द का एहसास हो गया था उसे।''

प्रवासी भारतीय लेखक, लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में विदेश प्रवास की नाना पीड़ाओं को पूरी सच्चाई के साथ लिखा है। रंग-भेद, नस्ल-भेद, आर्थिक विषमता और स्वयं को श्रेष्ठ समझने की भावना ने सम्बन्धों को ख़ूब प्रभावित किया है। सुधा ओम ढींगरा ने अमेरिका में रहते हुए बहुत कुछ स्वयं देखा, अनुभव किया है और उनकी कहानियों में सारा दृश्य उभरता ही है। उनकी कहानियों में विरोध-अन्तर्विरोध और विसंगतियाँ स्पष्टत: दिखाई देती हैं। उनके स्वभाव में गंभीरता है, रोमांचकता है और वह परिस्थितियों की घुटन को खुलकर व्यक्त करती हैं। यह भी उनका कोई अभिनव प्रयोग ही है कि वह कभी भिन्न शैली अपनाती हैं, कभी कहानी सुनाती हुई लगती हैं और कभी अपने पात्रों के साथ सहयात्रा करती हैं। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर लेखन करके हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है और वे आज भी सतत् सक्रिय हैं।

000

आँखों में बीते कल की रोशनी

अदिति सिंह भदौरिया

'चलो फिर से शुरू करें' पुस्तक की कहानियाँ बहुत कुछ कहती हैं और बहुत कुछ हमारे भीतर जोड़ती हैं। कहानी यदि महिला कथाकार की हो तो भावनाओं का समावेश देखते ही बनता है। कब आपकी उँगलियाँ आँखों के कोरों तक पहुँच जाएँ, आपको आभास भी नहीं होता और खारा पानी आपको भावनाओं में भिगो देता है।

भारत में पत्रकारिता के क्षेत्र में स्वयं का मज़बूत स्थान बनाकर गत कई वर्षों से

अमेरिका में हिन्दी भाषा का परचम लहरा कर अपनी कहानियों के माध्यम से प्रवासी और अप्रवासी दोनों के ताने-बानों को सहजता से समेट कर रखना भी डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कला है। अपनी इसी कला को उन्होंने 'चलो फिर से शुरू करें में' प्रस्तुत किया है।

संग्रह में कुल दस कहानियाँ है। हर कहानी का अपना सफ़र है। जिसे पाठक भी लेखिका के साथ तय करता है। पर हर कहानी एक प्रश्न को हमारे भीतर अलख की तरह जगाती है, जिसका समाधान हमें स्वयं ही ढूँढ़ना है। संग्रह की पहली कहानी 'कभी देर नहीं होती' आज एक ज्वलंत समस्या को दिखाती है। जहाँ एक परिवार की खुशियाँ मात्र उस बात पर ख़त्म हो जाती है कि परिवार की बहू अपने ससुराल वालों से रिश्ता ख़त्म कर देती है। और अपने बच्चों के भविष्य के लिए उसका पिता अपने परिवार से विमुख हो जाता है। सुधा जी ने बड़ी सरलता से एक कठिन प्रश्न को पाठकों के समक्ष रखा है कि क्या परिवार से अलग होने से ख़ुशियाँ मिल जाती है? क्या बच्चे जिस परवरिश और प्यार के अधिकारी है उनको वह प्यार मिल पाता है? अंत क्या होता है हम बस अपने अहंकार में अपने ही परिवार के दोषी बनकर रह जाते है। परिवार के बड़ों ने जो परिपक्वता नहीं दिखाई वह घर के बेटे ने दिखाई।

'घर की तरफ कदम बढ़ाता हुआ आनन्द धीरे -धीरे नन्दी में परिवर्तित होता जा रहा है' (पृष्ठ 11) गहरी सीख देती इस कहानी ने सच में साबित किया है कि यदि रिश्तों में प्रेम के धागे टूट जाए तो समय की तुरपाई उनको सिल भी सकती है, बस नीयत साफ़ होनी चाहिए। यह आज के समय में एकल परिवार पर चोट करती कहानी है। इस कहानी में आनन्द मुख्य किरदार के पिता के द्वारा लिए गए निर्णय ने उनको कभी ख़ुशी नहीं दी और न ही बच्चों को ख़ुशी दे पाए, इसमें पाठक यह भी जान पाते हैं कि हर बार भावुकता से लिए गए निर्णय सही ही हो यह संभव नहीं होता। हमें परिवार को बचाने के लिए उसका तोड़ना ही सही कदम लगे तो इसे एक चेतावनी समझें आने वाले कठिन समय की, जिससे हम न तो फिर कभी पलट सकते है और न ही कभी मुँह मोड़ सकते है। इसलिए हर फ़ैसला लेते समय भविष्य के हर पहलू पर ध्यान ज़रूर दें।

'वे अजनबी और गाड़ी का सफ़र' आज के समाज का बेहद वीभत्स चेहरा दिखाती है। जहाँ मानवीय मूल्यों का तो दूर मानव का ही कोई मोल नहीं रह गया है। इस कहानी में स्पष्ट तौर पर यह दिखाया गया है कि ईश्वर के अपने तरीक़े होते हैं आपकी सहायता करने के लिए, वह यदि आपको कोई संकेत दे रहा है तो ज़रूर इसका कोई अर्थ अवश्य है। यह कहानी दो महिला सहकर्मियों की सजगता की कहानी है। कैसे उन दोनों ने अचानक ही ट्रेन को अपने सफ़र के लिए चुना? कैसे एक लड़की के बैठने से लेकर उसके चलने और उसके हाव-भाव को बस वह ही परख पाईं। आज जब अपने से मतलब रखना एक फ़ैशन बन गया है। तब इन दोनों के द्वारा की गई सहायता से न केवल एक लड़की की जान बची बल्कि न जाने और कितने लोगों की जान बचाने में वह सफल हो पाई। लेकिन लड़की किस हद तक पीड़ित थी इस बात को जिन शब्दों में व्यक्त किया गया है, उसे पढ़ते-पढ़ते पाठकों के रोंगटे खड़े हो जाएँगे। 'मानव कौम जानवरों से भी बद्तर है'(पृष्ठ 34) मानव तस्करी का एक ऐसा सच हमारे सामने आया, जिनसे हम सब आज तक अनजान थे। अपने आस-पास होने वाली छोटी-छोटी बातों का बेहद बड़े अर्थ हो सकते है। हमें हमेशा सतर्क रहना चाहिए। सुधा जी ने इस गम्भीर बात को बड़े सधे शब्दों में पाठकों तक सफलता से पहुँचाया है।

संग्रह की अगली कहानी 'उदास बेनूर आँखें' है। सुन्दरता सबको आकर्षित करती है। लेकिन हर सुन्दरता के पीछे एक कहानी छिपी होती है। ऐसी ही एक कहानी हमें 'उदास बेनूर आँखें' में महसूस होती है। मैं यहाँ महसूस इसलिए लिख रही हूँ क्योंकि जब एक पाठक की तरह हम इस कहानी को पढ़ते हैं तब इसकी गहराई समझ में आती है। कहानी के मुख्य पात्र गौरव का प्यार दिखाने का तरीका आम-सा लगता है, पर प्यार निभाने का तरीका उसे ख़ास बना देता है। कोई फ़िल्मी स्टाइल नहीं बल्कि एक आम लड़का किसी लड़की के जीवन को ख़ुशियों से भर कर उसका सुपर हीरो बना सकता है। यही इस कहानी की खासियत है। इसमें लड़की के पात्र को बेचारी नहीं दिखाया गया। विपरीत परिस्थितियों में भी जिस ख़ूबी से वह हमारे सामने अपनी कहानी रखती है वह भाव आपको लेखक के प्रति निशब्द कर देते हैं। अपनों के चले जाने के दर्द को लड़की किसी और से सहानुभूति लेने का ज़रिया नहीं बनाती बल्कि अपने रास्ता स्वयं मज़बूती से तय करते हुए अपने लिए एक नया जीवन बनाती है। इसके साथ ही अपने परिवार को माफ़ किए बिना उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाती है।

इस कहानी के माध्यम से किसी धर्म गुरु के प्रति अंधश्रद्धा पर गहरा आधात किया है। जब हम अपनों पर नहीं परायों पर विश्वास करने लगे, तभी समझ जाएँ कि हम अपने साथ-साथ अपनों के साथ भी अन्याय कर रहे है। कहानी के अंत में यह एक श्रेष्ठ प्रेमकहानी बनाकर उभरती है जब नायक कहता है -'मैंने निश्चय कर लिया है, तुम्हारी उदास बेनूर आँखों में सपने सजाना चाहता हूँ।' (पृष्ठ 52)

कहानी 'इस पार से उस पार' उस बात की ओर दस्तक देती है। जिन पर शायद हम विश्वास न करें पर उन्हें नकार नहीं सकते। छठी इन्द्री आम तौर पर देखी नहीं जाती। हमारे भीतर होकर भी हम उसे अनुभव नहीं कर पाते। लेकिन यह पूर्वाभास के अनुमानों को हमारे भीतर समेटे रखने में सक्षम होती है। माना जाता है कि स्त्रियों के पास छठी इन्द्री का ज्ञान अधिक होता है, क्योंकि स्त्रियाँ अधिक संवेदनशील होती हैं। संवेदनाएँ हमें भावुक भी बनाती हैं और मज़बूत भी बनाती हैं। इस कहानी की नायिका साँची अपने भीतर कुछ ख़ास अनुभव करती है। पर उसका परिवार उसकी इस स्थिति में उसे सँभालने की अपेक्षा उसके लिए डर जाता है। हमारे समाज में सबसे बड़ी यही एक बात है कि हम लड़की के जीवन से ही उसकी शादी की चिंता करने लगते है। हम लड़की के भीतर की ऊर्जा को न तो स्वयं महसूस करते है न ही उसे इस विशेष

ऊर्जा के साथ जीने देते है। साँची को पूर्वाभास् होता है। यह ईश्वर का तोहफ़ा हो सकता है पर जब हम स्वीकर करें तभी यह हमारे लिए वरदान साबित हो सकता है। अपनी इस सुखद अनुभव को समाज और अपने परिवार के डर के कारण साँची भी भूल सी जाती है। पर फिर आज भी कुछ है जो उसके भीतर दस्तक देता रहता है। यही कुछ इस कहानी को बाकी कहानियों से अलग करती है और पाठकों के सामने एक प्रश्न रखती है की यदि एक गुण हमारे भीतर जन्म से ही है तो क्या उसका त्याग कर देना सिर्फ इसलिए सही है क्योंकि समाज क्या कहेगा?

'काश, उसका परिवार उसकी इस प्रतिभा से परिचित हो पाता।' (पृष्ठ 64) यह प्रश्न भीतर तक झकझोर देता है ऐसी कितनी ही साँची होंगी जो अपने भीतर बहुत कुछ समेट कर ख़त्म करने का नाटक करके जी रही है।

'चलो फिर से शुरू करें' कहानी के माध्यम से यह समझाने की कोशिश की गई है कि जीवन में किसी एक को खुश रखने के लिए उसकी ग़लत बात को बर्दाश्त करना आने वाले जीवन में उथल-पुथल ला सकता है। कहानी के प्रमुख किरदार ललित जी एवमं अंजना जी ऐसे दंपति हैं जो अपने बेटे की खुशी में ही अपनी ख़ुशी मानते हैं, पर उनका बेटा अपनी विदेशी पत्नी को ख़ुश करते-करते अपने माता-पिता की अवहेलना शुरू कर देता है। जिससे वह अपने बेटे से दूर हो जाते हैं। ललित जी अपने बेटे को समझाने का प्रयत्न भी करते हैं पर जब हम स्वयं को ग़लत माने ही न तो सुधारने की भी गुंजाइश नहीं रहती। बीते समय के साथ यह दंपति अपने जीवन को ख़ुशी से जी रहे होते हैं, तभी उनके बेटे की बिखरी गृहस्थी की ख़बर उन्हें मिलती है। अब उनके बेटे के साथ उनके दो पोते-पोती भी उनकी ज़िम्मेदारी बन जाते है। अपने बेटे का उसकी पत्नी के साथ अलगाव और बच्चे, यह सब उनको भीतर से तोड़ देता लेकिन कलम को नमन वह पात्र को बेहद संवेदनशील होने के साथ प्रैक्टिकल भी बनाकर हमारे सामने उदाहरण रखती है जब यह युगल अपने बेटे के बच्चों की परवरिश निभाने को तैयार हो जाता है। 'एक और पारी खेलनी है हमें' (पृष्ठ 75) यह कहानी अन्य कहानियों से थोड़ा अलग और मज़बूत है। जिसमें माता-पिता को सहारे की ज़रूरत नहीं बल्कि माता-पिता के सहारे को बखूबी दर्शाया गया है।

इस संग्रह की सबसे कठिन कहानी 'वह ज़िंदा है' है। कठिन इसलिए कह रही हूँ क्योंकि किसी भी पात्र पर लिखना आसान होता है पर उस माँ की भावनाओं को शब्दों में व्यक्त करना सबसे कठिन है जिसने अपना बच्चा खो दिया हो। इस कहानी के मुख्य पात्र कविता अपने भीतर के बच्चे को ख़ुद से अलग ही नहीं कर पाती। यह जानकर भी वह बच्चा अब साँसें नहीं ले सकता पर एक माँ यह कैसे मान ले कि जिसके साथ नौ महीने हर पल ख़ुद को बढ़ते हुए देखा है, उसे आप मरा हुआ मान ही नहीं सकते। जब एक स्त्री माँ बनती है तब वह दोबारा जीने लगती है। वह स्वीकार ही नहीं कर पाती कि जिसे उसने सींचा वह उसमें साँसे नहीं डाल पा रही। ' पाँव से मुझे किक कर रही है' (पृष्ठ 78) उस समय वह बच्चा ही नहीं बल्कि स्त्री भी भीतर से अपनी साँसों को ख़त्म होते पाती है। अपने अंश को खोने से बड़ा दु:ख और दूसरा नहीं है। इस दु:ख को कलम के माध्यम से लिखने में लेखिका को कितना भीतर से संघर्ष करना पड़ा होगा, इस बात को पाठक अपनी नम आँखों में महसूस कर सकते है। भावनाओं में बहते हुए जब हम खोने लगते है तो आज के समय को दस्तक देती एक और कहानी 'भूल-भूलैया' हमारे सामने आज के बनावटी समाज का ही रूप उजागर करती है। आज जब हम बिना सोचे-समझे ऑनलाइन की दुनिया में रची हर बात पर विश्वास कर लेते है। बिना उस बात की सच्चाई जाने हम उस बात को ही अपने जीवन की हक़ीक़त के साथ जोड़ने लग जाते है। 'अफ़वाहें तो जंगली घास की तरह होती हैं ' (पृष्ठ 92) यही से लेखिका ने पाठकों के सामने एक प्रश्न छोड़ा है कि क्या हमारी सोच आज की तकनीक की ग़ुलाम हो गई है? और इसका जवाब भी हमारे भीतर ही है, बस उसे समझने की ज़रूरत है।

संग्रह अपनी अगली कहानी 'अबूझ पहेली' के साथ हमारे भीतर दस्तक देती है। जिसमें एक स्त्री अपने भीतर की भावनाओं को समझ नहीं पाती। वह अपने पति को शहर से बाहर नहीं जाने देना चाहती, पर इसका कारण वह समझ नहीं पा रही। उसकी यही उथल-पुथल उसके जीवन में कठिनाई लाती है। पर लेखिका ने बहुत ही सुन्दरता से एक पत्नी के भावुकता भरे क्षणों को दर्शाया है। आपका प्रेम एक कवच का भी काम करता है, यही इस कहानी का अर्थ है।

जब हमारे अतीत में हमने कुछ ऐसा किया हो जिसके कारण हमें सारी उम्र पश्चाताप करना पड़ सकता है, लेकिन कुछ लोग अपनी ग़लतियों से सीखते नहीं है बल्कि और बढ़कर ग़लतियाँ करने की उन्हें आदत हो जाती है। जब हम अपने जीवन में तो कुछ ख़ास कर नहीं पाते, लेकिन अपने पिता या परिवार के किसी अन्य सदस्यों के रुतबे का रौब दूसरों को दिखाते है। तब हम अपनी कुंठाओं में ग्रसित होकर अपने ही मायाजाल में फँस जाते है। जिससे निकलना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन हो जाता है। अपनी कुंठाओं के चक्रव्यूह में फँसकर अपनी उलझनों को बढ़ाने की बेहद सुंदर कहानी है 'कंटीली झाड़ी'।

संग्रह की अंतिम कहानी 'कल हम कहाँ तुम कहाँ' कुछ अनकहे क्षणों की ख़ूबसूरती को दर्शाती कहानी पाठकों को उनके कल का सफ़र कराती है। यह वह सफ़र है जो हम अपने आज में मन के किसी एक कोने में छिपकर सहेजते है। प्रेम एक ऐसी अनुभूति है जिस पर आपका अपना अधिकार नहीं होता, यह तो बस हो जाता है। प्रेम की बहुत सुंदर भावना को व्यक्त किया गया है। यह कहानी हमें प्रेम के अलग स्वरूप को दिखाती है। जिसमें प्रेम कुछ पाने का नहीं बल्कि अहसास का नाम है। यह कहानी आपकी आँखों में बीते कल की रोशनी भर देगी।

विभिन्न मानवीय भावनाओं को सुन्दरता से कैसे उकेरा जाए तब इस किताब के बारे में ज़रूर लिखा जाएगा। भाषा सरल और सादा है। कहानियाँ पठनीय और याद रहने वालीं हैं।

000

केंद्र में पुस्तक

(कहानी संग्रह)

डोर अंजानी सी

समीक्षक : दीपक गिरकर, विजय कुमार तिवारी, अनीता सक्सेना

लेखक : ममता त्यागी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016, मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

विजय कुमार तिवारी
टाटा अरियाना हाउसिंग, टावर-4 फ्लैट-1002, पोस्ट-महालक्ष्मी विहार-751029, भुवनेश्वर, उड़ीसा
मोबाइल - 9102939190
ईमेल- vijsun.tiwari@gmail.com

अनीता सक्सेना
बी-143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी
भोपाल- 462023, म.प्र.
मोबाइल- 9424402456
ईमेल- anuom2@gmail.com

ज़िंदगी की हकीकत से रूबरू करवाती कहानियाँ

दीपक गिरकर

ममता त्यागी उन कथाकारों में से हैं जो कम लिखकर भी कथा-परिदृश्य में अपनी सार्थक उपस्थिति बनाए हुए हैं। "डोर अनजानी सी" ममता त्यागी का दूसरा कहानी संग्रह है, इन दिनों काफी चर्चा में है। ममता त्यागी के पास एक स्पष्ट और सकारात्मक दृष्टि के साथ कहानी कहने का एक विलक्षण तरीक़ा है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इस कहानी संग्रह में विविध विषयवस्तु और भावबोध की कहानियों का समावेश है। कथाकार ने इस संग्रह की कहानियों में स्त्रियों के मन की अनकही बातों को, उनके जीवन के संघर्ष को और उनके सवालों को रेखांकित किया हैं। इस संग्रह की कहानियाँ ज़िंदगी की हकीकत से रूबरू करवाती है। "डोर अनजानी सी" कहानी संग्रह की ज़्यादातर कहानियाँ आकार में छोटी हैं लेकिन इनकी विषय वस्तु में समाज के बड़े और ज्वलंत मुद्दों का समावेश है। कहानियों की प्रवाहमयता ऐसी है कि पढ़ने वाला निरन्तर उत्सुकता के साथ पुस्तक को पढ़ता जाता है। इस कहानी संग्रह में नारी जीवन के विविध पक्षों को अभिव्यक्त करने वाली सशक्त छोटी-बड़ी 10 कहानियाँ हैं। इन कहानियों में कुछ ऐसे चरित्र हैं जो अपनी संवेदनशीलता के कारण सदैव याद किए जाते रहेंगे। इनमें प्रमुख है "लव यू दादा" की नेहा, "स्टील का कप" की दिया, "पारिजात की महक" का किन्नर प्रणव, "डोर अनजानी सी" की डॉक्टर नयना, "अजन्मी बच्ची करे पुकार" की बानी, "खूँटी पर टँगा ओवर कोट" की सलमा, "उजाले की ओर बढ़ता कदम" की निर्मला, "वह फिर चूक गया?" की रत्ना, "मन पाखी न काहे धीर धरे" की रंजना। इनकी कहानियों के पात्र ज़ेहन में हमेशा के लिए बस जाते हैं।

"लव यू दादा" एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। सात्विक के बड़ा भाई रितिक की ग्रोथ सामान्य बच्चों जैसी नहीं है। नेहा सात्विक की दोस्त है। सात्विक अपने बड़े भाई रितिक की वजह से नेहा को कभी भी अपने घर नहीं बुलाता है लेकिन एक दिन नेहा सात्विक की अनुपस्थिति में सात्विक के घर पहुँच जाती है। नेहा को सात्विक की मम्मी मिलती है। नेहा बाहर ड्राइंग रूम में बैठ जाती है। तभी नेहा को पियानो की धुन सुनाई देती है। नेहा की मम्मी नेहा को बताती है कि यह पियानो सात्विक का बड़ा भाई रितिक बजा रहा है। नेहा और सात्विक की मम्मी रितिक के कमरे में जाते है तो रितिक नेहा को देखकर भड़क जाता है और वह नेहा को अपने कमरे से बाहर जाने को कहता है। उसी समय सात्विक घर आता है तो नेहा को देखकर चौंक जाता है। सात्विक नेहा से माफ़ी माँगता है तो नेहा कहती है कि मेरे लिए यह नया नहीं है। मेरे चाचा भी ऐसे ही है। मेरे मम्मी पापा उन्हें प्रेम से सँभालते हैं। तब सात्विक नेहा को कहता है कि मैं भी अपने दादा को बहुत प्रेम करता हूँ और उन्हें सारी ख़ुशियाँ देना चाहता हूँ। नेहा सात्विक से कहती है यह तो तुम्हारा कर्त्तव्य है इसमें शर्म कैसी।

इंसानी मनोभावों को कथाकार ने ख़ूबसूरती व सरलता से "स्टील का कप" कहानी में बयाँ किया है। इस कहानी में कथा नायिका दिया अपनी पढ़ाई के दौरान अपनी जाति को लेकर समाज की सड़ी गली मान्यताओं, परंपराओं को झेलती है लेकिन वह जब वह कलेक्टर बनकर आती है तब वह टांट मारने से नहीं चुकती है।

इस संकलन की एक दिलचस्प, रोचक और महत्त्वपूर्ण कहानी है "एक मुट्ठी ज़िंदगी की"

कथाकार ने इस कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। कोरोना काल में एकाकी जीवन जी रहे एक व्यक्ति के आम जीवन और दिनचर्या को रेखांकित करती सशक्त कहानी है। इस कहानी में एक व्यक्ति देह व्यापार करने वाली एक स्त्री को अपने फ्लैट पर बुलाता है, उसे खाना खिलाता है और उससे बातचीत करके अपना एकाकीपन दूर करता है। जब वह स्त्री उसके यहाँ से वापस जाती है तब वह व्यक्ति उसे पैसों से भरा हुआ एक लिफ़ाफ़ा देता है लेकिन वह औरत वह लिफ़ाफ़ा नहीं लेती है और कहती है आज तुम्हारे साथ गुजारी इस शाम में मैंने एक मुट्ठी ज़िंदगी को जी लिया। ममता जी यथार्थ को पूरी संवेदना के साथ उकेरती हैं।

"कोई बात नहीं, मेरे लिए तो आज तुम न होते कोई और होता। ज़िंदगी की गाड़ी तो चलानी ही पड़ती है।" कहते कहते वह खड़ी हो गई। लिफ़ाफ़ा उसके हाथ में वापस थमा दिया।

"यह मैं नहीं लूँगी।"

"प्लीज़ यह तुम्हीं रख लो ! वरना मुझे अच्छा नहीं लगेगा।" वह बोला, उसकी आवाज़ जैसे किसी गहरे कुएँ से आ रही थी।

"नहीं ! आज नहीं रख सकती, आज तुम्हारे साथ गुज़ारी इस शाम में मैंने एक मुट्ठी ज़िंदगी को जी लिया। एहसास हुआ कि मैं भी एक इंसान हूँ मशीन नहीं।"

"पारिजात की महक" आत्मीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। एक किन्नर प्रणव देवदूत बनकर एक वृद्ध व्यक्ति की मदद करती है। यह कहानी पाठक को भाव विभोर कर देती है।

वैचारिक अंतर्द्वंद्व के भँवर में डूबती-उतरती एक महिला डॉक्टर नयना के जीवन संघर्ष की कहानी है "डोर अनजानी सी"। लेखिका ने कहानी के माध्यम से एक स्त्री की अन्तर्व्यथा को बहुत ही सूक्ष्मता से वर्णन किया है। डॉक्टर नयना अपने पति रंजन से एक बच्चा चाहती है लेकिन रंजन बच्चों के लफड़ों में नहीं पड़ना चाहता है वह सिर्फ पैसा कमाना चाहता है। एक दिन दोनों में तलाक़ हो जाता है। रंजन वापस भारत चला जाता है और अपनी प्रेमिका से शादी कर लेता है। डॉक्टर नयना अब शादी नहीं करना चाहती है लेकिन वह अपने मातृत्व को पूरा करने के लिए एक बच्चा चाहती है। वह आईवीएफ की सहायता से माँ बनती है। इस कहानी में रंजन की कारस्तानियों की सूक्ष्मता से पड़ताल की गई है।

"अजन्मी बच्ची करे पुकार" कहानी में बानी के जीवन की विडम्बना, नियति, उसकी विवशता, मन की उलझन और कसमसाहट को गहराई से महसूस किया जा सकता है।

बानी पहली बार में एक बेटी को जन्म देती है। जब बानी दूसरी बार गर्भवती होती है तो बानी की सास उसका अल्ट्रा साउंड करवाती है उसमें पता लग गया कि इस बार भी बानी के गर्भ में लड़की है, तब बानी की सास बानी का गर्भपात करवा देती है। जब बानी तीसरी बार गर्भवती होती है तो फिर से बानी की सास बानी की अल्ट्रा साउंड करवाती है क्योंकि बानी की सास को वंश चलाने के लिए पोता चाहिए था। इस बार भी बानी के गर्भ में लड़की है। बानी की सास फिर से बानी का गर्भपात करवा देती है। चौथी बार जब बानी गर्भवती होती है तब उसे कॉलेज से एक प्रोजेक्ट के लिए बाहर जाना पड़ता है। वहाँ बानी लेडी डॉक्टर को सब कुछ बता देती है और डॉक्टर से कहती है कि मुझे अल्ट्रा साउंड नहीं करवाना है और इस बच्चे को जन्म देना है। बानी डॉक्टर से कहती है कि यदि इस बार मुझे लड़की हुई तब भी मैं उसे जन्म दूँगी और उसे किसी को भी गोद दे दूँगी। डॉक्टर के एक मित्र को ही एक बच्चा चाहिए था। बानी की सास बानी से पूछती है कि तुमने अल्ट्रा साउंड करवा ली है क्या तो बानी अपनी सास से झूट बोल देती है कि मैंने अल्ट्रा साउंड करवा ली है और इस बार बेटा ही पैदा होगा। समय पूर्ण होने पर बानी एक स्वस्थ बच्ची को जन्म देती है और उस बच्ची को डॉक्टर की मित्र को गोद दे देती है। डिलीवरी के बाद बानी अपनी सास को फ़ोन पर बताती है कि उसे मरा हुआ बच्चा हुआ था।

बानी को पाँचवी बार में बेटा पैदा होता है लेकिन पोते के दादा-दादी पोते को लाड़-प्यार में बिगाड़ देते हैं। बीस साल का होने के बाद बानी का बेटा अपने दोस्तों के साथ छुट्टियाँ बिताने मनाली जाता है और वहाँ वह ड्रग्स के चक्कर में पुलिस के हत्थे लग जाता है क्योंकि उसकी कार से ही ड्रग्स बरामद होती है। उसके दोस्त उसकी कार में चुपके से ड्रग्स रख देते हैं और उसे फँसा देते हैं। सभी लोग मनाली पहुँचते हैं। कोर्ट में जब बानी जज को देखती है तो देखती रह जाती है। जज बानी की शक्ल सूरत की ही है। बानी का बेटा झूठे केस में बरी हो जाता है।

लेखिका ने एक माँ की छटपटाहट को स्वाभाविक रूप से रेखांकित किया है। एक विवश माँ की ज़िंदगी का ऐसा करुण दृश्य इस कहानी में उपस्थित है कि मन उद्वेलित हो उठता है। कहानी में समाज की मानसिकता के स्पष्ट दर्शन है।

"खूँटी पर टँगा ओवर कोट" कहानी में कश्मीर से पंडितों के पलायन के समय की त्रासदी का चित्रण है।

"उजाले की ओर बढ़ता क़दम" कहानी में औरत जीवन में अकेले रहने पर किस तरह इतनी गहराई में सोचती है, इसको लेखिका ने बख़ूबी दर्शाया है। कहानी की मुख्य किरदार निर्मला की संवेदनाओं को लेखिका ने जिस तरह से इस कहानी में संप्रेषित किया है वह काबिले-तारीफ़ है।

"वह फिर चूक गया?" कहानी में परिवेश, मौसम और माहौल को कथाकार ने अपने लेखन-कला के विविध रंगों से इत्मीनान के साथ उभारा है। इस कहानी का कैनवास बेहतरीन है। कहानी का हर किरदार संयम, रामआसरे, रत्ना, रुचि, लक्ष्मी, मोहित, यामिनी अपनी विशेषता लिए हुए हैं और अपनी उसी ख़ासियत के साथ सामने आते हैं। लेखिका ने पात्रों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह से निरूपित किया है और उनके स्वभाव को भी रूपायित किया है। कथा नायिका रत्ना की पीड़ा, बैचेनी, त्रासदी को लेखिका ने अपनी आवाज़ दी है। यह कहानी पाठकों की चेतना को झकझोरती है। लेखिका रंगकर्मियों की ज़िंदगी के हर पार्श्व को देखने, छूने तथा

उकेरने की निरंतर कोशिश करती हैं। कहानी में चित्रकला और साहित्य जीवन को जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया गया है। भाषा की रवानगी और क़िस्सागोई की कला इस कहानी को और अधिक सशक्त बनाती है।

समकालीन यथार्थ को दर्शाती, मूल्यबोध एवं सकारात्मक सोच से परिपूर्ण "मन पाखी न काहे धीर धरे" कहानी अनायास हृदय में उतर जाती है। सुयश और रंजना का बेटा सलिल अचानक एक दिन घर आता है। उसके साथ एक लड़की भी आती है। सलिल कहता है कि यह सम्पदा है, आपकी बहू। सुयश ने सम्पदा को बहू मानने से इंकार कर दिया। रंजना अकेली कुछ नहीं कर सकी। एक दिन सलिल का एक्सीडेंट हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। संयोग से एक दिन सुयश और रंजना को सम्पदा मिल जाती है। सुयश और रंजना उसको बेटी मान लेते है और एक दिन उसकी शादी कर देते हैं।

"डोर अनजानी सी" की डॉक्टर नयना और "अजन्मी बच्ची करे पुकार" की बानी जैसे पात्र सीधे विद्रोह नहीं करते हैं बल्कि वे अपनी बेचैनी पाठक के भीतर पैदा करते हैं।

लगभग प्रत्येक कहानी में ममता त्यागी समाज की किसी न किसी समस्या को पूरी पारदर्शिता के साथ अभिव्यक्त करती हैं। ये रिश्तों और मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत कहानियाँ हैं। ममता जी की कहानियाँ पात्रों और परिवेश के माध्यम से आन्तरिक संवेदना को झकझोरती हैं। ये कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं और छटपटाहटों को अपने में समेटे हुए है। सहज जीवन इनकी कहानियों में बहता है। इन कहानियों में हमारे समय का यथार्थ अंकित है। संवेदनशील व उम्दा कथाकार ममता त्यागी की कहानियाँ मानवीय संबंधों को हर कोण से देखती हैं। पात्रों के अंतर्मन की दुविधा पाठक के मन में कहानी के ख़त्म होने के बाद भी रह जाती है। सभी कहानियों के कथ्य प्रभावशाली हैं। सभी कहानियाँ घटना प्रधान हैं। इस कहानी संग्रह की हर एक कहानी औरत के मन और उसकी भावनाओं के हर एक पहलू को उजागर करती है। ममता त्यागी की कहानियाँ समाज के ज्वलंत मुद्दों से मुठभेड़ करती है और उस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करती है। सकारात्मक सोच का संदेश देना इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है। कहानियों में लेखिका नैतिक मूल्यों में हो रहे ह्रास के प्रति चिंतित दिखती है। इस कहानी संग्रह को पढ़कर लेखिका के मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था, उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय मिलता है। अधिकांश कहानियों के पात्र सबके साथ रहने के उपरांत भी अकेलेपन में रहने को अभिशप्त हैं। संवेदना के धरातल पर ये कहानियाँ सशक्त हैं। कथाकार ने स्त्री के अंतर्मन में उठती हर लहर को बहुत ही ख़ूबसूरती से अपनी कहानियों में उकेरा हैं। कथाकार ने समकालीन सच्चाइयों तथा परिवार में स्त्रियों की हालत को निष्पक्षता से प्रस्तुत किया है। ये कहानियाँ कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से पाठकीय चेतना पर अमिट प्रभाव छोड़ती है।

इनकी कहानियों में विविधता है। लेखिका कहानियों में नए नए विषयों को उठाती हैं। ये कहानियों में भाषा और शिल्प में भी नए नए प्रयोग करती हैं। पात्रों के अनुरूप छोटे छोटे संवाद हैं जो उचित लगते हैं। ममता त्यागी के दूसरे कहानी संग्रह "डोर अनजानी सी" का साहित्य जगत में स्वागत है, इस शुभकामना के साथ कि उनकी यह यात्रा जारी रहेगी।

000

झकझोरती कहानियाँ

विजय कुमार तिवारी

प्रवासी भारतीय लेखिकाओं की श्रेणी में अमेरिका में ही रह रही ममता त्यागी का कहानी संग्रह "डोर अनजानी सी" की एक-दो कहानियों को मैंने पत्रिकाओं में पहले भी पढ़ा है और कह सकता हूँ कि देखने में सहज सपाट सी दिखने वाली कहानियाँ हमारा ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हैं। प्रवासी भारतीय रचनाकारों ने लेखन की दुनिया में अपनी जगह बनाई है और अपने तरीक़े से प्रभावित किया है। उन्हें देश के साथ विदेश की धरती का अनुभव है और वह सब उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। दूर रहते हुए उनकी स्मृतियों में अपना देश, अपना गाँव, अपने लोग, रिश्ते-नाते और अपनी पुरानी मासूम-सी ख़ुशियाँ कहीं अधिक कुलबुलाती रहती हैं और मन बार-बार लौटता है अपनी पुरानी देहरी पर।

'कुहासा छँट गया' के बाद यह उनका दूसरा कहानी संग्रह शिवना प्रकाशन से ही प्रकाशित हुआ है। उनके पास अपनी भाषा-शैली है और वह अपनी कहानियों में कहीं संवाद करती दिखाई देती हैं, कहीं किसी पात्र के द्वारा कहानी सुनाती हैं और कोई पात्र अपनी आपबीती में खोया दिखता है। उनका मन विसंगतियों के लिए विह्वल होता है, वह तरस खाती हैं और हर बार ईश्वर की लीला पर विश्वास जताती हैं। उनके लेखन में, कहानियों के सृजन में जबरदस्त ख़ूबसूरती है, घटनाओं, दृश्यों के साथ-साथ उनका भीतरी व्यथित मन उमड़ता-घुमड़ता रहता है। स्त्री मन की समझ चमत्कृत करती है और उनके प्रश्न झकझोरते से दिखाई देते है। उनकी कहानियाँ सार्थक संदेश भी देती हैं और मन की उड़ान भी दिखाती हैं।

'लव यू दादा' ऑटिज़्म के शिकार बच्चे की मार्मिक कहानी है। इस बीमारी का सीधा प्रभाव बच्चे पर तो पड़ता ही है, वह पूरा घर, घर के सभी लोग आर्थिक, सामाजिक और मानसिक रूप से प्रभावित होते हैं। जैसा कि अपनी कहानी में उन्होंने लिखा है, अक्सर घर के लोग वैसे बच्चे को दुनिया से छिपा कर रखना चाहते हैं। सात्विक भी नेहा को घर नहीं आने देना चाहता क्योंकि रितिक की बीमारी की जानकारी हो जाने का ख़तरा है। लोगों की उठती नजरें घर वालों को बेचैन करती हैं। घर के लोगों और समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण व मनोविज्ञान पर लेखिका ने सटीक बातें की है, बीमारी के बारे में बताया है और ऐसा बहुत कुछ जो ऐसे बच्चों को झेलना पड़ता है। ऐसे बच्चे प्रेम करते हैं, प्रेम चाहते हैं और धैर्य से समझाने पर समझते भी हैं। कहानी मोड़ लेती है, किसी दिन नेहा बिना बताए सात्विक के घर पहुँच जाती है और रितिक के बारे में जान जाती है। वह अपने घर में अपने चाचा जी के बारे में बताकर सात्विक को उत्साहित करती है। पात्रों के मनोविज्ञान पर कहानीकार की पूरी पकड़ है और वह समाज

में जागृति फैलाना चाहती है। यह सार्थक संदेश के साथ सुखद कहानी है।

'स्टील का कप' अहंकार, भेद-भाव, ऊँच-नीच, जाति भेद, संघर्ष और सफलता की कहानी है। कहानी मोड़ लेती है जब दिया रश्मि के घर पहुँचती है, उसकी माँ से सामना होता है और उनका अहम् दिखाई देता है। जाने क्यों उनकी दृष्टि से दिया स्वयं को असहज महसूस करती है। उसकी माँ उसे स्टील के कप में चाय देती है और स्वयं माँ-बेटी बोन चाइना के कप में पीती हैं। उन्होंने समाज के ऐसे अन्तर्विरोध, जातिवाद को लेकर गहरा आघात किया है। दिया अपने श्रम से, मेहनत से कलक्टर बनती है और किसी दिन रश्मि की माँ को अपने काम के लिए उसके पास आना पड़ता है। दिया उन्हें शानदार कप में चाय पिलाती है और स्वयं आत्मविश्वास से भरी हुई है। इस कहानी में ममता जी ने पात्रों का चरित्र बहुत सुन्दर तरीक़े से उभारा है, बहुत ही सहजता से अपना संदेश दिया है और इस तरह यह एक प्रभावशाली कहानी बन पड़ी है।

'एक मुट्ठी ज़िंदगी' हमारे समाज में वैसी लड़कियों की कहानी है जो अपने सौन्दर्य और प्रतिभा के आधार पर फिल्मों में जाने की इच्छा रखती हैं, वहाँ उनका शोषण होता है और वे वासना के दलदल में धकेल दी जाती हैं। बावजूद इसके इस कहानी में कहानीकार का चिन्तन और सृजन कोई आदर्श प्रतिमान स्थापित करता हुआ सा दिखाई देता है। भाषा सहजता लिए हुए है, रहस्य, रोमांच से भरी कहानी विचलित तो करती है परन्तु आत्मीयता व प्रेम की श्रेष्ठता का परिचय देती है। ममता त्यागी संवाद की शैली अपनाती हैं और धीरे-धीरे भीतर की गाँठें खोलती हैं। उन्होंने स्त्री मन को खोला है, सुखद भाव-संवेदनाओं को फैलने-पसरने और भीगने दिया है। ख़ुशी है, पहली बार किसी ने उसे केवल देह नहीं समझा है। वह अपनी पीड़ा बताती है-''हर रात केवल मेरी देह ही छलनी नहीं होती, मेरी आत्मा तक लहू-लुहान हो जाती है।'' अंत में वह ख़ुश होकर कहती है-''आज तुम्हारे साथ गुज़ारी इस शाम में मैंने एक मुट्ठी ज़िंदगी को जी लिया है।''

'पारिजात की महक' खुसरो या किन्नर समाज के दुख, संघर्ष, पीड़ा की कहानी है। उनके बारे में कोई नहीं सोचता, उन्हें अपने माँ-बाप का पता नहीं होता, समाज में आदर, समान सुरक्षा नहीं मिलती और बड़ी हिकारत से लोग देखते हैं। ममता त्यागी ने अपनी कहानी में प्रमाणित किया है, उन्हें भी सुख-दुख, प्रेम, सहयोग जैसी भावनाएँ होती हैं। परी की बुद्धिमता, चतुराई, तत्परता और सहयोग से ही शालिनी अपने पिता को जीवित देख पा रही है। उनकी करुणा, संवेदना और वस्तुस्थिति को कहानीकार ने सशक्त तरीक़े से चित्रित किया है। उनका ईश्वर की मूर्ति के सामने रोना-बिलखना किसी को भी द्रवित कर सकता है। आधा-अधूरा शरीर देकर भगवान सब कुछ छीन लेता है और उन्हें अपनी सम्पूर्ण ज़िंदगी दुख और पीड़ा के साथ जीना पड़ती है। ममता त्यागी ने साहस के साथ, शोधपूर्ण तरीके से इस कहानी को बुना है और उनके प्रति कोई सार्थक ज़िम्मेदारी निभाई है।

देश हो या विदेश, स्त्री की पीड़ा को लेकर ममता त्यागी की दृष्टि जाती ही है, गहराई से पड़ताल करती हैं और उनका मन व्यथित हो उठता है। संग्रह की अनेक कहानियाँ उसी व्यथित, विह्वल मन की उपज हैं। 'डोर अनजानी सी' कहानी के नाम पर ही उन्होंने अपने संग्रह का नामकरण किया है। नयना अमेरिका में पढ़ी-लिखी एक सफल डाक्टर है, उसकी शादी भारत में अपने रिश्ते में ही हुई जिसने ग्रीन कार्ड पाने के लोभ में यह रिश्ता किया। नयना स्त्रीत्व व मातृत्व दोनों अनुभूतियों से गुज़रते हुए माँ बनना चाहती है। उसकी मंशा कुछ दूसरी है, वह सहमत नहीं होता, मतभेद होते-होते स्थिति तलाक़ तक पहुँचती है, तलाक़ हो भी जाता है और अंततः नयना टूट सी जाती है। वह अपमानित महसूस करती है, कहती है-आख़िर क्या माँग लिया था उसने? केवल एक चाह अपने स्त्रीत्व को पूर्ण करने की, अपनी कोख में पलती एक नई ज़िंदगी के एहसास को जीने की। स्त्री की सम्पूर्णता माँ बनने में है, वही तो चाहा है उसने, तो क्या ग़लत किया? नयना आधुनिक तकनीक 'स्पर्म डोनेट' के बारे में माँ को बताती है और अपना संकल्प भी। पिता और माँ सहमत होते हैं और इस तरह उनके घर में ख़ुशियाँ लौट आती हैं। ऐसी कहानी लिखकर ममता त्यागी ने दुनिया भर की स्त्रियों को कोई संदेश दिया है और संसार में हर क्षेत्र में हो रही प्रगति का ज्ञान भी।

'अजन्मी बच्ची करे पुकार' पुत्र प्राप्ति के लिए स्त्री-भ्रूण हत्या जैसे पाप को लेकर मार्मिक और सशक्त कहानी है। दुखद है, इस पूरे षड्यंत्र में स्त्री मानसिक, शारीरिक सारी पीड़ा भोगती है और यह कुकृत्य करने-करवाने वाली भी स्त्री ही होती है। बानी जैसी लड़कियाँ बहुत हैं जिन्हें ऐसे दुख झेलने पड़ते हैं और मम्मा जैसी सास के ख़िलाफ़ बोलने वाला कोई नहीं है। ममता त्यागी ने बानी की स्थिति, उसके दुख और मानसिक पीड़ा का बड़ा ही जीवन्त चित्रण किया है। उसका दो बार गर्भपात करवाया जा चुका है और अब वह ऐसे कुकृत्य के लिए तैयार नहीं है। कहानीकार मोड़ देते हुए कोई सुखद घटनाक्रम जोड़ती हैं और वह लड़की बच जाती है। उसे लड़का भी होता है परन्तु शैतान स्वभाव का है। समाज में व्याप्त ऐसे हालात पर उनकी कहानियाँ आँख खोलने वाली और उनकी संवेदना पाठकों को जगाने वाली है।

'खूँटी पर टँगा ओवरकोट' कश्मीर और कश्मीरी पंडितों के पलायन के कारणों की पड़ताल करती है, उनके भरोसे व विश्वास को चकनाचूर करती है, उनके जीवन की त्रासदी बयान करती है और मानवता पर लगे धब्बों को दिखाती है। यह वह घटना थी जिसने पूरी दुनिया को हिला कर रख दिया और पूरी मानवता शर्मसार हुई थी। आज भी उसका दर्द झेलते लोग मिल जाते हैं। कहानी केवल एक हिस्सा बताती है, इतना ही नहीं हुआ था, बहुत कुछ हुआ था उन दिनों। अक्सर कौल साहब जैसे भले लोग विश्वास ही नहीं कर पाते कि ऐसा भी हो सकता है। उन्हें अपनी बेटियों की तरह सलमा की चिन्ता सताती है। कहानी यह भी संदेश देती है, सारे के सारे बलवाई नहीं होते, कुछ इस्माइल बेग जैसे लोग भी होते हैं। 'खूँटी पर टँगा ओवरकोट' बिंब इंसानियत, मानवता और ईमानदारी की कहानी कहता है।

ममता त्यागी ने अच्छी कहानी बुनी है, पात्रों का, उनकी भावनाओं, परिस्थितियों का सुन्दर, मार्मिक चित्रण किया है, जड़ों से उखड़ने का दर्द दिखाया है और संदेश दिया है कि दुनिया में बुरे लोग हैं तो अच्छे लोग भी हैं।

'उजाले की ओर बढ़ता क़दम' अद्‌भुत भाव-संवेदनाओं से भरी प्रेम कहानी है। ऐसे दृश्य हमारे समाज में भरे पड़े हैं परन्तु कहाँ, कोई देख पाता है या अनुभव करता है। ममता त्यागी अपनी कहानियों में स्त्री को लेकर, उसके मन व भावनाओं को लेकर बार-बार अपना मत उजागर करती हैं। निर्मला और देवेश के बीच के संवाद, एक-दूसरे के लिए आत्मीय भाव, बड़ी ख़ूबसूरती से उन्होंने चित्रित किया है। बेटी विभा का अंकल का नाम लेकर माँ के साथ परिहास किसी को भी स्वस्थ तरीक़े से प्रभावित कर सकता है। निर्मला जी का संस्कारों से बँधा मन कोई दूसरा क़दम उठाता है और वह नर्सिंग होम पहुँच जाती हैं। कहानी का सुखद अंत बड़ा रोचक है। कुछ समय बाद देवेश वर्मा भी किसी बँधे हुए मन के साथ वहीं पहुँचते हैं। ममता जी की पंक्तियाँ देखिए-'उस पल निर्मला को लगा जैसे हज़ारों सूरज एक साथ जगमगा गए हों और रोशनी ने उसे सराबोर कर दिया। वह अपनी ज़िंदगी की तरफ आ रहे इस उजाले की ओर क़दम बढ़ाने के लिए आतुर हो उठीं।'

'वह फिर चुक गया' मार्मिक व भाव प्रधान प्रेम कहानी है। किसी का कल्पनाशील बावरा मन ही फिल्मी अंदाज़ लिए ऐसी कहानी का सृजन कर सकता है। ऐसी कहानी के यथार्थ का धरातल सामान्य ज़िंदगी से तनिक भिन्न होता है, इसमें कल्पनाशीलता अधिक होती है और पाठक किसी दूसरे आलोक में खोए रहते हैं। कहानीकार का मन सुन्दर-सुन्दर कल्पनाएँ कर लेता है, प्रेम की भावनाओं के सुखद संयोग बनते हैं और कोई रूमानी ख़्याल वाले सुपात्र मिलते हैं। रहस्य-रोमांच के लिए वह कहानी में कोई मोड़ देती हैं-संयम को लगता है, 'कहीं कोई भटकती आत्मा तो नहीं है।' ममता त्यागी दार्शनिक भाव से लिखती हैं-''मनुष्य की भी अजीब फितरत होती है, मन की सोच पर निर्भर हो जाता है। इसी मन के वश में होकर कभी दुख के भँवर में डूबने लगता है, कभी सुख के झूलों में पींगे लेता है। कभी साहस की मूर्ति बन जाता है और कभी कोई मामूली-सा डर भी उसे जीने नहीं देता।'' पहाड़, जंगल के सौन्दर्य के साथ मन की उड़ान लेखिका का अपना गहरा भाव है जिसमें प्रेम अपने तरीक़े से पसरा हुआ है। यहाँ भी उनका मन स्मृतियों में उलझता है और अनेक घटनाएँ मूर्त होती दिखाई देती हैं। संयम और रत्ना की भेंट, एक-दूसरे से परिचित होना और आत्मीय होते जाना ममता जी के लेखन का सुन्दर संयोजन है। कहानी को विस्तार देते हुए, नाना प्रसंगों को जोड़ते हुए, प्रेम के भावों में डूबते हुए, प्रेम-भावनाओं से भरे अनुभवों को समझा जा सकता है। कहानी फिर मोड़ लेती है, रत्ना पत्र में सारी बातें लिखती है और परिदृश्य से ओझल को जाती है। ममता जी के पास कहानी को अनेक मोड़ों से घुमाने का हुनर है, वह अनेक घटनाओं को जोड़ती चलती हैं और अंत में संयम-रत्ना को मिला देती हैं।

वैसे ही संग्रह की अंतिम कहानी 'मन पाखी न काहे धीर धरे' भारतीय परिवार में पुरुष का हठ, स्त्री का रोते रहना, समझौता करना और पूरी ज़िंदगी पिसते रहने की कहानी है। उनकी कहानियों के भीतर अनेक कहानियाँ छिपी रहती हैं जिनसे परिस्थितियाँ उजागर होती हैं, भीतर की पीड़ा और अन्तर्द्वंद्व दिखाई देता है। ममता त्यागी पात्रों को हठात् प्रवेश दिलाती हैं जो आगे चलकर बड़ी ज़िम्मेदारी उठाते हैं। सुयश और रंजना के सामने उनका पुत्र सलिल अपनी पत्नी सम्पदा के साथ खड़ा है। सुयश स्वीकार नहीं कर पाते। रंजना मौन खड़ी रहती है। सलिल घर छोड़कर चला जाता है। उसकी मृत्यु हो जाती है। मन की पीड़ा को जीवन भर ढोती रहती रंजना के चरित्र को ममता त्यागी ने ख़ूब जीवंत किया है। यहाँ भी कहानी में नाना मोड़ हैं, भाव-संवेदनाएँ हैं और अंत में रंजना अपनी बहू को घर ले आने में सफल होती है।

देश-विदेश के अनुभवों से भरी ममता त्यागी, स्त्री मन की गहन वेदना समझती हैं। उनकी स्त्रियाँ कभी हारती हैं, कभी जीतती हैं हालाँकि उनका उद्‌देश्य जीत-हार नहीं होता, वह घर-संसार सफलता पूर्वक चलाना चाहती है और बहुत कुछ करना चाहती हैं। दुनिया की अधिकांश स्त्रियाँ पीड़ा के दबाव में होती हैं और उनका मन बेचैन रहता है। अपनी कहानियों में ममता त्यागी स्त्री मन को दुनिया के सामने लाने का प्रयास करती हैं और सुखद संदेश देती हैं। उनके पास अभिव्यक्ति के लिए सार्थक, सशक्त भाषा है, भावनाओं वाली शब्दावली है, विवेचना की शैली है और प्रेम की भावनाओं से भरा मन है। गम्भीर चिन्तन के साथ वह हास्य-व्यंग्य के दृश्य भी रचती हैं और दार्शनिक चिन्तन भी।

000

विभिन्न पहलुओं पर कहानियाँ
अनीता सक्सेना

'डोर अंजानी सी' यह ममता त्यागी का दूसरा कहानी संग्रह है जिसमें कुल दस कहानियाँ हैं।

संग्रह का नाम ही इस बात की गवाही देता है कि लेखिका ममता त्यागी ने साहित्य साधना के ज़रिये एक ऐसी डोर थामी है जो महीन तो है लेकिन मज़बूत है। यह डोर रिश्तों की भी है, दोस्ती की भी, जानी-पहचानी भी और अंजानी भी। लेकिन कहते हैं न कि डोर कैसी भी हो, दो लोगों के बीच में एक सेतु ज़रूर बनाती है। चाहे वो पतंग और चरखी की हो या इंसान और रिश्ते की।

पहली कहानी पढ़ते ही मन भावुक हो जाता है। 'लव यू दादा' दो भाइयों के बीच के स्नेह को व्यक्त करती है। एक भाई ऑटिज़्म से पीड़ित है और दूसरा उसके प्रति समर्पित। दोनों के बीच की विश्वास की यह डोर किसी तीसरे को उनके बाच आने पर क्या प्रतिक्रिया देगी इस बात से एक भाई हमेशा दुविधा में रहता है। उसका भाई के प्रति कर्त्तव्यबोध तथा उसके अपने प्यार के बीच की डोर की मधुर कहानी है 'लव यू दादा'।

'स्टील का कप' इंसान की उस मानसिकता को प्रकट करती है जो सदियों से जाति भेद को लेकर चली आ रही है। इंसान चाहकर भी उसे छोड़ता नहीं। हालाँकि

वर्तमान में ये भेदभाव अब कम हो चले हैं लेकिन जाति के नाम पर, आरक्षण के नाम पर वक्त-बेवक़्त उसकी आड़ में इंसान अपने मतलब कैसे साधता रहता है और उसका एक युवा मन पर क्या प्रभाव पड़ता है यह कहानी में बख़ूबी दर्शाया गया है।

'एक मुट्ठी ज़िंदगी की' में कई समस्याओं को एक ही सूत्र में पिरोकर कहानी का बहुत बढ़िया ताना-बाना बुना गया है। महाबीमारी कोरोना का ख़तरनाक समय, एक इंसान का अकेलापन और एक लड़की की मजबूरी इन सबके बीच इंसानियत की नाज़ुक डोर सब मिलाकर एक मज़बूत कहानी गढ़ी गई है, अच्छी कहानी है।

'पारिजात की महक' में भी एक जाति विशेष की परेशानियों, समाज में उनका स्थान, उनकी मजबूरियों को दर्शाते हुए भी उनके भावनात्मक पक्ष को बड़ी ख़ूबसूरती से उभारा गया है। एक कविता की पंक्तियाँ याद आ जाती हैं कि

'बने हो एक ख़ाक से तो,
दूर क्या-क़रीब क्या ?
लहू का रंग एक है,
अमीर क्या-ग़रीब क्या ?'

इंसान ही इंसान के काम आता है और इंसान ही इंसान से भेदभाव करता है। वह तब तक इस अंतर को नहीं समझता जब तक कि स्वयं उस पर कोई संकट न आए। पढ़े-लिखे युवा और विदेशों में बस गए लोग इस भेदभाव को समाप्त करने में लगे हुए हैं लेकिन भारत में तो आज भी किन्नरों की इस जाति विशेष को आशीर्वाद और शगुन के रूप में ही देखा और स्वीकार किया जाता है।

कहानी संग्रह की शीर्षक कहानी 'डोर अंजानी सी' एक लड़की के उस साहस की कहानी है जो विरलों में ही होती है। अधिकतर लड़कियाँ विदेशों में रह रहे लड़कों से धोखा पाती हैं या हिंदुस्तान से आए लड़कों के विदेश में रहने के एशो आराम और घूमने के सपने द्वारा छली जाती हैं। ऐसी ही स्वावलंबी लड़की जब अपने जीवन का आधार ढूँढ़ती है और अपने निर्णय पर अडिग रहकर अपने माता-पिता को भी मनाती तथा समझाती है, उसके इस निर्णय की कहानी है यह जो एक माँ और बच्चे के बीच की ममता की डोर को थामे हुए है।

इसी तरह 'अजन्मी बच्ची करे पुकार' भी उस माँ की ममता को समेटे हुए है जो लगातार बेटियों को जन्म देने की दोषी करार दे दी जाती हैं। यह मानसिकता हमारे देश के अनेकों परिवार की है जहाँ घर के वंश को चलाने के लिए बेटे की दरकार रहती है। जहाँ यह माना जाता है कि बेटियाँ तो पराई हैं, लड़का अपना होता है जो जीवन भर साथ निभाता है। एक नौकरी पेशा माँ भी परिवार के दवाब में, विशेषकर सासू माँ के दवाब में कितनी विवश हो सकती है यह इस कहानी में दिखाया गया है। यहाँ पर कहानी में एक कहानी जन्म लेती है जब एक पढ़ी-लिखी समझदार डॉक्टर उसे इस समस्या से निजात दिलाती है। कुल मिलाकर यही निष्कर्ष निकलता है कि एक लड़का या लड़की बड़ी होकर कुल का नाम रोशन करेगी या बदनाम कोई भी नहीं कह सकता।

'खूँटी पर टँगा ओवरकोट' बहुत बेहतरीन कहानी है। यह जन्नत कहे जाने वाले कश्मीर की उस मर्मान्तक दास्ताँ को बताती है जब कश्मीर में दहशतगर्दों ने तबाही मचा रखी थी। कश्मीरी पंडितों की तकलीफ़ों का बयाँ करने के साथ यह कहानी दोस्ती के उस भावुक रिश्ते को भी समेटती है जिसमें हिन्दू-मुस्लिम दोस्ती को लोग हमेशा दोष देते रहते हैं जबकि ये लोग एक-दूसरे की हिफ़ाज़त के लिए मर-मिटने को तैयार रहते हैं। यह कहानी उस समय का वर्णन करती है जब कश्मीरी पंडितों को कश्मीर छोड़कर हिंदुस्तान आना पड़ा था। कौल साहब और इस्माइल बेग की दोस्ती और भाईचारा एक मिसाल बन गया है, साथ ही कहानी का शीर्षक 'खूँटी पर टँगा ओवरकोट' भी बहुत बढ़िया है।

'उजाले की ओर बढ़ता क़दम' ऐसी महिलाओं के मन को व्यक्त करती है जो जीवनसाथी को खोने के बाद अकेले ज़िंदगी जीती हैं। बच्चे अपनी-अपनी नौकरी और बच्चों में व्यस्त रहते हैं, उनके पास समय नहीं है। हमारा समाज अकेले रह रहे लोगों को स्वतंत्रता देने के मामले में बड़े उदार ख्याल वाला नहीं है ऐसे में महिला का अकेले रहना और किसी पड़ौसी का उनके सुख-दु:ख में साथ देना, समाज में चर्चा का विषय बन जाता है है। लोग भूल जाते हैं कि हर किसी को अपनी ज़िंदगी जीने का हक़ है। उम्र के उस पड़ाव पर जब कि चाहे स्त्री हो या पुरुष यदि वह अकेला रह गया है तो उसके अकेलेपन और उसकी हारी-बीमारी में सहायता कैसे और कौन करे यह एक ज्वलंत प्रश्न सामने आ खड़ा होता है यह कहानी उसी समस्या पर आधारित है, लेखिका ने उसका हल बहुत बढ़िया दिया है।

'वह फिर चूक गया' कुछ रहस्यमयी अंदाज़ की प्रेम कहानी है जो पाठक को अंत तक उलझाए रखती है तथा पूरी पढ़े बिना रुकने नहीं देती। 'मन पाखी न काहे धीर धरे' दो पीढ़ी के अंतर और परिवार में बच्चों के साथ आपसी तालमेल न होने की कहानी है। बच्चे अपना निर्णय स्वयं नहीं ले सकते, माँ-बाप की सहमति से ही सब कार्य होना चाहिए, एक परिवार को बर्बादी की कगार पर ला खड़ा करते हैं।

ममता त्यागी की कहानियाँ मानवीय रिश्तों और स्नेह के धागों में पिरोकर लिखी हुई कहानियाँ हैं। आपने परिवार, समाज और इन दोनों के बीच सेतु बना एक इंसान इस सबको ध्यान में रखकर ज़िंदगी के विभिन्न पहलुओं पर कहानियाँ लिखी हैं। भाषा में आपकी अच्छी पकड़ है, कहानियों में प्रवाह सतत बना रहा है। पाठक पूरी रुचि से कहानियों को अपने को जोड़कर पढ़ता है।

सुख-दु:ख के सभी भावों का मिश्रण है आपकी कहानियों में। बहुत अच्छे कहानी संग्रह के लिए ममता जी को बहुत-बहुत बधाइयाँ। आप अमेरिका में रहते हुए भी अपनी जन्मभूमि को भूली नहीं हैं और दोनों देशों के बीच की संस्कृतियों का साहित्य में समावेश करा रही हैं यह बहुत ख़ुशी की बात है।

आपकी लेखनी हिन्दी साहित्य जगत् में यूँ ही योगदान देते रहेगी मुझे विश्वास है।

000

केंद्र में पुस्तक

(उपन्यास)

ऐ वहशते दिल क्या करूँ

समीक्षक : डॉ. मधु सन्धु, जसविन्दर कौर बिन्द्रा, आकाश माथुर

लेखक : पारुल सिंह

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. मधु संधु
13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल, जी. टी. रोड, अमृतसर, 143104, पंजाब,
मोबाइल- 8427004610
ईमेल- madhu_sd19@yahoo.co.in

जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, पहली मंज़िल,
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली 110048
मोबाइल- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, ज़िला सीहोर, मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

आसन्न अतीत के सुरक्षित पड़े अंधेरे में प्रवेश

डॉ. मधु संधु

साहित्य ने जब- जब चिकित्सकों, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को आकर्षित किया है, उन्हों ने इसे शाश्वत ऊँचाइयों से ही जोड़ा है। मास्को मेडिकल कॉलेज से अपनी शिक्षा पूरी करने वाले एंटोन चेखव रूस के जाने माने चिकित्सक होने के साथ साथ विश्व प्रसिद्ध नाटककार, और कथाकार रहे। कहते थे- चिकित्सा उनकी धर्म पत्नी है और साहित्य प्रेमिका। प्रवासी भारतीय माता-पिता की संतान अब्राहम वर्गीस मशहूर अमेरिकन चिकित्सक होने के साथ-साथ उपन्यासकार, संस्मरण लेखक भी हैं। मानते हैं कि चिकित्सा उनका पहला प्यार है और लेखन सीधे उसी से निकला है। ब्रिटेन के उपन्यासकार समरसेट मोघम ने चिकित्सक होते हुये भी कभी चिकित्सा का अभ्यास नहीं किया और पूर्णकालिक लेखक बन गए। वे नाटककार, उपन्यासकार और कहानीकार थे। हारवर्ड विश्वविद्यालय से एम. डी. करने वाले जॉन माइकल क्रिचटन नाटक, कहानिया, उपन्यास लिखने में रुचि रखते थे। 'द जुरैसिक पार्क' उनकी विश्व प्रसिद्ध रचना है। इन्फोसिस कंपनी की अध्यक्ष टाटा मोटर्स की पहली महिला इंजीनियर सुधा मूर्ति ने साहित्य को 32 पुस्तकें दी हैं। उपन्यास, कहानी, लघु कथा, यात्रा संस्मरण- सब पर लेखनी चलाई है। नौ उपन्यासों के रचयिता बेस्ट सेलर लेखक चेतन भगत ने दिल्ली प्रोद्यौगिकी संस्थान से मकेनिकल इंजीन्यरिंग की थी। हिन्दी ब्लोगिंग के आदि पुरुष रवि रतलामी टेक्नोक्रेट थे। हिन्दी पठन और कविता, गजल, व्यंग्य, स्तम्भ लेखन में उनकी पैठ थी।

नोएडा की पारुल सिंह हिन्दी जगत का एक उभरता हुआ हस्ताक्षर है। वे विज्ञान की छात्रा रही हैं। अल्मोड़ा विश्वविद्यालय से बॉटनी में एम. एससी. हैं। 'चाहने की आदत है' उनका कविता संग्रह है। 'ऐ वहशते दिल क्या करूँ' पारुल सिंह का संस्मरणात्मक उपन्यास है। कहानी का आरंभ जुलाई 2014 से किया गया है। जब 42 वर्षीय नायिका पहली बार अस्पताल में एडमिट हुई थी। भूमिका में कहती हैं- "मैंने अपनी हार्ट सर्जरी के अनुभवों पर यह किताब लिखनी शुरू की। आजकल हम... मैं और मेरे पति ब्रिजवीर सिंह जी अलग-अलग शहरों में हैं तो मैं दिन भर का लिखा उन्हें भेजती। ...सर्जरी के समय हम दोनों साथ थे।" लिखने में, साफ़गोई में पति का हाथ प्रमुख रहा- "जो बात कहते डरते हैं सब, तू वो बात लिख/ इतनी अँधेरी थी न कभी पहले रात, लिख जिनसे क़सीदे लिखे थे वो फेंक दे क़लम/ फिर ख़ूने दिल से

सच्चे दिल की शिफात लिख।"

जुलाई 2014 से नायिका पारुल सिंह तकलीफ़ में है। साँस की तकलीफ़ है, चक्कर आते हैं, सूजन है, बाल गिरते हैं, बेहोशी सा भी कुछ है। डॉ. इसे पैनिक अटैक कह स्ट्रैस और डिप्रेशन की दवाई देते रहते हैं, ख़ुश रहने के लिए कहते हैं और रोग बढ़ता जाता है। सितंबर 2017 की इकोकार्डियोग्राफ़ी बताती है कि दिल का एक वॉल्व बुरी तरह लीक कर रहा है और सर्जन ही बताएगा कि ओपन हार्ट सर्जरी करके इस वॉल्व की मरम्मत करनी है या इसे बदलना है। सर्जरी के लिए वह नेशनल हार्ट इंस्टीट्यूट, दिल्ली में दाखिल होती है। पता चलता है कि देर हो जाने के कारण वॉल्व रिपेयर का ऑप्शन नहीं रहा। अब एनिमल टिशू से बना मकेनिकल वॉल्व लगेगा।

पन्द्रह परिच्छेदों का यह संस्मरणात्मक उपन्यास रोगी के जीवट की, साहस की कहानी है। स्मृतियों से आच्छन्न पूर्वदीप्ति शैली ने, गीत- गजल- शेर ने, अतीत के रोचक प्रसंगों ने, परामनोविज्ञान की अलौकिक अनुभूतियों ने दुख की इस गाथा में साहित्य रस का सानुपातिक मिश्रण कर दिया है। 'ज़िंदगी के युद्ध की रूमानी कहानी' में पंकज सुबीर लिखते हैं–

"यह किताब लड़ना नहीं सिखाती, बल्कि आनंद के साथ लड़ना सिखाती है। ....जो कुछ हो रहा है, उस पर यदि आपका वश नहीं है, तो उसका आनंद लेना चाहिए। यह दुख की कहानी है, मगर इसमें दुख कहीं नहीं है। दुख अगर इस कहानी को पढ़ ले तो स्वयं हैरत में पड़ जाए कि मेरी कहानी में मुझे ही नगण्य कर देने वाला कौन लेखक है।"

यह छह-सात घंटे की ओपेन-हार्ट-सर्जरी है। बाद में ढेरों मशीनों, ऑक्सीजन मास्क, कई तरह के दर्द, जागते रहने, लंबी साँस लेने के आदेश हैं। रोगी एक-एक घूँट पानी के लिए तड़पता है और जब नारियल पानी मिलता है, तो लगता है मानों ब्रह्मभोज मिल गया। हृदय की शल्य चिकित्सा के साथ मृत्युभय का वह पक्ष जुड़ा है, जो व्यक्ति के अपनों के प्रति मोह को पहले ही समाप्त कर देता है। यह आई. सी. क्यू. है। सब व्यस्त हैं- मरीज कराहने में और नर्स डॉक्टर तीमारदारी में। अनेक डॉक्टरों का ज़िक्र है– कार्डियक सर्जन डॉ. विकास अग्रवाल, सहायक डॉ. अमिता यादव, अनेस्थेटिस्ट डॉ. रचिता धवन, डॉ. गुलिस्ताँ, फिज़िओथैरेपिस्ट। नर्स संगमा, कृष्णा, मेल नर्स, कैंटीन के लोग भी हैं। माँ, पापा, पति बी. वी. और मित्रगण हैं। सुदेश जी, मुरादाबाद का चौकी इंचार्ज धोरासिंह जैसे अन्य रोगी हैं। दवाइयों के साइड इफ़ेक्ट्स, एनेस्थीसिया, दर्द निवारक दवाएँ, मसल्स रिलेक्सेंट्स आदि मिलकर अनेक परेशानियाँ उत्पन्न कर रहे हैं।

नेशनल हार्ट इंस्टीट्यूट नई दिल्ली की आई. सी. क्यू. में पड़ी नायिका पारुल का संवेदनशील मन वस्तु बनने से विद्रोह कर रहा है। उसके सर्जन डॉक्टर विकास हैंडसम हैं, आत्मविश्वास और गर्व से भरपूर हैं। दृष्टि सपाट, सर्जरी पर पूरा फोकस, रोगी के बारे में सब कुछ कंठस्थ, सिनसियर, आर्गनाइज़्ड, लंबे-ऊँचे, रोबोटिक। उन का दौड़ता हुआ सा हृदयहीन, मकैनिकल क़ाफ़िला दनदनाता हुआ आता है। उनके बोलने का लहजा सपाट सा है। सर्जन और रोगी का अद्भुत रिश्ता है- वह डॉक्टर के लिए मात्र एक रोगी है और डॉक्टर रोगी के लिए जीवन दाता, भगवान, खेवनहार है। पारुल उनमें अपनापन ढूँढ़ती है। लेकिन डॉक्टर को मरीज़ का उत्तर या बात सुनने की आदत ही नहीं। मरीज़ सिर्फ मरीज़ है, उसका कोई रुतबा नहीं, वह शारीरिक ही नहीं मानसिक रूप में भी अनेक चुनौतियों से नित्य जूझता है। क्या मरीज़ का कोई आत्म सम्मान नहीं होता? मृत्यु और जीवन के बीच झूल रही पारुल अपने डॉक्टर के गले लगना चाहती है। लेकिन डॉक्टर रोबोट सा व्यक्तित्व लिए है। समझिए कि मरीज़ का भी वस्तुकरण हो चुका है। उसे वार्ड से आई. सी. यू. अथवा आई. सी. यू. से वार्ड में भेजा नहीं जाता, हैंड ओवर किया जाता है। उसे आई. सी. यू. एक सोलो ट्रिप सा, प्रवास सा लगता है। भले ही मानसिक तौर पर पूरा परिवार आपके साथ हो, लेकिन शारीरिक स्तर पर आप अकेले ही होते हो। ऐसे में फिज़ियोथेरेपिस्ट का संवेदनशील व्यवहार और पति का स्नेह तथा अपनापा पारुल के अंदर आत्मविश्वास उत्पन्न करते हैं। मृतप्राय: जीवट में संजीवनी भरते हैं। डॉ. अमिता तो हर रोगी के दर्द से तादात्म्य की क्षमता लिए है। बेटियों की स्मृति क्षमताबोध देती है। सर्जन के रूखे और अपमानजनक व्यवहार के बाद पारुल को पति बी. वी. का आना ऐसे लगता है जैसे किसी मेले में अकेले खोये हुये व्यक्ति को कोई अपना मिल गया हो, जैसे चारों ओर कोई ख़ुशबू फैल गई हो।

फ्लैश बैक, पुरानी स्मृतियाँ, अतीत की यात्रा पठनीयता में रोचकता भरते हैं। आई. सी. यू. में प्यास की तीव्रता पारुल को दशकों पूर्व की उस यात्रा पर ले जाती है, जब दिल्ली से हल्द्वानी जाते लैंड स्लाइड के कारण बस रुकी थी। वह नाशपतियाँ तोड़ कर लाई थी, बहुत प्यास लगी थी और बोतल में पानी देख वह प्रसन्न भी हुई थी और विस्मित भी। ऑपरेशन थिएटर में पारुल बड़ी बेटी की डिलीवरी के समय यानी तेईस की उम्र में सात माह के बाद बाद हुये सिज़ेरियन की स्मृतियों में चक्कर लगाने लगती है। जब बार-बार लंबी साँस लेने के लिए कहा जाता है तो वह अपने बचपन में पहुँच जाती है। जब वह और मनोज साँसे रोक कर साँसें बचाने का जुगाड़ किया करते थे। अपने शरीर की बनावट पर यह सुनने पर कि ब्रेस्ट भारी होने के कारण फेफड़े ठीक से काम नहीं कर रहे, ज़ख्म भर नही रहा, वह आहत होती है, और वय: संधि काल की स्कूली स्मृतियाँ ताज़ा हो आती हैं, तब भी वक्ष के इसी भारीपन ने उसे वर्षों परेशानी में डाले रखा था। नींद में अस्पताल की सीढ़ियाँ पारूल को दशकों पूर्व की कॉलेज की सीढ़ियों तक ले जाती है, जब वह मेरठ के रघुनाथ कॉलेज में बी. एस. सी. की मस्त किशोर छात्रा थी। लिखती हैं-

"मेहरबाँ हो के बुला लो
मुझे चाहो जिस वक़्त
मैं गया वक़्त नहीं हूँ
कि फिर आ भी न सकूँ।"

उपन्यास में कुल 15 परिच्छेद हैं और हर परिच्छेद का आरंभ एक शेर से होता है-

"हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी
कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले

बहुत निकले मेरे अरमान
लेकिन फिर भी कम निकले।"

गहन असहनीय दर्द में भी पारुल मन ही मन गीत गाती रहती है, क्योंकि गानों में डूबा होना दर्द में डूबने से ज़्यादा अच्छा है। दर्द से जूझने के लिए वह म्यूज़िक थेरेपी का प्रयोग करती है। रेडियो से साहिर के गीतों की आवाजें उसे बाँधती हैं।

मरीज का डॉ./नर्स से रिश्ता एक विश्वास का होता है। जैसे पारुल डॉ. विकास में अपनापा ढूँढ़ती है, वैसे ही रोगी धोरासिंह पर एक नर्स का 'हुन्न बोलो' जादू कर रहा है- "जादू था जो आदिकाल से किसी भी स्त्री के समक्ष पुरुष को बेचारा, निरुपाय बनाता आया है। पुरुष स्वभावत: स्त्री के किसी भी रूप के समक्ष आशा भरी निगाहों से ही देखता है। उसे लगता है उसी के पास हल है उसकी सारी समस्याओं का। भरण-पोषण की दुरूह कँटीली धूप सी ज़िम्मेदारियों से व्याकुल वह थोडी नर्म छाँव सदा अपने जीवन में वह स्त्रियों में ही तलाशता व पाता है। पुरुष स्वभाव अपनी भावनाओं को प्रकट न कर पाने के लिए शापित है, ऐसे में स्त्री चाहे किसी भी रिश्ते में हो, जब उसका अनकहा समझती है, तो उसके समक्ष आँख मूँद आराम पाता है।"

उपन्यास में परामनोविज्ञान के अनेक प्रसंग मिलते हैं। परिच्छेद तीन में सर्जरी के लिए पारुल को बेसुध किया जा चुका है। उसका दिल और फेफड़े बंद पड़े हैं। उन्हें 'पी. सी. बी.' तकनीक यानी मशीनों से चालू रखा हुआ है। ऐसे में एक परा मनोवैज्ञानिक शक्ति पारुल की आत्मा को अस्पताल के प्रथम तल पर बैठे परिजनों के पास ले आती है। वह पति की अंतरचेतना से सामंजस्य स्थापित कर उसे पढ़ने लगती है। परिच्छेद 6 में आया परामनोविज्ञान का प्रसंग मृत्यु भय से जुड़ा है- "अचानक मुझे ऐसा लगा कि मुझ से यह धरती छूट रही है अब मैं इस ब्रह्मांड पर वापिस नहीं आऊँगी, पता नहीं कहाँ चली जाऊँगी। नीची छूटती जाती धरती से दूर होते जाना देख रही थी।"

परिच्छेद 12 में बेचैन पारूल हठधर्मी डॉ. विकास के आदेश से परेशान हो माँ को याद करती है और तभी डॉक्टर का उसके हक़ में निर्णय आ जाता है और उसे लगता है माँ ने ही डॉक्टर की अंतश्चेतना को प्रभावित कर यह निर्णय करवाया है। पारुल का विश्वास है कि "माँ के साथ हम टेलीपैथी से जुड़े होते हैं।" 175

पारुल सिंह में स्त्री सुलभ नज़ाकत और सौंदर्यबोध है। वह सर्जरी के लिए अस्पताल भी आती है तो जीन्स, पुलओवर और पूरे मेकअप के साथ। सर्जरी के समय भी उसे शरीर पर रह जाने वाले निशान की चिंता है। शरीर उसका प्लम्पी सा है। लेकिन वह स्मार्ट है। पति को भी वेषभूषा से स्मार्ट बनाए रखती है और उसे डॉक्टर भी स्मार्ट ही चाहिए। नाज़ुक इतनी थी कि चीर- फाड़ के भय से वह शादी के बाद बच्चों को जन्म ही नहीं देना चाहती थी और नियति देखो कि हृदय पर छुरियाँ चलवाने के लिए अभिशप्त है। अस्पताल में भी देखती है कि डॉक्टर नीले रंग का ब्लेज़र या कोट, सफ़ेद शर्ट, नीली टाई पहनते हैं। नर्सें हरे रंग की पट्टियों वाले स्क्रब, कैनटीन का स्टाफ सफ़ेद टोपी, सफ़ेद शर्ट, काली जैकेट पहनता है।

कहते हैं कि भगवान ने स्त्री को बड़ी फुर्सत से बनाया है, लेकिन उसके जीवन में फुर्सत के पल लिखना ही भूल गया है। कामकाजी स्त्री को तो मशीन ही मान लो। स्त्री भले ही डॉक्टर हो, उसे घर जाकर भी, रविवार को भी काम करना होता है। डॉ. रचिता को अस्पताल का काम थकान नहीं देता, घर का काम – सफाई, कपड़े, खाना- जैसे थैंकलैस काम थका देते हैं और पति आम पतियों की तरह न बाहर से काम करवाने देते हैं, न ढंग की मशीन लेने देते हैं और न स्वयं कोई मदद करवाते हैं। नायिका की कॉलेज हॉस्टल की सबसे मेघावी सहपाठिन अनीता की भी बात करती है। पढ़ाई छूटी, सात बहनों के भाई से शादी हुई और वह हाउस वाइफ़ बनकर रह गई।

पल्मोनलाज़िस्ट, लंग्स का एसपिरेशन, एनेस्थेटिस्ट, इन्सिजन, एंजीओग्राफी, एस्टर्नम, रूमेटिक हार्ट डिज़ीज़, कार्डियोपलमोनरी बाईपास, परफ्यूजनिस्ट, माइट्रल वॉल्व, मिनिमली इनवेसिव सर्जरी, परफ्यूजनिस्ट, माइल्ड ट्रायकस्पिड, कैल्सिफिकेशन, कैथेटर जैसे अनेकानेक मेडिकल के शब्द उपन्यास में समाहित हैं।

उपन्यास में आई सूत्रात्मकता लेखिका के प्रौढ़ चिंतन का परिणाम है। जैसे-

1. बात लफ़्ज़ों के बिना कही जाती है, वो ही सबसे ज़्यादा महत्त्व की होती है। वो इस दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत बात होती है।

2. दो तरह की मुस्कुराहटें होती हैं अमूमन। एक में तो चेहरा ही मुसकुराता है केवल, और दूसरी मुस्कुराहट वो होती है जिसमें चेहरे के साथ आँखें भी मुस्कुराती हैं।

3. बीमारी के साथ मर जाना बीमारी को ख़त्म करने का छठा और आसान रास्ता था।

4. जितनी अपनी हिम्मत बढ़ाते हैं ऊपर वाला उतने ही बड़े इम्तिहान लेने लगता है।

5. कितना अभिमानी होता है इंसान, सामने मौत खड़ी हो तो भी उसे अपने अहं की रखवाली ज़रूरी लगती है।

मम्मी के कुछ विश्वास- अंधविश्वास भी हैं। जैसे नाम लेने से लोग पास और पास आ जाते हैं। मरे हुए लोग सिरहाने आ बैठते हैं तो मौत आती है। पौराणिक प्रतीक भी आए हैं, जैसे- कामधेनु के सहारे वैतरनी पार करने की जुगत।

'ऐ वहशते दिल क्या करूँ' उपन्यास स्मृति व्यापार नहीं है। जो तन मन पर गुज़ारा उस भोगे गए दर्द का रचनात्मक, साहित्यिक ब्यौरा है। कहानी प्रेम-मुहब्बत की नहीं है, सामाजिक- सांस्कृतिक, प्रशासनिक, राजनैतिक विघटन की नहीं है, यह जीवन का आम, लेकिन अछूता पक्ष है।

उपन्यास कुछ ईमानदार प्रश्न छोड़ता है कि डॉक्टर की सहृदयता रोगी का आधा दर्द हर लेती है। रोगी का वस्तुकरण उसे स्वस्थ होने नहीं देता। कामकाजी स्त्री को पति का सहयोग अवश्य मिलना चाहिए। चूल्हा चौका स्त्री की प्रतिभा को राख़ कर देता है। उपन्यास अनास्था से आस्था, नकारात्मकता से सकारात्मकता, मृत्युबोध से जीवन बोध की यात्रा है। लेखिका ने अद्‌भुत कथाकौशल से

ओपन हार्ट सर्जरी वाले रोगी की वेदनाओं, मन: स्थितियों का लेखा जोखा, अपनी लेखनी में पिरोया है। यहाँ अस्पताल के इंटैन्सिव केयर सेंटर के मेडिकल स्टाफ और मरीजों का मुँह बोलते चित्र हैं, जिन्हें डॉक्टरों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

यह संस्मरणात्मक उपन्यास है। पारुलसिंह ने आसन्न अतीत के सुरक्षित पड़े अँधेरे में प्रवेश किया है। जिये हुए अतीत को पुन: जिया है। हिन्दी में संस्मरणात्मक उपन्यासों की शुरुआत निराला के 'कुल्लीभाट' से मानी गई है। रामदेव धुरंधर का 'अपने रास्ते का मुसाफ़िर' आत्म संस्मरणात्मक उपन्यास है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' भी आत्मकथात्मक है। मृदुला गर्ग के 'ये नायाब औरतें' में यादों के पेंडोरा बॉक्स से निकाले गए नायाब क़िस्से हैं।

उपन्यास का अन्तिम परिच्छेद इसके संस्मरणात्मक रूप की एक बार फिर पुष्टि करता है। यहाँ पुस्तक मेला है। पंकज सुबीर, नीरज गोस्वामी, शहरयार, सन्नी जैसे साहित्यकारों और साहित्यप्रेमियों की चर्चा है।

000

जीवन की सार्थक फ़िलासफ़ी

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

पारुल सिंह मूलत: एक कवियत्री हैं, यह बात उनके पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाती है। 'ऐ वहशते-दिल क्या करूँ' उनका प्रथम संस्मरणात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास का विषय दिल की सर्जरी के समय और बाद में हस्पताल में बिताए कुछ दिनों का लेखा-जोखा है। मज़े की बात यह है कि इस उपन्यास का पात्र कोई काल्पनिक, पौराणिक, इतिहासिक, उत्तर-आधुनिक या किसी वाद-विमर्श के दायरे में से नहीं है। सच तो यह है कि ये 'बाय वन गैट वन फ्री' वाली स्थिति जैसा है, जिसमें लेखिका स्वयं ही केंद्रीय पात्र के रूप में विराजमान है, हाड़-माँस की जीती-जागती महिला। पहले हैरानी हुई कि सर्जरी संबंधी संस्मरणों में क्या लिखा होगा, सर्जरी से पहले की पीड़ा, बाद के कष्ट, दुख-तकलीफ़ें...। हस्पतालों का बुरा हाल, डाक्टर-नर्सों की भागमभाग, वहाँ फैली अव्यवस्था, गंदगी, कर्मचारियों की परिवारजनों व संबंधियों संग नुक्ताचीनी और सबसे बढ़ कर वहाँ का रुदन भरा माहौल व चिल्लम-पौं! हाँ, यदि यह कोई सरकारी हस्पताल होता तो उपरोक्त वर्णित सब कुछ होता परन्तु यह दक्षिणी का दिल्ली का एक प्रतिष्ठित हस्पताल है, जिसकी गुणवत्ता कई दशकों से बरकरार है, इसलिए ऐसा कुछ नहीं था।

पारुल अपनी बीमारी की शुरुआत और उसकी मुख्य-मुख्य घटनाओं के द्वारा एक प्रकार से इस उपन्यास की भूमिका बाँध देती है। नपे-तुले शब्दों में, मुख्य बात पर फोकस करती है। इससे अंदाज़ा हो जाता है कि लेखिका के पास रचनाशील कौशल है। उसे मालूम है, कहाँ उसे विस्तार देना है और कहाँ बात को संक्षेप में समेट देना है। वह ओपन हार्ट सर्जरी के बहाने, पाठकों के सामने अपने आप को खोल कर प्रस्तुत कर देती है। हार्ट की सर्जरी करते हुए, उसके डाक्टरों ने उसका हार्ट खोल कर, लीक हो रहे वाल्व को बदला और इधर लेखिका ने इस का फ़ायदा उठाते हुए, सर्जरी के बाद आई.सी.यू और बाद में वार्ड के चंद दिनों के अनुभव साझा करते-करते, अपने जीवन, बचपन, स्कूल-कॉलेज व विवाहित जीवन की कुछ-कुछ टुकड़ियों को पाठकों सामने 'लीक' (उजागर) कर दिया। जिससे कुल मिलाकर जो तस्वीर बनी, उससे लेखिका के पारिवारिक चरित्रों के गृहिणी, पत्नी, माँ, लेखिका, बेटी, मित्र के विभिन्न रूपों के साथ उसका व्यक्तित्व, स्वभाव, संवेदनशीलता और जीवन को जानने-समझने का नज़रिया सामने आया।

लेखिका ने सर्जरी के लिए ओटी में जाने के साथ ही पाठकों को अपने साथ बाँध लिया। एनेस्थेसिया के प्रभाव में चेतनाशून्य होने से पहले उसने अवचेतन रूप से सारे हस्तपताल का चक्कर लगाया और लॉज में प्रतीक्षा में उदास बैठे माँ-बाप और पति के साथ अनेक बातें कर, उन्हें दिलासा दिया। उसने अपने अंर्तमन से देख लिया कि उसके परिवारवाले किस स्थिति में वहाँ बैठे क्या सोच रहे होंगे। फिर उसने डाक्टरों के सामने समर्पण कर दिया।

आई.सी.यू के उन दो-चार दिनों जिसे उसने मानसिक पर्यटन और 'सोलो ट्रिप' का नाम दिया। जहाँ उसके करने के लिए वैसे तो कोई काम नहीं था, वह पूरी तरह से डाक्टरों व नर्सें के साथ बहुत सारी टयूबों-नालियों व मशीनों के हवाले थी। उसका सदुपयोग उसने मानसिक पर्यटन करते हुए किया, जब उसके पास वक़्त ही वक़्त था। वह कुछ भी सोचने के लिए आज़ाद थी। उसकी सोच ने अपने पूरे जीवन को एक चक्र रूप में फिर से खँगाल लिया। हस्पताल में सभी ने उसकी पूरी देखभाल भी की परन्तु दो दिन बाद उससे कह दिया गया कि भई, डॉक्टर ने तुम्हें बचा लिया है, अब अपने आप को ख़ुद सँभालो। सारी उम्र डॉक्टर व नर्सें उसके साथ-साथ नहीं रहेंगे। उसे स्वयं को मज़बूत करने के लिए लंबी-लंबी साँसें लेना, भाप लेना, फिज़ियो थैरेपी के लिए उठना-बैठना पड़ेगा। इसमें न पानी पीने की इजाज़त थी और न बार-बार सोने की। अत्यन्त प्यास के समय उस आधे गिलास पानी की अहमीयत और बेसुध सो जाना बहुत बड़े सुखों में शुमार होने के बारे में पता लगा।

रचना के केंद्र में लेखिका स्वयं अवश्य है परन्तु उसने आई.सी. यू. के अन्य सभी मरीज़ों की भी जानकारी, उनके दैनिक क्रिया-कलापों, उनकी बीमारी के बारे में भी बताया। छोटी-छोटी घटनाओं से, कुछ अस्पष्ट वाक्यों से उनके स्वभावों को भाँप लिया। डोरा सिंह या धोरा सिंह की हठधर्मिता, सुदेश जी का जीवन से एकदम किनारा कर लेना। एक युवक का सर्जरी से पहले घबरा जाना। इससे पता लगता है कि लेखिका कहीं भी, कभी भी स्व-केंद्रित स्वभाव की नहीं रही, तभी उसने न केवल आई.सी. यू के उस समय मौजूद मरीज़ों से पाठकों का परिचय करवाया बल्कि जब कभी भी अपने जीवन के किसी हिस्से को खोला तो उसमें माँ-बाप के साथ, अध्यापक, प्रिंसीपल, सखियाँ, सीनियर सभी शामिल होते गए। लेखिका द्वारा खोली खिड़की से अनजाने में ही पाठकों को अस्सी के दशक के

स्कूल-कॉलेजों की एक झलक मिल गई। क़स्बेनुमा छोटे स्थान पर रहते हुए भी, डाक्टर पिता और दूरअंदेश माँ के साये में, वह आत्म-विश्वास से लबरेज़ होती गई। हालाँकि अपनी सोच से अधिक समझदारी दिखाते हुए उसने सखा मनोज के साथ साँसों को बचाने का एक नायाब तरीक़ा भी खोज निकाला ताकि मृत्यु के समय अपनी आख़िरी बात कहने पर उसे साँसों की कमी न हो, पर उसे मालूम नहीं था कि ये साँसें मृत्यु से बहुत पहले ही उसके साथ आँख-मिचौली खेलने लगेंगी और इन्हें बचाए रखने के लिए उसे डाक्टरों के साथ स्वयं भी बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। सर्जरी की शरीरिक पीड़ा से बचने के लिए उसे मर जाना बेहतर लगा, जो अच्छे डॉक्टरों, चिकित्सीय देखभाल से संभव नहीं हो पाया। तभी तो पाठकों को इस संदेश का व्यावहारिक स्वरूप देखने को मिला कि 'आत्मबल से मौत को भी हराया जा सकता है।'

इसमें संदेह नहीं, लेखिका न केवल बहुत अच्छी 'ऑब्ज़र्वर' है बल्कि उसकी याददाशत भी अच्छी है। तभी स्वयं तकलीफ़ में होने के बावजूद उसने नर्सों, डाक्टरों, वार्ड ब्यॉज़, खाना पहुँचाने वाले कर्मचारियों और मरीज़ों का पल-पल का हिसाब रखा। वह अपने चेतन मन से जान पायी, नर्सों, डाक्टरों के पास अपने जीने के लिए वक्त नहीं। सारा समय एक टाँग से दूसरी टाँग पर वे सभी इधर-भागते रहते हैं। इसी भागमभाग के कारण डाक्टरों के लिए उनके मरीज़ 'ऑब्जेक्ट' बन कर रह जाते है। कुछ वाक्यों का इस्तेमाल केवल औपचारिकतावश किया जाता है। मरीज की ओर से उसके जवाब की प्रतीक्षा किए बिना आगे कदम पर बढ़ जाना, उनकी व्यवस्तता की निशानी है परन्तु किसी की भी ग़लती को न बख्शने वाली लेखिका ने अपने डॉक्टर की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए भी उसके स्वभाव के रुखेपन व डाँट को नज़रअंदाज़ नहीं किया। शायद इसी कारण पुस्तक के फ्लैप में उनके प्रिय डॉक्टर ने भी इस बात को स्वीकार किया कि उसे मरीजों के सामने और भी बेहतर ढंग से पेश आना चाहिए। कई बार मरीज की बेहतरी के लिए ही कुछ सख्ती बरतनी पड़ती है पर जैसे डॉक्टर अमिता हर हाल में मुस्कराहट का पल्ला नहीं छोड़ती, वही संगमा जैसी नर्स अवसर अनुसार शतरंज की चाल देती। हठधर्मी धोरा सिंह को भी उनकी छोटी सी नर्स कैसे नियंत्रित कर लेती थी और वह उसका हर कहा चुपचाप मान लेते थे। कामकाजी स्त्रियाँ के लिए नौकरी और गृहस्थी को सँभालना कितना मुश्किल होता है। विडंबना यह है कि भारत में घर के सभी काम उसे ही निपटाने हैं, भले वह डॉक्टर ही क्यों न हो। लेखिका और उसके पति का आपसी रिश्ता बहुत प्यारा सा है, दोनों बिना कहे एक-दूसरे को समझ लेते हैं। उनके आपसी रिश्ते द्वारा गृहस्थ जीवन की वास्तविकता सामने आती ही हैं कि पति-पत्नी के रूप में बहस और लड़ाई करना उनके अधिकार-क्षेत्र में आता है परन्तु जब वे माँ-बाप की भूमिका में आते हैं तो वे एक अलग पार्टी न हो कर एक इकाई होते हैं।

रचना की लेखन-शैली की बात करें तो वह अत्यन्त प्रभावित करती है। हर अध्याय एक शेर से स्वागत करता दरवाज़े पर खड़ा मिलता है। उसी से होकर पाठक उस अध्याय में प्रवेश करता है। बरगद की टहनियों व पत्तों से अपनी पसंद के एक-एक करके कई पुराने गीत उतार कर, वह अपने आप को उनमें डुबो लेने का हुनर जानती है। इन गीतों के चलते ही वह कालेज के होस्टल में भी सखियाँ बनाने में कामयाब हो गई थी। इसे उपन्यास कहा जाए....मैं सोच रही हूँ क्योंकि कल्पनाशीलता तो कहीं भी नहीं है। यह संस्मरणात्मक रचना ज़रूर है। एकाध हफ्ते के अपने हस्पताली भ्रमण से लेखिका यह संदेश अवश्य देना चाहती है कि हमें किसलिए जीना है और क्यों? क्या धोरा सिंह की तरह अपनी मर्ज़ी का जीवन जीने के लिए वह हस्पताल वालों से नाराज़ होना क्योंकि वह यहाँ से निकल कर, अपने मन की करना चाहता है। या लेखिका की तरह कि तकलीफ़ें झेलने से अच्छा है, मर ही जाओ। पर नहीं, ये इतने डाक्टर, नर्सें, उनके परिवारजन, स्नेही उनका जीवन बचाने के लिए रात-दिन एक किए हुए हैं या अपनी उन दो बेटियों के लिए, जिनमें से एक को हॉस्टल में रखा है और छोटी को बहन के पास। अपने उन माँ-बाप के बारे में सोचना, जो उसके दिल कर हर बात को दूर बैठे ही महसूस कर लेते हैं। इसलिए कहने के लिए किसी भी व्यक्ति का जीवन उसका अपना होता है, परन्तु वह नितांत अकेला नहीं होता, उसके जीवन पर उसके स्नेहियों और परिवारजनों का भी उतना ही हक़ होता है।

लेखिका अपने जीवन व बीमारी द्वारा पाठकों की जीवन की सार्थकता से पहचान करवाती है। आख़िर ऐसे पल सभी के जीवन में कभी न कभी आते ही हैं, यह बात अलग है कि हर कोई इन मोहतरमा द्वारा इन्हें आनंद के पलों तरह इन्जॉए भले न कर पाए मगर जीवन की अहमीयत को तो अवश्य स्वीकार करेगा ही। लेखिका के चुलबुलेपन और मुस्कराहट के साथ, उसकी गंभीर सोच का स्वागत...!

000

दर्द को सहजता से लिख दिया है
आकाश माथुर

'ऐसे ही मेरी पुरखिनों ने सालों-साल हाथ उठा-उठाकर दुआएँ माँग जो बूँद-बूँद आज़ादी मेरे लिए उतारी है क्या मैं समझती हूँ उसकी क़ीमत।' बलिदान किसी भी तरह का हो लोग उसकी क़ीमत कम ही समझ पाते हैं। बलिदान के बाद जो अर्जित होता है। उसके सुख भोगने में हम बलिदान देने वाले को भूल जाते हैं। उसके संघर्ष को भूल जाते हैं। याद रहता है तो बस भोगना, शायद कम ही लोग इसकी कीमत समझ पाते हैं, उनके पुरखों के बलिदान की।

यह लिखती हैं पारुल सिंह जी। वो अपनी नए संस्मरणात्मक उपन्यास 'ऐ वहशते-दिल क्या करूँ' में ऐसी कई बातें कह जाती हैं। वो ये कह कर रुकती नहीं हैं उन बातों पर। उन पर पाठक को केंद्रित भी नहीं करतीं। वो बस कह कर निकल जाती हैं। इस किताब में कई बातें कह कर निकल जाना मुझे बहुत आकर्षक लगा। ख़ुद की गणवेश की लड़ाई हो, वो पूरा सुनाती हैं। सुनाने के बाद हिप-हिप हुर्रे नहीं चिल्लातीं। वो अपनी बात ख़त्म करती हैं और आगे चल देती हैं। उसके बाद वे अपनी एक महिला डॉक्टर की ज़िक्र करती हैं।

बताती हैं कि वो किस तरह मरीज़ों के साथ काम करती हैं। दिन भर मेहनत करती हैं। उसके बाद घर जाकर ख़ुद कपड़े धोती हैं। खाना पकाती हैं। ये उनकी पीड़ा है। आदमी कमाकर थक जाता है और महिला कमा कर भी नहीं थकती। इस मुद्दे को वे कहती हैं और आगे निकल जाती हैं। आधुनिक स्त्री जो आज़ाद दिखती है, लेकिन आधुनिक स्त्री की आधुनिक समस्याएँ भी अलग तरह की हैं। जिनकी चर्चा भी बेबाकी से की गई। हर बात को उन्होंने बहुत ही बेहतर ढंग से रखा और पकड़ा नहीं। बस छोड़ देना ही मुझे भा गया।

'ऐ वहशते-दिल क्या करूँ' पारुल जी की ख़ुद की कहानी है। जो उनकी दिल की सर्जरी की कहानी है। जिसके बहाने वे स्त्री जीवन के कई रंग दिखा गईं। अपनी कहानी को इस तरह लिख पाना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि इसमें अपने जीवन के कई राज़ खुल जाते हैं, लेकिन उन्होंने वह खुल कर लिखा। जीवन को लेकर अरुचि और फिर जीने का उत्साह दोनों के बीच का अंतर और उन दोनों ही परिस्थितियों में जो अंतर द्वंद्व चलता है उसे बहुत ही बारीकी से अध्ययन कर लिखा गया है। अध्ययन की बात निकली है तो पारुल जी ने डॉक्टरों की बात को उनकी भाषा और नर्स की बात को उन्हीं की भाषा में लिखा है। उनके प्रोफ़ेशन को समझ उन्हीं की तरह लिखा है। उनकी बारीकियों को बहुत ही पास जाकर समझा। मुझे लगता है कि उनके जीने की इच्छा जब ख़त्म हुई उस समय भी साहित्यकार तो ज़िंदा था, मतलब ज़िंदादिल था, जैसे वो हमेशा रहता है। वो अपना काम कर रहा था। वो अपने काम में लगा रहा। उसी का नतीजा है कि इस किताब में कई ऐसी बातें शामिल हो पाई जो अवसाद के समय याद नहीं रखी जा सकतीं।

उनका छोटा दिल जो डॉक्टरों के लिए छोटा था, पर सच में पूरी किताब पढ़ने पर बहुत बड़ा लगता है। उसमें अपने पास के पलंग के मरीज सुदेश के लिए भी धड़कता है। ये अवसाद के समय में किसी के लिए नहीं धड़क रहा था। वह भी साहित्य के लिए काम कर रहा था। इससे मुझे लगता है कि शायद उनके पास दो दिल हैं। जिसके बारे में उन्हें भी नहीं पता। उनके पास एक साहित्यकार वाला दिल अलग है। जिसके वाल्व भी बिल्कुल ठीक हैं। इस तक पाठक पहुँचते हैं, कथा और कविता के पात्र पहुँचते हैं, पर बीमारियों नहीं पहुँचती। ये पूरी तरह स्वस्थ है। इसी लिए इतना अच्छा इसने पारुल जी से लिखवा लिया।

जितनी महिलाओं की बात उपन्यास में है। उतनी ही बीवी और अपने पिता के ज़रिये वे पुरुषों का पक्ष भी रखती रहीं और उनकी मुख़ालफ़त का ज़िक्र भी करती हैं। पूरा उपन्यास एक साँस में पढ़ा जा सकता है, क्योंकि मन लगा रहेगा। किताब को रखने का ज़रा भी मन नहीं होगा। कहीं भी रुकने का मन नहीं करता। भूत और वर्तमान के बीच के पुल इतने अच्छे से तैयार किए गए हैं कि पता नहीं चलता और असहज भी नहीं लगता। कब वर्तमान से भूतकाल की यात्रा शुरू हो जाती है और हम रम भी जाते हैं। फिर जब हम वर्तमान में वापस आते हैं तो असहज नहीं लगता।

इस उपन्यास में पारुल जी ने अपने दर्द को भी बहुत सहजता से लिखा है, जिसका पाठक को एहसास तो होता है, पर वो कराहता नहीं। अज़ीज़ ऐजाज़ का एक शेर याद आता है 'जैसा दर्द हो वैसा मंज़र होता है, मौसम तो इंसान के अंदर होता है।' वे पाठक के अंदर का मौसम बदलने में कामयाब रहीं, लेकिन उस मौसम में छोड़कर भागी नहीं। वे उसे फिर दूसरे और तीसरे मौसम में ले गईं। सर्जरी की कहानी में जीवन का हर रंग दिखाने में पारुल जी कामयाब रहीं।

उपन्यास पढ़ते समय उनका चेहरा सामने रहा, ब्रजवीर जी भी दिखाई दिए और बाक़ी पात्र मन ने तैयार किए, लेकिन वे आस-पास के लगे। जैसे पारुल जी अपने वीडियो में बोलती हैं और श्रोताओं को बाँधे रखती हैं। वैसे ही वो पाठक को भी बाँधे रखने में सफल रहीं। इस सफलता के लिए उन्हें बहुत बधाई।

अंत जो जीवन के रण के साथ ख़त्म किया है वह भी रौचक है। अब पारुल जी पद्य और गद्य दोनों लिखें और लिखती रहें।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 11 मार्च 2024
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

केंद्र में पुस्तक

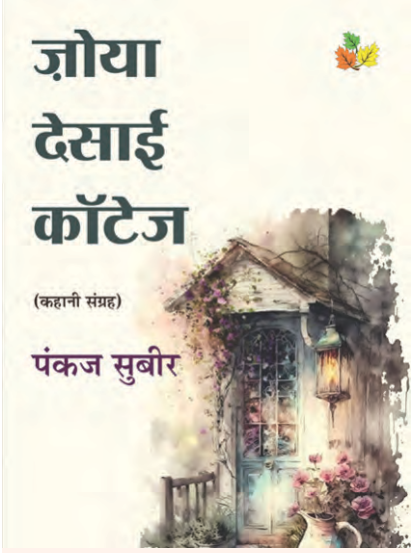

(कहानी संग्रह)

ज़ोया देसाई कॉटेज

समीक्षक : प्रकाश कान्त, जसविन्दर कौर बिन्द्रा, रमेश शर्मा

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

प्रकाश कान्त
155 एलआईजी, मुखर्जी नगर, देवास 455011, मप्र
मोबाइल 9407416269
ईमेल- prak.kant@gmail.com

जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, पहली मंज़िल,
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली 110048
मोबाइल- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

रमेश शर्मा
92 श्रीकुंज, बोईरदादर, रायगढ़
छत्तीसगढ़ 496001
मोबाइल- 7722975017
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

आज के सचों का उत्खनन !

प्रकाश कान्त

पंकज सुबीर बड़ी रेंज के रचनाकार हैं। रेंज का यह बड़ापन विधाओं के स्तर पर तो दिखाई देता ही है, रचना के फ़लक के स्तर पर भी! 'ज़ोया देसाई कॉटेज' उनका नवीनतम कथा संग्रह है। जिसमें ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। कहानियों की अंतर्वस्तु के कोण से देखें तो उनकी कहानियों की रेंज शुरू से व्यापक रही है। अंतर्वस्तु के फ़लक का विस्तार उनकी कहानियों को महत्त्वपूर्ण बनाता है। प्रेम, प्रशासन, साम्प्रदायिक रिश्ते, राजनीति, लोक इत्यादि सभी कुछ उनकी कहानियों में मौजूद रहे हैं। समय के हिसाब से उनकी कथा-रचनाएँ इतिहास के ज्ञात-अज्ञात कोनों-कापरों से निकलकर बिल्कुल ताज़ा 'आज' तक चली आती हैं। इस सब को देखने के लिए उनके पास एक ख़ास तरह की तीखी रचना-दृष्टि है। जो बाजवक़्त वस्तुनिष्ठ भी रही है।

जैसे कि पहले भी कहा गया है, उनके यहाँ प्रेम के विविध कोणों को लेकर कई कहानियाँ हैं। इस संग्रह में 'डायरी में नील कुसुम', 'ज़ोया देसाई कॉटेज' जैसी कहानियाँ इसी तरह की कहानियाँ हैं। लेकिन, ये सिर्फ़ प्रेम कहानियाँ नहीं हैं। इनमें एक ख़ास तरह के उदात्त बोध की चमक भी है। ऐसी कहानियों में पंकज सिर्फ़ प्रेम पर ही नहीं रुक जाते। उसके अँधेरे, धुँधलके और रौशनी के पार भी जाते हैं। 'डायरी में नील कुसुम' में दलित-गैर दलित का प्रश्न एक ख़ास शक्ल में सामने आता है तो संग्रह की शीर्षक कहानी 'ज़ोया देसाई कॉटेज' में प्रेम का उदात्त रूप! जिसमें 'देह' भी है। लेकिन, उसके पार और आस-पास एक ख़ास तरह की गंध है! पृष्ठभूमि में वहाँ माण्डू है। रानी रूपमती का महल और रूपमती-बाज बहादुर की दु:खांत प्रेम कथा भी! पंकज सुबीर जिसके ज़रिये अपनी कहानी के प्रेम को विस्तार और गहराई देते हैं। बेशक, वहाँ देह एक तरह से आधार में है। देह और जिस्मानी ज़रूरतों के प्रश्न कुछ और कहानियों में भी है। वैसे देह के प्रश्न साहित्य सहित कई कलानुशासनों और अन्य क्षेत्रों में उठते रहे हैं। बल्कि, कहा जाना चाहिए कि इस मुद्दे पर एक किस्म की असमाप्त बहस रही है। संग्रह की कहानी

'खजुराहो' के केंद्र में यही बहस है। और स्त्री की तरफ़ से है। बहस की कुछ आवाज़ें सुनी हुई लग सकती हैं। चूँकि, बहस का ज़मीन खजुराहो है इसलिए स्वाभाविक रूप से उसमें अपनी स्थानीयता का गहरा असर है। कहानी अतृप्ति और दैहिक स्वतंत्रता के बीच कहीं है। जूली (कलेक्टर की कुतिया) और गोबर के लगभग आवारा कुत्ते के बीच भी देह है। हालाँकि, देह की ज़रूरत को प्रेम कथा कहा गया है। कहानी इस स्थिति में निहित प्रेम से आगे जाकर गोबर के 'होरी' (गोदान-प्रेमचंद) बनने की शुरुआत की कहानी भी बनने लगती है। सम्भवत: ये दो भिन्न कथाएँ हैं। हालाँकि, 'गोबर' के 'होरी' बनने का प्रश्न बुनियादी तौर पर एक आर्थिक और बड़ा प्रश्न है। उल्टा तो है ही! क्योंकि, 'गोदान' का गोबर शहर जाकर ब्याज पर पैसा देने लगता है जबकि होरी, महतो से सड़क मज़दूर होकर मृत्यु को प्राप्त होता है। वहाँ प्रशासन बीच में नहीं बल्कि 'महाजनी सभ्यता' और व्यवस्था है। गोबर तो इस कथा का अगला संकेत है। पंकज ने अपनी कहानी में मूल किसान कथा के सिक्वल और प्रिक्वल के बीच कहीं सिस्टम के प्रश्न को छूने की कोशिश की है और जूली-कालू की कथित प्रेम (दैहिक) कथा को उसके ज़रिये समझने की कोशिश हुई है। दो भिन्न मुद्दों के ज़रिये! पहले मुद्दे में एक ख़ास तरह का व्यंग्य भी है। जो 'जाल फेंक रे मछेरे' में दूसरी तरह उभरता है। सम्पन्न विधवा की सम्पत्ति के लिए विधवा के बेटी से अपने बेटे की शादी करवाने का जाल फेंकने की कोशिश कर रही सकीना ख़ुद जाल में तब उलझ जाती है जब बेटा विधवा की बेटी से शादी करने के बजाय उसकी माँ से शादी करने का निर्णय कर लेता है। कहानी एक ख़ास तरह का निरीह हास्य भी पैदा करती है। व्यंग्य की करुणा के भीतर!

पंकज अपनी कहानियों में समाजार्थिक प्रश्नों को लेकर सजग रहे हैं। समाजार्थिक शक्तियाँ उनकी कई कहानियों में प्रच्छन्न और प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय नज़र आती हैं। 'रामसरूप अकेला नहीं जाएगा' आर्थिक क्षेत्र में उभरे रोज़गार के उस ताज़ा प्रश्न को रेखांकित करनेवाली कहानी है जो विकास के ढोल-नगाड़ों के शोर के बीच अनसुना रह जाता है। नव आर्थिक चिंतक और विकास के सामगायक जिसे सुनना भी नहीं चाहते।

भारतीय समाज के कई स्तर हैं। एक स्तर पर गाँव-क़स्बों में लगभग खण्डहरनुमा शेष रहे 'संयुक्त परिवार' भी अभी दिखाई देते हैं। जिसमें स्त्री आज भी अपमानित और उपेक्षित है। पुरुष का दम्भ वहाँ भी फन उठाये फुफकार रहा है। सवर्ण उच्चवर्ग में ज़्यादा! उसमें 'उजियारी काकी' आख़िरी साँस ले रही है। जो सामूहिक फ़ोटो में एक बार भूल से मुस्कुरायी थी। पुरुष का दम्भ 'हराम का अण्डा' में भी है जहाँ आई.वी.एफ़. जैसी आधुनिक तकनीक से पत्नी से बच्चा पैदा करने का प्रश्न मज़हबी मनाहियों के ज़रिये आर्थिक गलियारे से होकर अंतत: पुरुष सत्ता के दम्भ के ज़रिये सामने आता है।

'नोटा जान', 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संग' और 'स्थगित समय गुफ़ा के वे फलाने आदमी' एक-दूसरे से भिन्न कहानियाँ हैं। 'नोटा जान' जहाँ गहरी मानवीय करुणा की कहानी है तो 'स्थगित समय गुफ़ा के वे फलाने आदमी' अमानुषिक होने की हद तक संवेदनहीन हो जाने और अकेले पड़ जाने की कहानी! किन्नर जीवन को लेकर हिन्दी में अभी ज़्यादा कुछ लिखा नहीं गया है। 'नोटा जान' की बसन्ती अपने किन्नर जीवन से जुड़े व्यवसाय को ही आर्थिक रूप से असहाय अपने पिता की सहायता का माध्यम बनाती है। किन्नरों को लेकर आम भारतीय समाज में जो एक ख़ास तरह का उपहास है, उसके इतर यह कहानी गहरे मानवीय और बौद्धिक स्वरों की कहानी की शक्ल में सामने आती है। और समाज में बढ़ती संवेदनहीनता को रेखांकित करती है जैसे 'स्थगित समय गुफ़ा के वे फलाने आदमी' और 'ढोंड़ चले...' जैसी कहानियाँ करती हैं। कोविड़-19 (कोरोना) के विकराल समय में यही हुआ था। मृत्यु के आतंक ने मनुष्य को नितांत संवेदनहीन बना दिया था। वह समय आर्थिक विकरालता का तो था ही, मनुष्य की संवेदना पूरी तरह खो देने का भी था। जबकि 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संग' बहु-संख्यकवाद और धर्म के उफ़ान के दौर में अकेले पड़ते व्यक्ति की कहानी तो है ही, इसके लावा वह इस क्रूर सच को भी उभारती है कि इस सबमें आदमी की असल बौद्धिकता और संवेदन का क्षरण किस तरह हो जाता है! हालाँकि, कहानी का बड़ा हिस्सा छोटी जगह से आए व्यक्ति के ख़ुद के बनने, पारिवारिक-सामाजिक रूप से सफल होने का है। लेकिन, असल कथा उसके साम्प्रदायिक उफ़ान के दौर के दबाव में अकेले पड़ जाने और अवसादग्रस्त हो जाने का है। पंकज बिल्कुल ताज़ा 'आज' की ही त्रासदी को उद्घाटित करते हैं। संग्रह की कई कहानियाँ जो मौजूदा प्रश्नों को लेकर मुखर है, यह भी उन्हीं में से एक है।

संग्रह की हर कहानी का अपना एक अलग कथा पाठ है। जिसमें कविता भी है और कई जगह विट् भी। 'जाल फेंक रे मछेरे', 'हराम का अण्डा', 'जूली और कालू की प्रेम कथा में गोबर' में व्यंग्य है। पंकज अपनी कहानियों में कई तरह की प्रविधियों का इस्तेमाल करते रहे हैं। वे इतिहास की तरफ़ जाते हैं, पुरानी चर्चित रचनाओं की तरफ़ भी जाते हैं और इनके माध्यम से अपनी कहानियों के मंतव्यों को गहरा करते हैं। इस संग्रह में भी इसे देखा जा सकता है।

000

ज्वलंत मुद्दों से बुनी कहानियाँ

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

साहित्य मानव जीवन का आईना है! कहानी लेखन एक विधा है! यह एक कला है!

साहित्य हो या साहित्य की कोई भी विधा, इस संबंधी अमूमन ऐसे वाक्य कहे जाते हैं तो ऐसा लगता है कि ये कोमल कला है, सूक्ष्म भाव वाली। जिसमें प्रेम, भावना और अनुभुति का मिश्रण होता है। इसमें कुछ ग़लत नहीं है, ऐसी विधाओं व कलाओं का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ, वे प्रेम और भावनाओं से गुँथी, आदर्शों से पगी व अच्छे इन्सान बनने का संदेश देने वाली ही थी। जैसा कि हमेशा से होता आया है, चीज़ें जब शुरू होती हैं, उनकी प्रकृति बहुत परिष्कृत होती है, कोमलता से भरी, धीरे-धीरे वह सख़्त होती जाती है। कई

बार तो इसका स्तर रूखे होने तक पहुँच जाता है। जैसे एक बच्चे का जन्म होता है, हमारे देखते ही देखते वह बच्चा बड़ा होने के साथ-साथ, अपने स्वभाव, आदतों व रुचियों के साथ बदलने लगता है। कई बार तो हम अपने ही बच्चों को समझ नहीं पाते....! वह पहले से अधिक परिपक्व व विचारशील हो जाता है। बस ऐसा ही कुछ हाल साहित्य व अन्य कलाओं का हो गया है। अब ये प्रेम व भावुकता से बढ़ कर अधिक परिपक्व व विचारशील हो गए हैं, हमारे देखते ही देखते....! आलम यह है कि जिस रचना में ऐसा कोई तथ्य या वैचारिक तत्व न हो, उसे अपरिपक्व व बचकाना मानने से भी गुरेज़ नहीं किया जाता। कहने का अर्थ है कि साहित्य अब केवल समय बिताने वाला, मनोरंजन करने वाला, भावुक स्तर की अच्छी-बुरी कहानियाँ न रह कर, समाज की क्रूर वास्तविकताओं को हमारे सामने लाने वाली विधा हो गया है। वास्तव में, अब यह समाज का आईना बन गया है, जिसमें चारों ओर फैली अराजकता, अव्यवस्था, नाबराबरी और असंतुलित व्यवहार को सामने लाया जाने लगा है। साहित्य रचना वर्तमान में एक सामाजिक उत्तरदायित्व है, जो समाज को गंभीरता से देखता, परखता व प्रस्तुत करता है, साहित्य उन सभी के लिए है। ऐसे माहौल में जब एक व्यक्ति का अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ चुका हो और प्रशासनिक तंत्र की सभी इकाइयाँ स्वकेंद्रित और गिने-चुने लोगों के लाभ के लिए कार्यशील हों, ऐसी व्यवस्था में निजीकरण से भी अधिक ख़तरनाक स्थिति पैदा होने लगी है, जहाँ व्यक्ति व्यक्तित्वहीन/अस्तित्वहीन होते हुए शून्यता की ओर बढ़ने लगा है। ऐसे बहुत से साहित्यकार हैं, जो इतनी गंभीरता से अपने इस उत्तरदायित्व को समझते हैं और उसे उतनी ही निष्ठा से निभाते भी हैं। इन्हीं में से ही एक प्रबुद्ध साहित्यकार पंकज सुबीर हैं, जो इस बार अपने एक कहानी संग्रह 'ज़ोया देसाई कॉटेज' के द्वारा पाठकों के समकक्ष प्रस्तुत हुआ है। इसकी अधिकतर कहानियाँ ऐसे ही मुद्दों को सामने लाती हैं, जो समकालीन समय की उस वास्तविकता को घटनाओं, कथानक, बिंबों के माध्यम से बयान करता हैं, जिससे उसकी भयानक सच्चाई का पर्दाफाश हो सकें।

संग्रह की पहली ही कहानी ''स्थगित समय गुफ़ा के वे फलाने आदमी'' कोरोना काल की उस भयानक सच्चाई को पेश करती है, जब लोगों के चेहरों के मुखौटे उतरे और उनकी वो असलियत सामने आई जो किसी संकट काल में ही संभव हो सकती है। लॉकडाउन के समय और दूसरी लहर में होने वाली निरंतर मौतों के बीच मालूम हुआ कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है ही नहीं! वह तो पारिवारिक भी नहीं हैं, वह हर हाल में केवल अपने जीवन को बचाए रखने की 'गांरटी' चाहता है, जो अनेक प्रकार की दी जा रही 'गांरटियों' के बीच नदारद है। जो धर्मग्रंथ व शास्त्र सदियों से मनुष्य को समझाते आए कि यहाँ व्यक्ति अकेला आया और अकेले ही जाएगा। मोह-ममता फालतू की बातें हैं, पैरों की बेड़ियाँ हैं। मगर मनुष्यों को ये बातें अब तक समझ में नहीं आ पायी थीं, ये केवल कोरे उपदेश ही थे परन्तु कोरोना काल के उस दौर ने सारे धर्मग्रंथों व शास्त्रों की व्याख्याओं और गूढ़ रहस्यों को व्यावहारिक रूप से ऐसा समझाया कि जीवन को पालने व किसी मुकाम तक पहुँचाने वाले माँ-बाप से रात-रात में ही पीछा छुड़ाने के लिए एक बेटी (वैसे बेटी कहना चाहिए...?) ....उन भले लोगों के पीछे ही पड़ गई, जो इस संकट काल में अनजाने व अप्रत्यक्ष रूप से अपने मनुष्य जीवन को सफल करने के लिए निस्वार्थ रूप से लोगों की मदद करने लगे थे। इस कहानी की कई परतें हैं, परन्तु जब कहानी के अंत में मीडिया के एक टीवी चैनल के सामने मातम मनाने की नौटंकी, रिश्तों का ढोंग व झूठे दर्द को परोसने का काम किया गया, तो अब तक भावहीन व निर्लेप रहने वाले वे चारों फलाने आदमी तक हिल गए। ये सब ड्रामा देखकर पहले वे ख़ूब हँसे, और पता न लगा, कब वह हँसी रोने से लेकर रुदन में बदल गई। वो रुदन आपको सच में हिला कर रख देगा! अंत में उन चारों व्यक्तियों का भारत के नक्शे के रूप में लेटे होना, कहानी को और भी गंभीरता व गहरे अर्थ प्रदान कर देता है।

'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' कहानी एक ऐसे व्यक्ति की है, जो अजीब से भँवर में फँस गया है। जहाँ कुछ समय से सोशल मीडिया मंचों व टीवी द्वारा संप्रदायिक भावनाओं को हवा देते हुए, लगातार एक संप्रदाय को निशाना बनाते हुए दुष्प्रचार किया जाने लगा है। अब देश, राज्य, राजनीति, प्रशासनिक तंत्र सब का अस्तित्व केवल सत्ताधीश के दायरे में सिमट गया है। हालात कुछ ऐसे बना दिए गए हैं कि इनसे अलग वैचारिक मत रखने वाले को स्वतंत्र मानने वाले की बजाय उसे शासन का नहीं बल्कि देश का विरोधी बनाने का रुख अपनाया जाने लगा है। ऐसी कठिन परिस्थितियों में विचारशील व संवेदनशील व्यक्ति को उसका अपना ही परिवार, मित्र व संबंधी अपने से बुरी तरह से दूर छिटकने लगे, क्योंकि वे सभी किसी आभासी गर्व से प्रेरित हैं। कहानी का पात्र राकेश कुमार ऐसे माहौल में अपना मानसिक संतुलन खोने लगा। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो शायद उसमें कहीं मानवीय पक्ष, संवेदना व वैचारिक स्वतंत्रता का अंश बाकी है, जिसे सोशल मीडिया चीख-चीख कर, बहरा बनाने पर उतारू हो चुका है। इस कहानी में लेखक ने अतीत और वर्तमान दो दौरों के बीच कई तरीकों से पिसने वाले व्यक्ति को केंद्र में रखा। ग्रामीण जीवन में बिताए बचपन के समय में, बच्चे के बाल विशेष देवी व मंदिर में काटे जाने की मान्यता को लेकर महामंडित किए जाने के बावजूद, जब राकेश कुमार को स्थितियोंवश उससे वंचित किया गया तो शहर में आने वाला किशोर राकेश बौखला गया, भ्रमित हो गया। उसी कारण वह अत्यन्त ग़ुस्सैल स्वभाव का हो गया। युवावस्था, नौकरी व विवाह-संतान के साथ वह कुछ हद तक सँभला परन्तु वर्तमान समय में चल रही गर्व की आंधी के बीच उसने स्वयं को फिर से अकेला पाया। उसके बचपन का वो रौद्र रूप स्वभावत: ख़तरनाक ख़ामोशी में ढल गया। लेखक ने अतीत की धार्मिक मान्यताओं और समकालीन समय में प्रचंड रूप लेते विशेष धर्म की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लगाया है।

किसी भी व्यक्ति का जीवन किसी भी धार्मिक मान्यता या रीति-रिवाज का मोहताज नहीं। इनके भारी दबाव के बीच बच्चे से लेकर किशोर और युवक से लेकर प्रौढ़ केवल पंगु होते हैं। इनका कहीं भी सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता, ये आपको केवल मानसिक तौर पर अव्यवस्थित करते हैं। आज इन सभी का स्थान मीडिया के अनेक मंचों ने लेकर, व्यक्ति को आँकड़ों में बदल कर बहुत लघु कर दिया हैं। इस कहानी का एक पक्ष 'बाज़ार' फिल्म के गीत 'करोगे याद तो हर बात याद आएगी' में निहित है। जो यक़ीनन आपको झकझोर कर रख देगा!

'रामसरूप अकेला नहीं जाएगा' नामक कहानी अत्यन्त प्रभावशाली है। गाँव-गँवई में रहने वाला, भूमिहीन व्यक्ति केवल मजदूर होता है। रामसरूप देश के उन बहुसंख्यक लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनके लिए जीवन-यापन ही प्रमुख होता है। इसी कारण रामसरूप को जहाँ जो भी काम मिलता गया, वह उसमें परिवर्तित होता गया। मज़दूर से मंदिर-सेवक, फिर लांड्री से फर्नीचर का काम, फिर किसी घर में बुज़ुर्ग का परिचारक बनना। परन्तु जब समय बदला तो लगभग दस-बारह वर्षों में कुछ ज़्यादा ही परिवर्तन आ गया। सभी जगहों पर मशीनों का बोलबाला हो गया, ऊपरी चमक-दमक बढ़ गई और इस सब के बीच जो बहुत बेचारा, नाकारा और 'वेहला' हुआ, वो केवल आदमी हुआ। इस के अन्तर्गत अधिक प्रभाव केवल मज़दूरों या दिहाड़ीदारों पर नहीं पड़ा, बहुत अधिक पढ़े-लिखे लोगों के काम पर भी बुरा असर पड़ा। रामसरूप और श्रीवास्तव का बस या कैब से धूल व अँधेरे के गुबार में गुम होते जाना समय की वास्तविकता ही नहीं, अति उन्नत समय की विडंबना भी है। 'अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना' मुहावरे का सही अर्थ इस कहानी से समझ में आता है, यदि अभी भी मनुष्य जाति समझने चाहे तो...! अधिक प्रगति और सुख-सुविधाओं का ख़ामियाज़ा अंततः मनुष्य को ही भुगतना पड़ रहा है, जबकि उसे शरीरिक श्रम करने की आदत ही नहीं रही।

संग्रह की कहानी 'खजुराहो' एक स्त्री की उस प्यास को प्रगट करती है, जो शारीरिक तृप्ति से जुड़ी है, वह स्त्री के लिए भी उतनी ही नैसर्गिक है, जितनी किसी पुरुष के लिए। परन्तु अधिकतर विवाहित स्त्रियाँ भी इस सुख, इस संतृष्टि से अतृप्त व वंचित रहती है। कहानी एक अनाम स्त्री की डायरी में बने अधूरे चित्रों, वाक्यों से शुरू होकर, समझने के प्रयास में उलझाती है परन्तु वहीं होटल में ठहरी एक स्त्री के अनुभव द्वारा साकार रूप ग्रहण करती प्रतीत होती है। जिन्हें सुन कर, दूसरी स्त्री को अपनी अतृप्त प्यास का एहसास होने लगता है। कहानी 'गुड लक टू यू लियो ग्रांडे' नामक फिल्म के पात्रों के माध्यम से बताती है कि प्रत्येक नैन्सी को कोई एक लियो ग्रांडे चाहिए, जो उसे पूर्ण शरीरिक सुख दे सके। क्या इसे बोल्ड विषय कहा जाए? जबकि हमारे घरों के टीवी व मोबाइलों पर मनोरंजन के नाम पर अश्लीलता, गंदी भाषा व नशा परोसा जा रहा है। यह एक बहुत ही सेंसेटिव सा विषय है, जिसे समझा जाना चाहिए। इसी प्रकार की एक कहानी संग्रह के शीर्षक 'ज़ोया देसाई कॉटेज' की है। जहाँ इस स्त्री पात्र को धन, ऐश्वर्य की कोई कमी नहीं थी, परन्तु उसकी भावनाओं व प्रेम को समझने व सुनने वाला कोई साथी व प्रेमी नहीं था। उसे वह प्रेमी व साथी इस कॉटेज के नौजवान राहुल के रूप में मिला और उन चार दिनों में ही ज़ोया ने अपनी सारी ज़िंदगी जी ली। जानलेवा बीमारी से मरते समय वह ख़ुश थी, संतुष्ट थी। इस सुख को पाने के बाद ज़ोया ने अपना बहुत सारा धन राहुल को भेजा ताकि वह क़र्ज़ की अपनी परेशानियों से निजात पा सके। वह कई कॉटेजों का मालिक बन गया। इसी कारण उसने एक कॉटेज ज़ोया के नाम को समर्पित कर दी।

'जाल फेंक रे मछेरे' कहानी सुंदर व संस्कारी पुत्र के लिए एक साधारण घर की माँ द्वारा धनी घर की इकलौती लड़की चाहना कोई बुरी बात नहीं थी। परन्तु इस रिश्ते को हाथ से न जाने देने के चक्कर में वह स्वयं संस्कार और मर्यादाओं को भूल गई। इसके परिणामस्वरूप जो हुआ, उसमें वह स्वयं ही अपने जाल में फँस गई। सामान ख़रीदने के लिए उस शहर में जाने और रात वहीं पर बिताने की सलाह देने वाली माँ को लगता था, इससे बेटा लड़की को प्रभावित कर, उसकी अधेड़ अमीर व झगड़ालू माँ के सामने अपना इम्प्रेशन बना लेगा परन्तु हुआ उलटा! उस अधेड़ माँ ने ही उस नौजवान को अपने वश में कर लिया।

'उजियारी काकी हँस रही हैं' कहानी की उजियारी ने पति द्वारा ब्याह कर लायी दूसरी स्त्री को जब अपना मंगलसूत्र सौंप कर स्वयं को पति व गृहस्थी से दूर कर लिया था, तब वह बुढ़ापे में पति की सेवा के लिए क्यों बाध्य रही? जवानी के समय का उसका वो क्रांतिकारी कदम बुढ़ापे में असफल कैसे रह गया? पात्र को जीवंत रखने के लिए बुढ़ापे में भी ऐसे ही किसी क़दम की आवश्यकता थी। 'डायरी में नीलकुसुम' और 'जूली और कालू की प्रेम कथा में गोबर' दोनों कहानियाँ दलित पात्रों पर सवर्णों के अत्याचारों और शोषण की बात कहती है। डायरी में लिखी प्रेम को परिभाषित करती अलग-अलग उक्तियों के माध्यम से शुभ्रा को ननिहाल में अपनी किशोरावस्था के दिन याद आए और साथ ही याद आया, घर में सफाई का काम करने वाली सुखिया का बेटा हरिया। जिसे अपने छोटे मामा की करतूतों की शर्मिंदगी से बचाने के लिए, छत पर अकेले में कई बार उसके होंठों को चूमा, जिनकी अनुभूति उसे आज भी आंदोलित कर देती है।

'जूली और कालू की प्रेम कथा में गोबर' की प्रेम कहानी भले एक डी.एम. की कुतिया और आवारा कुत्ते कालू की हो, जो प्राकृतिक प्रणय-काल में एक-दूसरे से लिपट गए थे। परन्तु उसका अत्यन्त बुरा परिणाम उस खेत के मालिक गोबर को भुगतना पड़ा। वास्तव में यह कहानी गोदान के अमर पात्रों होरी व गोबर को केंद्र में रख कर रची गई। यह कहानी एक ही घटना से, एक ही रात में, नौजवान गोबर के अधेड़ होरी में तब्दील होने की मार्मिक कहानी है।

भोपाल से एकमात्र चुनी गई ट्रांसजेंडर पार्षद को आधार बना कर लेखक 'नोटा जान' की केंद्रीय पात्र बिंदिया को रचा है या वास्तव

में उस की कहानी को ही पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है, यह मालूम नहीं। परन्तु इसके माध्यम से वह समाज के हाशिये के उस वर्ग की ओर एक खिड़की अवश्य खोलता है और उनका वो मानवीय पहलू उजागर करता है, जो परिवार की सहायता करने व ज़िम्मेदारी निभाने वाला है। कहानी का शीर्षक सार्थक है, जिसे कोई विकल्प पसंद नहीं, उनके लिए 'नोटा' है। ट्रासंजेंडर समाज का 'नोटा' बटन...!

संग्रह में सभी कहानियों के शीर्षक कुछ अलग अंदाज़ के हैं और बड़े हैं। परन्तु इनके माध्यम से लेखक इतिहास, मिथिहास, समकालीन व ज्वलंत सभी मुद्दों को समेट लेता है। वह रानी रूपमती और बाज बहादुर के प्रेम प्रसंग को यह कहते हुए एक नया संदर्भ दे देता है कि रानियाँ प्रेम में मर जाती हैं परन्तु बाज़ बहादुरों को अपने सिर पर रखे ज़िम्मेदारियों के बोझ को उठाने के लिए जीवित रहना पड़ता है। वह स्त्रियों को उनके लिए लियो ग्रांडे चुनने के अधिकार की स्वीकृति देते हुए, खजुराहो की उन विश्व-प्रसिद्ध मूर्तियों को व्यावहारिक धरातल प्रदान करता है।

वह मीडिया के संत्रास से दुखी है, बेचैन हैं, जो सभी आम जनों की सोच पर हावी होता जा रहा है। वह रिश्तों पर पड़े उन महीन मुलम्मों को आसानी से तार-तार कर, उनका कुरूप चेहरा सामने लाता है, जिसके लिए रुदन और सिसकियाँ भरना ही बनता है। आज भी पारंपरिक मर्यादा व संस्कारों की अहमीयत है, उनका मूल्य है। इनकी सीमा लाँघते ही पछताना पड़ता है। इन सच्चाइयों के साथ ही शोषित वर्ग के आरक्षण और उत्थान को लेकर सरकारी आँकड़े भले कुछ भी कहते रहें, ज़मीनी हक़ीक़त आज भी बदतर है, इस से इन्कार नहीं किया जा सकता। अमीरी का डंडा आज भी सबसे बड़ा पीर माना गया है। और रह गया रामसरूप... वह सच में अकेला नहीं रहा, उसके साथ सभी वर्गों के लोग सुख-सुविधाओं और कथित उन्नति की भेंट चढ़ चुके हैं।

000

प्रेम का नया घर ढूँढ़ती कथाएँ

रमेश शर्मा

''ज़ोया देसाई कॉटेज' पंकज सुबीर का नया कहानी संग्रह है जिसमें ग्यारह कहानियाँ शामिल हैं। उनके पहले के कहानी संग्रहों की कुछ कहानियाँ मैंने पढ़ी हैं और हाल ही में प्रकाशित उनके बहुचर्चित उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' को भी पढ़ने का सुयोग हाथ लगा था। बतौर पाठक उनकी कथा रचनाओं को लेकर एक बात जो मुझे अपील करती है, वह ये कि पंकज सुबीर का कथा संसार संवेदना के वृत्ताकार वलयों की महीन परतों से मिलकर विस्तार पाता है। उनके कथा संसार में संवेदना के विस्तार को हम इस रूप में देख पाते हैं जैसे कि मानवीय संवेदना के वृत्त की परिधि के भीतर कई-कई वृत्त समाए हुए हैं और हरेक वृत्त की परिधि के साथ एक नई सीमा का आरम्भ हुआ है। इन सीमाओं के भीतर ज्यों ज्यों हम प्रवेश करते हैं या यूँ कहें कि धँसते जाते हैं, मानवीय संवेदना के नए नए रूपों से हमारा साक्षात्कार होता है। संवेदना जो मानवीय भावुकता और सुचिंतित विचारों का सम्यक मेल होता है, वह कथा में घुलमिल कर एक बड़े पाठक वर्ग के जीवन को प्रभावित करता है। कथाकार की दृष्टि जितनी महीन और गहरी होगी, उसी अनुपात में संवेदना की गहरी परतों को अपनी कथा में वह जोड़ पाता है। पंकज सुबीर जी की यह दृष्टि सम्पन्नता ही उनकी कहानियों से जुड़ने का एक बड़ा अवसर हमें देती है।

कहानी संग्रह का नाम जिस शीर्षक 'ज़ोया देसाई कॉटेज' पर आधारित है उस कहानी पर विचार करते ही बहुत सी बातें मन के भीतर उमड़ने घुमड़ने लगती हैं। सवाल यह है कि कितनी बातों को हम जैसे पाठक पकड़ पाएँगे? इन सवालों के उत्तर तो हमारी पाठकीय समझ की सीमा के दायरे में ही ढूँढ़े जा सकते हैं। 'ज़ोया देसाई कॉटेज' मूलत: एक प्रेम कहानी है जिसकी पृष्ठभूमि में माँडवगढ़ के राजा बाजबहादुर और रानी रूपमती की प्रेम कथा केन्द्रित है, पर इस प्रेम कथा के बहाने कथाकार ने कई विमर्शों को जोड़ा है। कथा लेखक पंकज सुबीर ऐतिहासिक विषयों पर आधारित कथाओं के मर्म को बाधित किये बिना जिस तरह उस कथा मर्म का मौलिक आधुनिकीकरण करते हुए नई कथा गढ़ते हैं, पाठक के भीतर उनका यह रचनात्मक कौशल कौतूहल पैदा करता है। चाहे कहानी 'ज़ोया देसाई कॉटेज' की बात करें, चाहे खजुराहो की बात करें, इस तरह की कहानियों को इन्हीं संदर्भों से जोड़कर देखा जा सकता है। किसी भी प्रेम कहानी में सिर्फ नायक-नायिका ही नहीं होते हैं बल्कि उनके बीच घटित बहुत सी ऐसी घटनाएँ भी होती हैं जिनसे समय चक्र के भूत, वर्तमान और भविष्य को कभी विलग करके नहीं देखा जा सकता। पंकज सुबीर ने बाज़बहादुर और रानी रूपमती की प्रेम कथा के संवेदनात्मक वलयाकार परतों को समय चक्र के बहु संदर्भों में बड़ी कुशलता से 'ज़ोया देसाई कॉटेज' कहानी में बुनकर सामने रखा है। कहानी का पात्र शिरीष जो एक फोटोग्राफर है, उसकी नज़रों से कहानी में इस प्रेम कथा को देखने की कोशिश हुई है। जाहिर सी बात है इस पात्र की जगह एक साधारण मनुष्य की नज़रों से भी इस प्रेम कथा को देखा जाए तो मन में कुछ द्वंद्वों का उठना स्वाभाविक है। मसलन बाज़बहादुर जो एक पुरुष सिम्बोल का प्रतीक है, कथा के शुरुआत में उसके प्रेम पर एक प्रश्न चिह्न उठता है पर कहानी के अंत में इस तरह की शंकाएँ छंटती भी हैं। इस द्वंद्व के निराकरण से जुड़ी पंक्तियों का ज़िक्र यहाँ जरूरी है- "शिरीष को लग रहा है कि बाज़बहादुर-रूपमती की प्रेम कथा असल में तो केवल रूपमती की ही प्रेम कहानी है। यह कैसा प्रेमी है जो अपनी प्रेमिका, अपनी पत्नी को शत्रु के साए में छोड़कर स्वयं भाग गया।"

"कुछ दूर जाकर अचानक राहुल रुक कर पलटा और शिरीष की तरफ देखता हुआ बोला- 'शिरीष, रूपमतियों के मर जाने के बाद लोग सवाल उठाते हैं कि उसके बाद बाज़बहादुर भी क्यों नहीं मर जाते। लेकिन कोई यह नहीं बताता कि बाज़बहादुर अपने सिर पर रखी ज़िम्मेदारियों का बोझ किसको सौंप कर मरे ?बाज़बहादुरों के नसीब में एक बार की मौत नहीं लिखी होती, उनको रोज़ मर

मर कर जीना होता है। रूपमतियाँ चली जाती हैं, बाज़बहादुर पीछे छूट जाते हैं सजा काटने के लिए"

शिरीष ने टेबल पर रखी डायरी उठाई और उसे खोलकर कुछ देर पहले लिखे गए वाक्य "पुरुष कभी प्रेम करना नहीं सीख पाएगा, पुरुष बस उपभोक्ता हो सकता है प्रेमी नहीं।" को पेन से काटने लगा।

कथाकार ने इस कहानी के माध्यम से बाज़बहादुर और रूपमती की प्रेमकथा को स्त्री या पुरुष के संदर्भों में न देखते हुए उसे त्याग और आपसी समर्पण के संदर्भों में देखने की कोशिश की है जो सही भी है।

बाज़बहादुर और रूपमती की प्रेमकथा समय का एक अतीत है, उसके वर्तमान में राहुल और जोया देसाई की प्रेम कथा है, जहाँ से ऐसे द्वंद्व के बादल छँटते हैं।

पिता की मृत्यु के उपरान्त कहानी का नायक राहुल एक समय क़र्ज़ में डूबा हुआ एक ऐसा युवा है जिसे विरासत में पिता रूपमती कॉटेज सौंपकर गए थे। राहुल के ऊपर पिता द्वारा बिजनेस के लिए, लिए गए क़र्ज़ का बोझ भी है और घर की असीमित ज़िम्मेदारियाँ भी। राहुल के जीवन में, अपने पति के साथ अमेरिका से भारत आई जोया देसाई का प्रवेश ही बाज़बहादुर-रूपमती की प्रेम कथा का दरअसल एक नया रूप है। अपने पति को इंदौर में छोड़कर ज़ोया देसाई का टेक्सी लेकर माँडव आना और राहुल के रूपमती कॉटेज में हफ्ते भर रुककर बाज़बहादुर-रूपमती के मकबरों को देखते हुए राहुल के साथ समय बिताना, इन समूची घटनाओं को अभिव्यक्त करते सारे संवाद कहानी में जान डालते हैं।

शिरीष को राहुल अपनी प्रेम कथा के अंश सुनाता हुआ कहता है- 'मैं उसे पूरा माँडव घुमाना चाहता था लेकिन वह बाज़बहादुर के महल और रानी रूपमती के महल के आसपास ही भटकती रही। और उसके बाद की चार रातें भी उसी एक रात की तरह बीतीं। किसी सपने की तरह। जोया जैसे रेगिस्तान में भटकी हुई कोई मुसाफ़िर थी, जो अचानक किसी दरिया के किनारे आ गई थी, और फिर से रेगिस्तान में भटकने से पहले दरिया को जी भरकर जीना चाह रही थी। और मैं भी जीवन की परेशानियों के एक दूसरे तरह के रेगिस्तान का मुसाफिर था, मेरे लिए भी वह एकदम नया अनुभव था।'

ज़ोया और राहुल के मिलन की यह प्रेम कथा महज देह तक सीमित नहीं है। अगर ऐसा होता तो ज़ोया के विदेश चले जाने के बाद यह कथा ख़त्म हो जाती। दोनों के बीच संवाद का एक भी सूत्र न होते हुए भी यह कथा त्याग और समर्पण की कथा है जिसमें एक दूसरे की तकलीफ़ों को समझने और उसे अपने स्तर पर दूर करने की कोशिशें हैं। ज़ोया अपने विदेश प्रवास के उपरान्त राहुल के अकाउंट में जब एक बड़ी राशि जमा करवा देती है तो राहुल के ऊपर बोझ की तरह लदी हुई ज़िम्मेदारियाँ पूरी होती हैं। कुछ दिनों बाद ज़ोया की मृत्यु की ख़बर जब उसके किसी दोस्त के ज़रिये राहुल तक पहुँचती है तब राहुल को पता चलता है कि ज़ोया किसी बड़ी बीमारी की गिरफ़्त में थी, वह प्रेम की खोज में ही भारत आई हुई थी और राहुल के रूप में उसके जीवन का बाज़बहादुर उसे मिल गया था। यह कथा एक मार्मिक कथा है जिसमें प्रेम की खोज के बहाने प्रेम को कई संदर्भों में महसूस किया जा सकता है। 'रूपमती कॉटेज' की जगह 'जोया देसाई कॉटेज' का नया नामकरण एक ऐतिहासिक कहानी को वर्तमान संदर्भों में समझने की गहराई देता है।

संग्रह की कहानी 'खजुराहो' पंकज सुबीर की एक चर्चित कहानी है। हंस पत्रिका में जब यह कहानी आई, तब पाठकों के बीच बहुत चर्चा में रही। एक स्त्री द्वारा अपनी देह का मनमाफ़िक उपयोग वह करे या ना करे? अपनी देह और अपने मन के खजुराहो को गढ़ने का अधिकार समाज में केवल पुरुषों को है, स्त्रियों को क्यों नहीं ? इस वर्जित बिषय पर नेहा और सुजाता जैसे स्त्री पात्रों के माध्यम से कथाकार ने एक विमर्श खड़ा करने का प्रयास किया है। पवित्रता के सारे मापदंड सिर्फ स्त्रियों के लिए क्यों हैं? इस सवाल के प्रतिरोध में कथाकार ने एक पंक्ति में गूढ़ बात कह दी है कि दुनिया में सबसे अपवित्र शब्द 'पवित्र' है। एक पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों की शुचिता और पवित्रता को लेकर जहाँ हर जगह सवाल ही सवाल हैं, इन सवालों से यह कहानी टकराती है। यह कहानी अपना कोई निर्णय नहीं सुनाती बल्कि एक वर्जित बिषय को विमर्श से जोड़ती है। साथ ही उसके अच्छे बुरे परिणामों को लेकर एक तरह से सचेत भी करती है।

'डायरी में नीलकुसुम' इसी संग्रह की एक विचारोत्तेजक कहानी है। इस कहानी की शुरूवात में वसंत और प्रेम को अंतरसंबंधित करते हुए कथाकार ने बड़ी ख़ूबसूरत बातें लिखी हैं। 'वसंत किसी मौसम का नाम नहीं है, वसंत जीवन की एक अवस्था का नाम है'। 'प्रेम किसी व्यक्ति से नहीं किया जाता है, प्रेम उम्र की उस अवस्था से किया जाता है जिसमें वह व्यक्ति उस समय है'।

शुभ्रा जिसे इस कहानी की नायिका के स्थान पर रखें तो वह भी जीवन के वसंत की उसी अवस्था में है जहाँ से वह अपनी आँखों के सामने घटती सामाजिक विद्रूपताओं को देख रही है।

एक तरफ दलित समाज के प्रतिनिधि के रूप में हरिया और उसकी विधवा माँ सुखिया हैं तो दूसरी तरफ शुभ्रा के ननिहाल से जुड़े उसके सवर्ण और सामंती सोच के प्रतिनिधि के रूप में उसके मामा-मामी, माँ और नानी।

इन दोनों ही वर्गों के बीच इतनी बड़ी सामाजिक खाई है कि सफाई कर्मी के रूप में तैनात हरिया और सुखिया को सफाई के अलावा शुभ्रा के ननिहाल की कोई भी चीज़ छूने की मनाही है। पर सबसे बड़ा सामाजिक पाखंड यह है कि सुखिया जैसी एक विधवा दलित स्त्री की देह को अपनी बपौती समझ कर उसे भोगने में शुभ्रा के छोटे मामा को कोई गुरेज नहीं है। इन सामाजिक विद्रूपताओं को देखते हुए न केवल शुभ्रा अचम्भित है बल्कि सुखिया का जवान होता बेटा हरिया भी अपमान की पीड़ा सहने को अभिशप्त है। इन घटनाओं के बरक्स शुभ्रा के भीतर हरिया के प्रति जहाँ एक सहानुभूति का भाव जन्म लेने लगा है वहीं इस सामाजिक पाखंड के विरुद्ध एक प्रबल प्रतिरोध को भी वह अपने भीतर

जन्म लेता हुआ महसूस कर रही है। उसकी डायरी इन घटनाओं की गवाह है जिसे पढ़ते हुए उसे जीवन की पुरानी बातें याद आने लगी हैं। शुभ्रा को नीले फूल पसंद हैं जिनका ज़िक्र इस डायरी में आता है।

पर डायरी में यह नीलकुसुम कौन है ? दरअसल यह नीलकुसुम उसी हरिया के होंठ हैं जिनसे शुभ्रा को जीवन की एक विशेष अवस्था में प्रेम हुआ था और उसने वर्जित प्रदेश में कदम रखकर इस नीलकुसुम का बारम्बार रसपान किया था। प्रेम कई बार सहानुभूति और प्रतिरोध से मन में उपजता है। पर दो वर्जित प्रदेशों का मिलन आज भी आसान नहीं है। सुखिया जब इस मिलन की आँखों देखी गवाह बनी तब उसके होश उड़ गए थे। उसके भीतर से बस इतने ही शब्द निकले थे ... वे हमें मार डालेंगे। उसके बाद शुभ्रा और हरिया एक दूसरे के जीवन से इतने दूर हुए कि कभी दोबारा नहीं मिल सके।

शुभ्रा और हरिया के बीच जन्म लेती प्रेमकथाओं का जन्म और उनका अंत समाज का एक कठोर यथार्थ है जिसे मार्मिक और कलात्मक रूप में कथाकार ने हमारे सामने रखा है।

कोरोना का समय जो मनुष्य जीवन के हिस्से में आया उसकी कथा अनेक रंगों से भरी है। एक तरफ यहाँ विद्रूपताएँ हैं, मानवीय संवेदना का क्षरण है तो ठीक उसके उलट जीवन को बचा ले जाने वाली ख़ूबसूरत सच्चाईयाँ और मानवीय संवेदना की जीवंत मौजूदगी भी है। अपनी कहानी 'स्थगित समय गुफ़ा के वे फलाने आदमी' के जरिये इस कोरोना काल में कथाकार की नज़र उन लोगों पर गई है जो समाज में हाशिये से भी बहुत दूर फेंके गए लोग हैं। ये नामहीन फलाने लोगों ने कोरोना काल में मनुष्यता को बचाने के लिए संकट ग्रस्त लोगों की किस तरह सेवा की, उसका उदाहरण इस कहानी में जगह जगह मिलता है। कोरोना काल की यादगार कहानियों में से यह भी एक यादगार कहानी है जहाँ से स्थगित समय की गुफ़ाओं को हमारी आने वाली पीढ़ियाँ देख-समझ पाएँगी।

भ्रष्ट अफ़सर कितने ऐयाश, अहंकारी और क्रूर हो सकते हैं, उसका चित्रण 'जूली और कालू की प्रेम कथा में गोबर' जैसी कहानी में मिलता है। गोबर नामक श्रमिक के खेत में सोये हुए कालू नामक कुत्ते से जाकर अफ़सर की पालतू कुतिया जूली, प्रेम की पींगे बढ़ाकर संसर्ग से निवृत होकर आती है। रात दिन स्त्रियों का दैहिक शोषण करने वाले अफ़सर के अहंकार को इससे चोट पहुँचता है।

इस संदर्भ में गोबर द्वारा कही गई कुछ बातें अफ़सर और अफ़सर के लोगों को नागवार गुज़रती हैं।

अफ़सर के लोगों द्वारा गोबर के शारीरिक चीर हरण की जो भयानक और क्रूरतम घटना इस कहानी में है, वह रूह कँपा देने वाली घटना है। ऐसी घटनाएँ अकल्पनीय होकर भी अनेक रूपों में आज भी घटित हो रही हैं, जिन पर कथाकार की पैनी नज़र गई है।

'रामसरूप अकेला नहीं जाएगा' बढ़ती टेक्नालाजी के दौर में एक ऐसी कहानी है जहाँ मज़दूरों के अपने स्वतन्त्र निर्णयों का ख़ामियाज़ा उन्हें भुगतना पड़ता है। मज़दूरों को आरामपसंद होने का अधिकार समाज के आरामपसंद लोगों ने कभी दिया नहीं है, उनकी नियति तो यूज़ एंड थ्रो की है। जब तक वे उपयोगी हैं उनकी पूछ परख रहेगी, उसके बाद धक्के खाने को वे सड़क पर धकेल दिए जाएँगे। सर्वहारा मज़दूरों के जीवन की विसंगतियों को लेकर यह कहानी कुछ नए खुलासे करती है।

संग्रह की अन्य कहानियाँ 'उजियारी काकी हँस रही हैं', 'नोटा जान', 'हराम का अंडा', 'जाल फेंक रे मछेरे' और 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' भी विविध विषयों पर बुनी गई ऐसी दिलचस्प कहानियाँ हैं जिनमें सर्वहारा जीवन के विहंगम दृश्य हैं। मानवीय संवेदना की महीन परतों में रची पगीं इन कहानियों से कुछ नई बातें और कुछ नए विमर्शों को सामने आने के लिए एक बड़ा स्पेस मिलता है। इन सबको गहराई में जाकर समझने के लिए इस कथा संग्रह की कहानियों को पढ़ा जाना आवश्यक है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

एकांत का इकतारा

समीक्षक : ज्योति जैन

लेखक : शिरीन भावसार

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर राजस्थान

ज्योति जैन
1432/24,नंदानगर
इन्दौर-452011
मोबाइल- 9300318182

एक शाम एक चित्रकार बड़ा हताश और निराश हो जाता है। क्या करे..कुछ सूझता नहीं था फिर विचार करता है कि मेरा चित्र अधूरा है, इसे पूर्ण कर लूँ। अगले दिन वो चित्र पूरा करने में जुट जाता है और पूरा होते ही अगला चित्र बनाना शुरू करता है। वो भी पूर्ण नहीं होता और इसी तरह सिलसिला चलता रहता है...। कुछ ऐसी ही शब्दों को सँवारने की बैचेनी कवयित्री शिरीन भावसार के काव्य संग्रह 'एकांत का इकतारा' में नज़र आती है, जहाँ कवियित्री कहती है, कि- मैं पूरा नहीं होना चाहती / पूरा हो जाना / मुझमें बैचेनी जगाता है / फिर तलाशने लगती हूँ मैं / कुछ अधूरा / जिसमें में उलझी रहूँ / कुछ ढूँढ़ती रहूँ / क्योंकि कुछ अधूरा / मुझे असीमित कल्पनाएँ देता है / और मेरी सोच को विस्तृत आकाश देता है।

ये भाव और ऐसी कई कविताएँ कवियित्री के सृजन को बहुत मज़बूत बनाती हैं, नए शिल्प के साथ। शिरीन भावसार के इस काव्य संग्रह में जीवन, स्त्री और प्रेम ऐसे अलग-अलग विषयों की कविताएँ हैं। उनकी कई कविताओं में जीवन दर्शन इस तरह समाया होता है कि पाठक भौंचक्का रह जाता है। उनकी कविताएँ 'अधूरा पन', 'अब तुम मुझको माँ नही लगती', माँ की चाहना, बह जाने दो, सावन, राख, चीत्कार, परीक्षा, चरित्रहीन और देवी या देह जैसी रचनाएँ स्त्री विमर्श के स्वरों को बहुत मज़बूती के साथ उठाती हैं। कई बार यह कहा जाता है कि स्त्री विमर्श जैसा कुछ नहीं होता। लेकिन विषय स्त्री है.. स्त्री की संवेदनाएँ हैं.. और रचना स्त्री के इर्द-गिर्द है, तो उसे कोई भी नाम दे दीजिए.. रहेगा तो वह स्त्री विमर्श ही ।

'बाँध' कविता जो कि प्रबल वेग सी बहती नदियों की बात करती है कि- प्रबल वेग से बहती नदियों पर / बाँध-बाँध दिए जाते हैं , धाराएँ मोड़ दी जाती हैं.. / ज़रूरतों और सुविधाओं के अनुसार / नदियों का पूजन कर प्रफुल्लित होते हैं.. / लेकिन हर पल क्षीण होती धड़कनें क्यों नहीं महसूस करते / दम्भ में अपना मस्तक इतना ऊँचा कर बैठे / नदियों का पाट छोटा होना भी न देख सके।

जितना गहरा पानी बाँध में होता है.. उससे कहीं गहरी यह कविता है। समझ नहीं आता कि वे नदी के माध्यम से स्त्री की पीड़ा कह रही हैं या स्त्री के माध्यम से नदी की पीड़ा...! उनकी ऐसी ही एक कविता है 'बंदिश'- बंदिशों के परे एक जहाँ गुनना चाहती हूँ, मैं / स्त्री होने की सीमा से परे जाना चाहती हूँ मैं / स्त्री और बंदिशों का नाता बहुत पुराना है / अब इन वर्जनाओं से मुक्त होना चाहती हूँ मैं / ज़मीं तो मेरी है ही, अब वो आसमाँ चाहती हूँ मैं। बंदिशों से परे एक जहाँ गुनना चाहती हूँ मैं...।

एक मुट्ठी आसमान के लिए स्त्री को आज समाज में जिस तरह से जूझना पड़ता है.. वो पीड़ा इस कविता के माध्यम से हम सबके सामने आती है। इसी स्वर की एक ओर कविता है 'चक्रव्यूह गढ़ना होगा'। हम आज समाज में देखते हैं कि लोग कहते हैं कि स्त्री, स्त्री की दुश्मन है, यद्यपि मैं ऐसा नहीं मानती। लेकिन पुरुष प्रधान समाज में अवश्य स्त्री को अपनी जगह बनाने के लिए बहुत मेहनत करना पड़ती है और यहाँ कवियित्री के भाव कहते हैं कि- माना कठिन है भेदना व्यूह को / किंतु आगे तो जाना ही होगा / काँटों से गुज़र कर लहूलुहान तो / होना ही होगा, / छोड़ अनुकंपा का भिक्षापात्र / स्वयं पर अधिकार पाना होगा / स्त्री, तुम्हें एकजुट होकर / स्वयं के लिए / स्वयं ही लड़ना होगा।

इस तरह की कई रचनाएँ इस संग्रह में है, जो कि इस तरह के (पितृसत्तात्मक) चक्रव्यूह को तोड़ने की मंशा रखती हैं, और साहस भी। इसी प्रकार इनकी एक ओर कविता है 'मंज़िलें'।

मंज़िलें एक अलग ही तरह की कविता है, ऐसा लगता है कि कवियित्री स्त्री मन के साथ-साथ निर्जीव मन की पीड़ा को भी महसूस करती है और ये उनकी संवेदनशीलता को बहुत ही गहरे शिल्प के साथ उकेरती हुई रचना है।

जिसमें वे कहती है कि- मंज़िलें इंतज़ार करती हैं / बरसों बरस / नींव के पत्थरों की भाँति / अडिग रहती हैं / सराय की मानिंद / कभी बाँहें पसारे / स्वागत को आतुर / कभी आगंतुक के / पलायन को भी स्वीकारती।

और कविता की यह पंक्ति कितना कुछ कह जाती है 'किसी का भी गुज़र जाना महज एक घटना तो नहीं'। मंज़िल पर पहुँचने के बाद राही पुन: जब लौट आता है तब उस मंज़िल की पीड़ा को वे शायद इसलिए उकेर पाती हैं, क्योंकि मंज़िल भी स्त्री लिंग है और स्त्री तो है ही।

इसी प्रकार उनकी एक ओर कविता है 'तमाशा'..., जिसमें वे जिस तरह वर्तमान समय में लोगों की संवेदनशीलता समाप्त होती जा रही है उसको अंकित करती हैं। 'ज़िंदा लोगों की अहमियत / कुछ कम हो गई है दुनिया में, / लोग इंतज़ार करते हैं जनाज़ों का / दिखाने के लिए परवाह / चन्द फूल लिए हाथों में / चेहरे पर ओढ़े मायूसी / शब्दों में लपेटे दु:ख में / ऐसे मिलते हैं लिपटकर / जैसे ख़ैरख़्वाह न हो कोई दूजा।'

उनकी पीड़ा है कि न जाने क्यों आजकल के ज़माने में ज़िंदगी और मौत दोनों ही तमाशा बनकर रह गए है।

एक ओर उनकी बहुत सुंदर रचना है 'धागा'...। धागों की हमारे भारतीय समाज में, हमारे जन-मानस में इतनी गहरे पैठ है क्योंकि हमारे यहाँ हर अवसरों पर धागे का अपना महत्व है। पीपल पर धागे... वट सावित्री के पूजन के धागे.. तो शिवालय के शूल पर मौली के पवित्र धागे, नज़र से बचाने को काले धागे, भाई-बहन के रिश्तों के रेशम के धागे, भगवान की पूजा के यज्ञ की आहुतियों में धागे, कहीं मन्नतों के धागे। इन धागों को लेकर धागे की तरह ही बुनी रचना है ,'धागा'...।

एक डोरी रेशम की / जो मन से मन तक गुज़रती है/ उलझे चाहे जितनी भी वो / थामे एक सिरा तुम / धीमे धीमे ही सही / मुझ तक चले आना / एक धागा मन्नतों का / नाम मेरे भी बाँध आना।

अभी हम आते हैं उनके प्यार वाले भाव की कविता पर, जिसमें अनेक सुंदर रचनाएँ उन्होंने रची है। जिनमें हैं नेह, जीवंत कर दो, थमना, साक्षात्कार, प्रेम की रोशनी, परिभाषित, मुलाकात, वक्त, समर्पण, डोर से बंधा मन, मुझमें तुम और मन का कोना...। ये अनेक ऐसी रचनाएँ हैं जो कि प्रेम को एक अलग ही रंग में रंग देती है...।

जैसे जब परिभाषित रचना में वे कहती हैं कि- 'परवाह नहीं है मुझे ग्लेशियर हो जाने की / क्योंकि मैं जानती हूँ सूर्य सा तपित स्नेह तुम्हारा / मुझे बर्फ़ नहीं होने देगा' ये विश्वास प्रेम में ही संभव है।

इसी तरह प्रेम की रोशनी में वे कहती हैं कि- मन के हर कोने में, / रोम-रोम में प्रेम के उजास भर लाई हूँ / और सीने से लगकर तुम्हारे एक बार पुन: प्रेम से स्निग्ध हो गई हूँ।

इस कविता में वे एक प्रेयसी के रूप में अपनी बात कहती हैं- लिख तो देती हूँ मैं मन अपना / क्यों तुम आँखों से ही पढ़ पाते हो / कोरे-सफेद काग़ज़ पर / क्यों सिर्फ स्याही बिखरी पाते हो / भीगे हुए से शब्दों को देख / क्यों नम नहीं हो पाते हो / दस्तक देते इन शब्दों के लिए / क्यों अपने मन का कोना खोल नहीं पाते हो...।

'मन का कोना' इस कविता में उलाहना शामिल है, क्योंकि ये सार्वभौमिक सत्य हैं कि स्त्रियाँ बिना कहे पुरुष समझ जाए ऐसा चाहती हैं.. जबकि पुरुष वो मौन की भाषा, वो नज़रों की भाषा नहीं समझ पाता और ये ही स्त्री की पीड़ा होती है।

'जीवंत कर दो' कविता में वे कहती हैं- 'उदासियाँ मेरी धीमे-धीमे, / ख़ामोशी की चादर ओढ़ रही हैं / अंतिम साँस से / पहले कुछ पल के लिए ही सही / जीवंत होने का अहसास भर दो..।' हर स्त्री की पीड़ा को उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से उजागर करने का बहुत सुंदर प्रयास किया है।

उनकी कई सारी कविताओं में एक और रचना जो मुझे झकझोर देती है वह है 'चरित्रहीन' इसमें वे कहती हैं कि- हाँ, मैं चरित्रवान हूँ / क्योंकि मैं नही कहती कुछ भी / जब मुझे देख कोई आँख दबा सीटी बजाता है, फिकरे कसता हैं, भद्दे इशारे करता है / तब / मैं आँखें झुकाए, दुपट्टा सँभाले / आगे बढ़ जाती हूँ। / हाँ मैं चरित्रवान हूँ / क्योंकि मैं नहीं कहती कुछ भी / जब कोई राह चलते, अंजान बन / मुझे छूकर निकल जाए / मैं सकुचाती हुई अपराधिन सी / आगे बढ़ जाती हूँ / क्या चुप रहना / स्त्री के चरित्रवान होने का प्रमाण पत्र है?/ किन्तु अब नहीं / लड़ूँगी मैं, खड़ी रहूँगी मैं / स्वयं के लिए / मैं रदद् करती हूँ ऐसे प्रमाणपत्रों को / ऐसी कुंठित, लज्जित चरित्रवानता को / अपने आत्मसम्मान / और रक्षा के लिए मुझे तथाकथित / चरित्रहीन हो जाना स्वीकार है / हाँ... स्वीकार है मुझे... / क्योंकि अब चुप रहना / स्वीकार नहीं।

ये आज के ज़माने में हर स्त्री को, हर कन्या को ये प्रण लेना होगा कि उसे चरित्रवान होने का ऐसा प्रमाण पत्र नहीं चाहिए, जिसे पुरुष की हर लांछना को वो सहे। ऐसा प्रमाण पत्र किसी भी स्त्री को स्वीकार नहीं होना चाहिए।

उनकी अनेक रचनाओं में प्रतिरोध के ये सारे स्वर मुखर हैं, जो विमर्श के लिए बाध्य करते हैं।

एक नया प्रयोग किया गया है संग्रह में जो मुझे प्रभावी लगा, चार पाँच पंक्तियों की लघु कविताओं और कविताओं से संबंधित विचारों के ज़रिए काव्य संग्रह को पाँच भागों में बाँटा गया है जो संग्रह के उस भाग को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। रचनाएँ इतनी खूबसूरती से तराशी हुई हैं कि क्रम देना मुश्किल है कि कौन सी अच्छी है और कौन सी बहुत अच्छी। कुल जमा 124 पृष्ठों का यह काव्य संग्रह जिसमें 70 कविताएँ हैं, किसी यादों की किताब से कम नहीं। अपने आसपास की वे यादें जो शिरीन के मन के एकांत के इकतारे के हर सुर को शब्द बना देती हैं। यह कविताएँ निश्चित रूप से पाठकों के अंतर्मन को छू जाएँगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

चुप क्यों हो बसंती

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : जयंती रंगनाथन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016, मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। इस उपन्यास में अनुभूतियों की सच्चाई है। बसंती के जीवन में आने वाली अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं और उनसे उत्पन्न हर्ष-विशाद के भाव को चित्रों में गूँथकर लेखिका ने उपन्यास की कथा लिखी है। निम्न मध्यम श्रेणी के परिवार के लोगों के जीवन के ताने-बाने को बुनता हुआ एक सामाजिक उपन्यास है। यह हमारे आसपास की दुनिया है। इस उपन्यास में दिखने वाले चेहरे हमारे बहुत क़रीबी परिवेश के जीते-जागते चेहरे हैं। शुरुआत से ही उपन्यास पाठक को अपनी गिरफ़्त में लेने लगता है। उपन्यास के केंद्र में बसंती की मुख्य भूमिका है। यह उपन्यास बसंती, कीर्ति, प्रीति, नियोगी अंकल, इंदु, शेखर, अम्मा इत्यादि पात्रों के जीवन, उनके सुख-दु:ख को बयाँ करता है। उपन्यास में अन्य गौण पात्र हैं मौलश्री, कमल, धीरेन्द्र, प्रमोद। इनके अलावा इस उपन्यास में कीर्ति की जेठानी, कीर्ति के सास ससुर, अभय सिंह, कमल के पिता के अलावा भी कुछ चरित्र है, जिनकी अलग-अलग गरिमा है। उपन्यास के पात्र गढ़े हुए नहीं लगते हैं, सभी पात्र जीवंत लगते हैं। कथाकार ने बड़ी कुशलता से बसंती के तनाव का सृजन इस उपन्यास में किया हैं। यह उस समय की कथा है जब नवयुवतियाँ अपने आपको जानने, समझने और समाज में अपने आप को स्थापित करने की जद्दोजहद से जूझ रही थी। यह आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी नारी को दर्शाने वाला बेहतरीन उपन्यास है। इस उपन्यास में कथाकार पारिवारिक मूल्यों और संवेदनाओं के प्रति पाठकों को आत्मीयता का अहसास कराती है। प्रवाहमय भाषा में लिखा उपन्यास पाठकों को दुर्ग, भिलाई, रायपुर से लेकर बंबई के लोगों के जीवन की झलक दिखलाता है। उपन्यास नारी मन की पड़ताल करता है। इस कृति में स्त्री जीवन के भोगे हुए यथार्थ की कथा है। जयंती रंगनाथन ने कथा नायिका बसंती और कथा नायिका की बहन कीर्ति के माध्यम से स्त्री जीवन के कटु यथार्थ का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। बसंती की आन्तरिक भावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कथाकार ने इस उपन्यास को इतने बेहतरीन तरीक़े से लिखा है कि बसंती की होजरी की दूकान, दुर्ग और रायपुर के टॉकीज, बंबई का जुहू बीच का जीवन्त चल चित्र पाठक के सामने चलता है। कथाकार ने बसंती के अदम्य जिजीविषा और संघर्षमय जीवन का अंकन किया है।

कथानक का प्रारंभ इस तरह होता है कि अम्मा अपनी दो लड़कियों बसंती, प्रीति के साथ अपनी बड़ी लड़की कीर्ति के पति धीरेन्द्र के एक्सीडेंट की ख़बर सुनकर ट्रैन में बिना रिजर्वेशन के बंबई के लिए आरक्षित डिब्बे में चढ़ते हैं जहाँ इनकी मुलाक़ात इंदु और इंदु के देवर शेखर से होती है। इंदु और शेखर बंबई शेखर की शादी के लिए लड़की देखने जा रहे हैं। अम्मा, बसंती और प्रीति पहली बार बंबई जा रहे हैं। इंदु बसंती को कीर्ति के फ़्लैट का रास्ता अच्छी तरह से समझा देती है। कीर्ति के फ़्लैट पर जाकर मालूम होता है कि धीरेन्द्र की मृत्यु हो चुकी है और सारा परिवार अस्पताल में ही है। शाम तक इंतज़ार करने के बाद कीर्ति का परिवार फ़्लैट पर आता है। बसंती देखती है कि डेढ़ कमरे के फ़्लैट में इतने अधिक लोग रहते हैं। अम्मा और प्रीति दस दिन बाद अपने घर दुर्ग लौट गईं। धीरेन्द्र के परिवार के सभी सदस्य अपने-अपने काम में लग गए। एक दिन धीरेन्द्र के डोम्बिवली वाले चाचा कीर्ति के सास-ससुर से मिलने आते हैं और वापस जाते समय वे जुहू बीच जाते हैं और अपने साथ बसंती को और धीरेन्द्र की अविवाहित बुआ को भी साथ ले जाते है। जुहू बीच पर बसंती को इंदु भाभी मिलती है और वे कहती हैं कि वे जहाँ ठहरी हुई हैं वह मकान इस बीच से पास में ही है। वापस आते समय बुआ तो बस में चढ़ जाती हैं लेकिन बसंती बस में नहीं चढ़ पाती है। बसंती को देर से बस मिलती है और वह कीर्ति की ससुराल देर से पहुँचती है।

एक महीने बाद जब धीरेन्द्र की मृत्यु पर होने वाले सारे क्रियाक्रम निपट जाते हैं तब कीर्ति की सास कीर्ति को बसंती के साथ दुर्ग रवाना कर देती है। दुर्ग पहुँचकर बसंती अपनी होजरी की दुकान पर जाने लग जाती है और बैंक में भर्ती की परीक्षा की तैयारी करती है। एक दिन होजरी की दुकान पर कीर्ति का पहला प्रेमी कमल आता है और बसंती से पूछता है कि कीर्ति के

हालचाल क्या है तब बसंती कहती है, तुम स्वयं कीर्ति से जाकर मिल लो। कमल घर पर कीर्ति से मिलता है। वह अभी भी कीर्ति से शादी करने को तैयार है। लेकिन न ही अम्मा और कमल का परिवार इन दोनों की शादी के लिए तैयार हो पाता है। बसंती कीर्ति से कहती है कि तुम एमए का फॉर्म भर दो और फिर से पढ़ाई शुरू करो। प्रीति टीन एजर है। उसका पढ़ाई में ध्यान कम है। एक दिन कीर्ति सामने रहने वाले पुलिस वाले के साथ भाग जाती है, लेकिन बसंती प्रीति को वापस घर ले आती है और अपनी अम्मा से कहती है कि अब प्रीति मेरी ज़िम्मेदारी है। बसंती प्रीति को समझाती है कि यदि तुम हायर सेकंडरी प्रथम श्रेणी में पास नहीं हुई तो तुम्हें दुकान पर बैठा दिया जाएगा और तुम्हारी आगे की पढ़ाई बंद हो जाएगी। बसंती, बैंक में भर्ती के लिए जो परीक्षा हुई थी उसमें पास हो जाती है।

जिस दिन बसंती का बैंक में भर्ती के रायपुर में साक्षात्कार होता है उसी दिन शाम को शेखर और मौलश्री की शादी का रिसेप्शन होता है। बसंती अपने साक्षात्कार के पश्चात् शादी के रिसेप्शन में नहीं जाती है और वह नियोगी अंकल के साथ कॉफ़ी हाउस में कॉफ़ी पीने के बाद टॉकीज़ में मूवी देखने चले जाते हैं। बसंती की नौकरी बैंक में लग जाती है और उसकी पोस्टिंग रायपुर में हो जाती है। बसंती कीर्ति, प्रीति और अम्मा को रायपुर अपने पास बुला लेती है। अम्मा बसंती को शादी करने के लिए पीछे पड़ती है। नियोगी अंकल प्रमोद नाम के एक लड़के से बसंती की शादी के लिए अम्मा को तैयार कर लेते हैं। बसंती भी एक दिन प्रमोद से शादी करने के लिए तैयार हो जाती है। एक दिन बैंक में बसंती के पास इंदु भाभी और शेखर बैंक से पैसे निकलवाने के लिए आते हैं, तब बसंती को मालूम पड़ता है कि शेखर की शादी नहीं हुई है। मौलश्री बंबई छोड़कर रायपुर आने को तैयार नहीं है। इंदु भाभी बसंती से कहती है कि तुम मेरे से घर पर मिलने आना। बसंती उसी दिन बैंक का काम निपटने के बाद इंदु भाभी के घर जाती है तो इंदु भाभी बसंती से कहती है मैं तुम्हें अपनी देवरानी बनाने को तैयार हूँ। क्या तुम शेखर से शादी करोगी। बसंती को तो शेखर पहले से ही पसंद था। बसंती शर्माकर अपनी नजरें झुका लेती है। इंदु भाभी बसंती से कहती है मैं एक दो दिन में शेखर की शादी के लिए तुम्हारा हाथ माँगने तुम्हारी अम्मा से मिलने आऊँगी।

इंदु भाभी बसंती के घर नहीं जा पाती है। उधर नियोगी अंकल बसंती की शादी प्रमोद से करवाने के लिए दबाव डालते हैं। बसंती प्रमोद के साथ शादी से मना कर देती है। नियोगी अंकल नाराज हो जाते हैं। कीर्ति और अम्मा दोनों दुर्ग चले जाते हैं। एक दिन जब बसंती की मुलाक़ात शेखर से होती है तब बसंती को पता चलता है कि इंदु भाभी तो हॉस्पिटल में एडमिट है। जिस दिन बसंती इंदु भाभी से मिलने उनके घर गई थी उसके दूसरे दिन ही इंदु भाभी घर में गिर गई थीं और उनका गर्भ में जो बच्चा था वह भी ख़त्म हो गया था। इंदु भाभी बहुत कमज़ोर हो गई थीं।

एक दिन सुबह जब बसंती बैंक जा रही थी, तब बारिश प्रारम्भ हो गई थी और बसंती भीग भी गई थी। उसी समय शेखर उधर से जा रहा था तो वह अपना कोट निकालकर बसंती को पहना देता है। एक दिन शनिवार को बैंक का काम पूर्ण करने के बाद बसंती वह कोट पहुँचाने इंदु भाभी के घर जाती है तो उसे घर पर सिर्फ शेखर मिलता है। फिर शेखर बसंती को कार से छोड़ने बसंती के घर जाता है और वहीं भोजन करता है। एक दिन कीर्ति और कमल बसंती के घर आते हैं। वे दोनों शीघ्र शादी करना चाहते हैं। एक रात को कमल के पिताजी कुछ गुंडों को लेकर बसंती के घर आ जाते है और कमल को अपने साथ ले चले जाते हैं। थोड़ी देर बाद कमल फिर आता है और कीर्ति से कहता है कि हमारी शादी अभी नहीं हो सकती है। मेरी पिताजी को हार्ट अटैक आ गया है और मैं शादी कर लूँगा तो मेरी मम्मी आत्महत्या कर लेगी। कमल वापस चला जाता है। उसी रात को ही कीर्ति अपने शरीर पर घासलेट डालकर जल कर मर जाती है।

कुछ दिनों पश्चात जब शेखर और बसंती अकेले में मिलते हैं तब शेखर बसंती से अपनी शादी का प्रस्ताव रखता है जिसे बसंती स्वीकार कर लेती है। शेखर और बसंती की शादी हो जाती है। प्रीति आईएएस की तैयारी कर कलेक्टर बन जाती है। बसंती बैंक में प्रोबेशनरी ऑफ़िसर बन जाती है और उसका स्थानांतरण अन्य शाखा में हो जाता है। शेखर रायपुर में अपनी फैक्ट्री डालता है। वह कुछ सालों बाद बंबई में अपनी फैक्ट्री जमा लेता है और फ्लैट भी ले लेता है। बसंती को एक बेटा और एक बेटी हो जाती है। बसंती जब पहली बार बंबई गई थी तब से ही वह बंबई में रहने का सपना देख रही थी। बसंती का पंद्रह साल बाद सपना पूरा हो जाता है।

उपन्यास की भाषा और प्रवाह पाठक को सतत जोड़े रखने में पूरी तरह सक्षम है। उपन्यास में मानवीय भावनाओं और मानसिक संघर्षों का अंतर्द्वंद है। लेखिका ने बसंती के मन की भावनाओं को बखूबी व्यक्त किया हैं। बसंती के जीवन में आए उतार-चढ़ाव की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुयी है। छोटे-छोटे कुल 5 अध्यायों में बँटा यह उपन्यास कथा नायिका बसंती के भीतर की उदासी को उपन्यास के प्रारंभ में ही पाठकों के सामने रख देता है। इस उपन्यास में बसंती का मनोवैज्ञानिक पक्ष विस्तृत रूप से सामने आया है। बसंती की असीम सहन शक्ति और उसकी मानसिक उहापोह का एक-एक रंग साफ दिखाई देता है। कथाकार ने पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक रूप से किया है। कथाकार ने किरदारों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है। उपन्यास समाप्त होने तक सभी पात्रों की मित्रता पाठक से हो चुकी होती है। इस उपन्यास के पात्र अपने ही क़रीबी रिश्तों को परत दर परत बेपर्दा करते हैं। बसंती के मन की गाँठें आसानी से नहीं खुलती हैं।

कथाकार ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा ख़ुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है। जयंती रंगनाथन ने स्त्रियों की समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। कथाकार के अनुभवों की स्पष्ट झलक इस उपन्यास में दिखती है।

000

पुस्तक समीक्षा

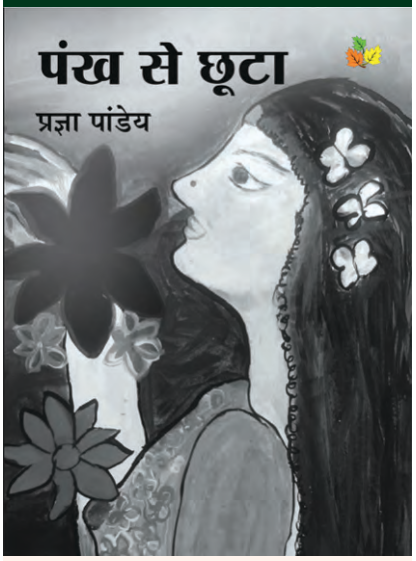

(उपन्यास)

पंख से छूटा

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : प्रज्ञा पांडेय

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016, मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"पंख से छूटा" सघन संवेदना के साथ कथाकार प्रज्ञा पांडेय द्वारा लिखित पहला उपन्यास है। इससे पूर्व इनका एक कहानी संग्रह "ऑफ व्हाइट" प्रकाशित हो चुका है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। प्रज्ञा पांडेय की कहानियों में आधुनिकता का बोध है। वे कहानियों में जीवन के विविध पक्षों पर लगातार लिखती रही हैं। विषयवस्तु और विचारों में नयापन है। प्रज्ञा पांडेय अपने अनुभवों और संवेदनाओं को कथा एवं पात्रों में पिरोकर अभिव्यक्त करती हैं। ज़िन्दगी के दार्शनिक पक्ष उजागर करते हुए प्रज्ञा पांडेय कथा को विस्तार देती हैं। प्रज्ञा जी की लेखनी में सहजता, जीवन का स्पंदन, आत्मिक संवेदनशीलता प्रतिबिंबित होती है।

इस उपन्यास का कथानक इस तरह है - कॉलेज में पढ़ते समय वल्लरी की मित्रता आकाश से होती है। आकाश आईएएस की तैयारी करता है। वह नौकरी लगने के बाद ही वल्लरी से शादी करना चाहता है। आकाश का चयन आईएएस में हो जाता है और वह कलेक्टर बन जाता है। एक दिन आकाश का पत्र वल्लरी के पास आता है कि "मेरी शादी के लिए मेरी माँ ने लड़की देख ली है। वह हमारे इंस्टीट्यूट की है। वल्लरी टूट जाती है। वल्लरी चंडीगढ़ के विश्वविद्यालय में पढ़ाते हुए वहाँ पढ़ने वाले एक छात्र ईशान के पिताजी अविनाश के संपर्क में आती है। वल्लरी और अविनाश एक दूसरे से प्यार करने लग जाते है। वल्लरी अपनी देह अविनाश को सौंप देती है। वल्लरी गर्भवती हो जाती है। अविनाश गर्भ गिराने को कहता है। वल्लरी गर्भ नहीं गिराती है। ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव में तैरती-डूबती वल्लरी अंतत: अपने जीवन की सार्थकता को एक बिंदु पर स्थिर कर देना चाहती है और वह चंडीगढ़ में सब कुछ छोड़कर शिमला अपनी सहेली नलिनी के पास चली जाती है।

शिमला में नलिनी के घर मार्गरेट रहती। वह घर के सारे काम करती है। नलिनी पार्टनरशिप में कॉलेज चलाती है। वल्लरी चंडीगढ़ के स्कूल की नौकरी छोड़कर हमेशा के लिए शिमला नलिनी के पास आ जाती है और वह नलिनी के कॉलेज में नौकरी करने लगती है। शिमला में वल्लरी एक बेटी को जन्म देती है। नलिनी बच्ची का नाम अक्षरा रखती है। वल्लरी उसका नाम अक्षरा सिद्धि रखती है। नलिनी का मित्र शाश्वत बच्ची का नाम अन्ना रखता है। सुमेधा और शाश्वत ने मिलकर एक स्कूल खोला। इसी स्कूल में अन्ना पढ़ने जाती है।

नलिनी का स्कूल की पढ़ाई के दौरान बलात्कार होता है। नलिनी शादी नहीं करती है। मार्गरिट की कहानी भी नलिनी से मिलती-जुलती है। अन्ना दो साल के लिए कनाडा गई। वहाँ से लौटकर डॉक्टर अक्षरा सिद्धि उर्फ़ अन्ना चंडीगढ़ के उसी विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान पढ़ाती है, जहाँ वल्लरी पढ़ाती थी। एक साल बाद ही अन्ना विश्वविद्यालय से अपना इस्तीफा दे देती है। अन्ना और अत्रि मिलकर एक क्लिनिक खोलते हैं जिसमें मनोरोगियों की चिकित्सा होती है। एक दिन अन्ना के क्लिनिक में अविनाश को लेकर उसकी पत्नी मीता आती है। अविनाश अन्ना को देखता है तो उसको वल्लरी की याद आती है। अविनाश बचपन में ही बिगड़ जाता है। अविनाश की माँ की मृत्यु अविनाश के बचपन में ही हो जाती है। अविनाश के पिताजी को पैसा कमाने से फुर्सत नहीं है। वे अविनाश की तरफ ध्यान नहीं देते है। अन्ना अविनाश को अपना पिता नहीं मानती है। वह उसे सिर्फ एक रोगी के रूप में देखती है।

कथाकार ने सभी पात्रों की जीवन शैली और उनकी मन:स्थिति जैसे वल्लरी का भोलापन, सहनशीलता, त्याग और क्षमा करने की अपार शक्ति, नलिनी की अदम्य जिजीविषा तथा असीम सहन शक्ति, अन्ना और सुमेधा का बिंदासपन, आकाश का बेगानापन, धोखेबाज अविनाश की कारस्तानियों, मार्गरेट का भोलापन, मासूमियत, ईमानदारी इत्यादि का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। इनके अलावा इस उपन्यास में शाश्वत, मीता, अत्रि, चंद्रा, ईशान, तरला इत्यादि चरित्र भी हैं, जिनकी अलग-अलग गरिमा है।

उपन्यासकार ने पात्रों के जीवन की जटिलताओं, मन की भावनाओं को जोड़ने, जुड़ने और टूटने के रूप में चित्रित किया है। उलझे हुए धागों की तरह वल्लरी के विचार उसके बीते हुए

कल की ओर ले जाते हैं। जब साथ देने के वादे पूरे नहीं हो पाते, या निभाए नहीं जाते तब तन्हाई उसका मुक़द्दर बन जाती है। वल्लरी के साथ यही होता है। ज़िंदगी के खुरदरे रास्तों पर चलते चलते इस उपन्यास के किरदार भी कभी लड़खड़ाते हैं, तो कभी गिर कर सँभल उठते हैं। कभी अकेले में सिसकते हैं, तो कभी आँसू बहाते हैं और सबके सामने ठहाका मार कर हँसते हैं। नलिनी का संवेदनशील दिल, वल्लरी के दिल के दर्द को समझ पाती है, महसूस करती है। वल्लरी विपरीत परिस्थितियों में अपने भावी जीवन की एकाकी स्थिति से समझौता करने के लिए बाध्य है। इस पूरे उपन्यास में उपन्यास के किरदार आपसे, हमसे, और ख़ुद से संवाद करते रहते हैं। कथाकार के लेखन में आदर्श, संवेदनशीलता व भावुकता का सम्मिश्रण है। नलिनी और वल्लरी ने कामकाजी होकर, स्वतंत्र रहकर समाज में एक मिसाल क़ायम की है। आज समाज में स्त्री अपनी अबला छवि को तोड़कर स्वचेतना से भरपूर नारी की छवि को बनाने मे संघर्षरत है।

उपन्यास के नारी पात्र भावुक, स्नेहमयी, संयमी, श्रद्धा-त्याग की मूर्ति, उदार है। स्त्री पात्र विपरीत समय आने पर चुनौतियों का सामना करनेवाली सशक्त नारी के रूप में दिखाई देते हैं। स्त्री चरित्र स्वयं निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं और अन्याय व शोषण के विरुद्ध नारी मुक्ति के संदेशवाहक भी हैं। उपन्यास की नायिकाएँ परिस्थितियों से समझौता नहीं करतीं; उनसे जूझती हैं और अपना रास्ता स्वयं बनाती हैं दूसरों के लिए पथप्रदर्शक बनती हैं। उपन्यास स्त्री विमर्श की नई ऊँचाइयों को छूता है। कथाकार ने पारिवारिक रिश्तों की महत्ता, वल्लरी व वल्लरी की सहेलियों नलिनी, तरला, मार्गरेट के निश्चल, आत्मीय प्रेम को ख़ूबसूरत शब्दों में चित्रित किया है। उपन्यास के मूल में वल्लरी की पीड़ा, उसका संघर्ष है। वल्लरी अत्यंत मेहनती व सजग स्त्री है। वल्लरी की बेटी अन्ना का चरित्र साहस से भरा हुआ है। कथाकार ने वल्लरी के अदम्य जिजीविषा और संघर्षमय जीवन का अंकन किया है। स्त्री विमर्श के कई प्रश्न इस उपन्यास में मौजूद हैं जिनकी पड़ताल अपेक्षित है। प्रज्ञा पांडेय ने वल्लरी के बहाने स्त्री-जीवन के कटु यथार्थ का मार्मिक चित्रण किया है। मोटे तौर पर यह उपन्यास स्त्री जीवन को लेकर बहुत सकारात्मक और सचेत है।

उपन्यास के शुरुआत में चरित्रों और परिवेश को समझने में कुछ समय लगता है परन्तु धीरे-धीरे उपन्यास पाठक को अपने साथ बाँधता चला जाता है। उपन्यास में वल्लरी का मानसिक ऊहापोह प्रखर रूप में विद्यमान है। वल्लरी की संवेदनाओं को लेखिका ने जिस तरह से इस कथा में संप्रेषित किया है वह काबिले-तारीफ़ है। अविनाश के साथ जीवन में वल्लरी ने उद्दात प्रेम और गहरे विषाद दोनों का अनुभव किया। इस उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है जिसमें इस कहानी की मुख्य किरदार वल्लरी को अपनी चेतना से जूझते हुए दिखाया गया है। उपन्यास में नारीजनित कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है। लेखिका ने माँ की ममता को अत्यन्त आत्मीयता एवं कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। सम्पूर्ण कथा में कथा नायिका वल्लरी के अंतर्मन की जटिल चेतना का विश्लेषण है। वल्लरी अविनाश से मिलने और बिछड़ने के बाद जिन अनुभवों से गुज़रती है, उन अनुभवों का वह पुनरावलोकन करती है, जिज्ञासु पाठक वल्लरी की कशमकश के साक्षी बनते हैं। कथा में अविनाश की धूर्तता के दर्शन होते हैं।

उपन्यास की कथा का कैनवास बेहतरीन है। इस कथा में शिमला के बहुत ही ख़ूबसूरत घाटियों और प्रकृति का परिवेश है। इस उपन्यास को पढ़ने वाले की उत्सुकता बराबर बनी रहती है वह चाहकर भी उपन्यास को बीच में नहीं छोड़ सकता। उपन्यास की कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है। उपन्यास में जीवन के हर शेड के रंग है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए आप वल्लरी, नलिनी, मार्गरेट, अन्ना, आकाश, अविनाश, सुमेधा, अत्रि, शाश्वत, ईशान, मीता, चंद्रा इत्यादि किरदारों से जुड़ जाते हैं। उपन्यास के पात्र गढ़े हुए नहीं लगते हैं, सभी पात्र जीवंत लगते हैं।

उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। यह आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी नारी को दर्शाने वाला बेहतरीन उपन्यास है। कथाकार ने वल्लरी की आन्तरिक भावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में एक तरफ अदम्य साहस, त्याग और जिजीविषा है तो दूसरी ओर नियति एवं पुरुष सत्तात्मक मानसिकता है।

उपन्यास में मानवीय भावनाओं और मानसिक संघर्षों का अंतर्द्वंद्व हैं। लेखिका ने वल्लरी के मन की भावनाओं को बख़ूबी व्यक्त किया है। इस उपन्यास में वल्लरी का मनोवैज्ञानिक पक्ष विस्तृत रूप से सामने आया है। वल्लरी की असीम सहन शक्ति और उसकी मानसिक ऊहापोह का एक-एक रंग साफ दिखाई देता है। इस कृति में वल्लरी की पीड़ा, संवेदना, पुरानी परंपराओं और उसकी जकड़न में कसमसाती हुयी संवेदनशील नारी का यथार्थ अंकन हुआ है। कथाकार ने पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक रूप से किया है। कथाकार ने किरदारों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है। जीवन के गहरे मनोभावों को लेखिका ने पात्रों के माध्यम से अधिकाधिक रूप से व्यक्त किया है। इस उपन्यास की कथा में पहाड़ी संस्कृति की सौंधी महक है। वे अपने कथा साहित्य के द्वारा भारतीय मूल्यों को पुर्नस्थापित करती हैं। इनके कथा साहित्य में सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना एवं नारी नियति का यथार्थ चित्रण उभरकर सामने आता है।

प्रज्ञा पांडेय के कथा साहित्य में रोचकता तथा सकारात्मकता पाठकों को आकर्षित करती हैं। प्रज्ञा पांडेय के कथा साहित्य में स्त्री के कई रूप दिखाई देते हैं। उन्होंने लोगों के विभिन्न भावों को मार्मिकता, सहजता और सकारात्मक रूप से अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्त किया हैं। जीवन के गहरे मनोभावों को लेखिका ने पात्रों के माध्यम से अधिकाधिक रूप से व्यक्त किया है। उपन्यास की भाषा और प्रवाह पाठक को सतत् जोड़े रखने में पूरी तरह सक्षम है।

000

पुस्तक समीक्षा

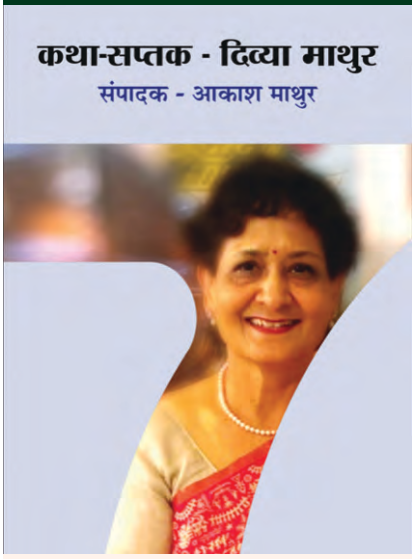

(कहानी संग्रह)

कथा सप्तक - दिव्या माथुर

समीक्षक : रेनू यादव
संपादक : आकाश माथुर
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल- +91-9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. रेणु यादव
फेकल्टी असोसिएट, भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय यमुना एक्सप्रेस-वे, गौतम बुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा – 201312
ईमेल- renuyadav0584@gmail.com

यू.के. में बसे प्रवासी भारतीय साहित्यकारों में महेन्द्र दवेसर दीपक, उषा राजे सक्सेना, तेजेन्द्र शर्मा, ज़किया जुबैरी, डॉ पद्मेश गुप्ता आदि नामों में से दिव्या माथुर एक ऐसा नाम है जो अपनी संवेदनशील व्यक्तित्व और संजीदा लेखन के लिए जानी जाती है। दिव्या माथुर की अब तक आठ कहानी संग्रह, आठ कविता संग्रह, दो उपन्यास और बाल पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, प्रवासी लेखन पर उन्होंने सात महत्त्वपूर्ण संग्रहों का सम्पादन भी किया है। इन्हें पद्मभूषण मोटुरी सत्यानारायण लेखन सम्मान, आर्टस-काउन्सिल ऑफ इंग्लैण्ड के आर्ट्स अचीवर और वनमाली कथा सम्मान जैसे अनेकों पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। लेखिका वातायन-यूके की संस्थापक, आशा फाउंडेशन की संस्थापक-सदस्य और वैश्विक हिन्दी परिवार की कार्यक्रम प्रमुख हैं। उनकी पुस्तकें अनेकों विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं।

हाल ही में, शिवना प्रकाशन से आकाश माथुर द्वारा संपादित पुस्तक 'कथा-सप्तक - दिव्या माथुर' में उनकी सात कहानियों का चयन किया गया है। इस संग्रह की प्रवासी बोध के साथ लिखी गई सभी कहानियाँ आधुनिक समाज का दर्पण कही जा सकती हैं।

इस संग्रह की पहली कहानी '2050' उत्तरआधुनिक समाज की एक सशक्त पेशकश है। इस कहानी की पहली पंक्ति है- "ऋचा की आँखों में उच्च वर्ग का सा आकाश उतर आया, एकबारगी उसे लगा कि वह भी इस्पात में ढल सकती है। गँवार लोग ही रोते हैं, उच्च वर्ग के लोगों के सपाट चेहरों पर कभी देखा है किसी ने कोई उल्लास या उदासी! ये लौह युग है, यंत्रों और तंत्रों से संचालित। यहाँ भावनाओं का क्या काम?"

समय बदल रहा है और अब हम पत्थर ही नहीं लौह बनते जा रहे हैं। यह कहानी है रंगभेद

की, सांस्कृतिक भेदभाव की, रोबोटिक ज़िंदगी की और सत्ता के हाथों में मानव-जीवन के खिलौना बन जाने की। यदि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का वर्चस्व इसी प्रकार व्याप्त रहा तो वह दिन दूर नहीं कि यह कहानी साक्षात् रूप से हमारे जीवन का हिस्सा होगी। इस कहानी के अनुसार समस्त जनता के डी.एन.ए. परिषद के पास सुरक्षित हैं और जहाँ हाई-आई-क्यू वाले जोड़े को ही बच्चा पैदा करने की अनुमति दी जा सकती है। यदि बच्चा एबनॉर्मल हो जाए तो समाज सुरक्षा परिषद की निगरानी में उस पर रिसर्च होगी कि बावजूद सब एहतियातों के ऐसा कैसे संभव हुआ, आत्महत्या करने से पहले आत्महत्या परामर्श परिषद में रजिस्टर करवाना होगा, उनके दूर-दूर के रिश्तेदार और मित्र भी इस रिसर्च की चपेट में आ जाएँगे।

अक्षम मनुष्यों, इसलिए दब्बू कौम की संकल्पना साकार की जाएगी। परिवहन परिषद् के पास सभी के पहचान के चिप्स होंगे, आप कहाँ गए, आपने किससे बात की, सब रिकॉर्ड होगा। रोबोट दिन में सड़कें साफ कर रहे होंगे पर रात में ज़रूरत होगी, भविष्य में मैनुअल लेबर की कमी को पूरा करने के लिए एक दब्बू कौम की योजना के अंतर्गत मनुष्यों में बीमारियों के जींस इन्सर्ट किए जाएँगे।

ये घटनाएँ लंदन में घटित होती हैं। लंदन से प्रवासी भारतीय भारत वापस नहीं लौट सकते क्योंकि रिपैट्रियेशन के लिए भारत सरकार प्रत्येक व्यक्ति से दस लाख रुपये और उसके बाद रहने और घर बसाने के लिए अलग से पैसा माँग रही है। यह उत्तर-आधुनिक समय का भयानक काल्पनिक चेहरा है, जिसके सत्य होने से मानव के ख़तरे में होने की पूरी संभावना है।

'पंगा' कहानी भी रंगभेद पर आधारित कहानी है किंतु '2050' से बिल्कुल उलट, एक सकारात्मक दृष्टिकोण लिए। आदम और हव्वा या 'एडम एण्ड ईव' की कहानी हम वर्षों से सुनते आ रहे हैं कि ईव एडम की पसली से बनी है, वह एडम पर आश्रित है। 'एडम एण्ड ईव' घरेलू हिंसा पर आधारित है, इस कहानी में एडम और ईव की अवधारणा को बदलती हुई नज़र आती है, वह ईव नहीं ईवा है, जो एडम के शोषण का विरोध करके अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर सकती है।

सपना सत्य होने का विश्वास यदि अंधविश्वास में बदल जाए तो 'अंतिम दिन' कहानी ऐसे अंधविश्वासों का खुलासा करती नज़र आती है। माया सपने में देखती है कि तीन दिन बाद उसकी मृत्यु हो जाएगी और वह अपनी मृत्यु की पूरी योजना तैयार कर लेती है। उद्देश्यहीन जीवन से वह मृत्यु को बेहतर मानती है, उद्देश्य उसकी जिजीविषा को जगाता है। इसलिए मनुष्य के पास हताशा भरे युग में किसी न किसी उद्देश्य का होना ज़रूरी है; लेखिका पाठकों को ऐसे अंधविश्वास से खींचकर यथार्थ के धरातल पर ले आने का प्रयास करती है।

'ज़हरमोहरा' कहानी स्त्री-मनोविज्ञान की कहानी है। संदेह एक ऐसी बीमारी है जो एक बार इंसान के दिल में घर कर जाती है तो बढ़ती ही जाती है। ख़ासकर तब जब पत्नी को पता हो कि प्रेमिका उसके घर में डेरा डाले बैठी हो। महिका का विवाह जेसन से हो तो गया पर लीसा का प्रेम अब भी उसके पति के जबकि वह अपने पति डेविड से तलाक ले चुकी है और जेसन का पूरा काम धंधा सँभाल रही है।

दरअसल शक यथार्थ से अधिक कल्पनाओं का हिस्सा होता है; कल्पना और संभावनाओं के बीच महिका जान देने की सोचती है किंतु भारतीय परंपरा में बेटियाँ दुल्हन बन कर जाती हैं, जहाँ से वापसी का कोई रास्ता नहीं होता। ऐसे में भयभीत महिका लीसा को बर्दाश्त करते हुए वहीं रहने के लिए बेबस है क्योंकि उसने माँ और भाभी के विरुद्ध जाकर यह विवाह किया था।

त्रिकोणीय प्रेम में अधिकार भावना और प्रेम का स्खलन दोनों ही ईर्ष्या का कारण बनते हैं। पत्नी का अपनी जगह छिन जाने के डर से लगातार प्रेमिका यानी दूसरी औरत को बेदखल करना चाहती है और प्रेमिका अपनी जगह बनाने की जद्दोजहद में हमेशा अधूरी रह जाती है। इस कहानी में लेखिका दोनों ही नायिकाओं में अपनी जगह बनाने की जद्दोजहद और जगह न बन पाने पर ईर्ष्या भाव को बख़ूबी दर्शाती है। देखा जाए तो लीसा अपने प्रेमी जेसन के लिए सब कुछ करके हारी हुई-सी महसूस करती है। विशेषत: जब उसे महिका के प्रेग्नेंट होने की ख़बर मिलती है तो वह अपनी हार मान लेती है, जेसन की बेरुख़ी उससे बर्दाश्त नहीं होती।

'संदेह' गैसलाइटिंग एवं बाल शोषण की कथा है। ब्रायन अपनी पत्नी अनीता को डिप्रेस्ड वाइफ़ बनाने की पूरी कोशिश करता है और दूसरी तरफ बेटी आन्या के कोमल मन में उसकी अपनी माँ के प्रति नफ़रत की भावना भरता है। आन्या अपनी माँ से नफ़रत तो करती ही है, अपने छोटे भाई जौशुआ को भी परेशान करती है। अनीता को डिप्रेस्ड बनाने के पीछे ब्रायन का अपनी बेटी के साथ मनमानी करने का पूरा उद्देश्य होता है, जिसमें वह कामयाब भी हो जाता है। ब्रायन के काम से बाहर जाने के बाद आन्या की हालत देखकर अनीता परिस्थितियों पर विजय पाने की पूरी कोशिश करती है। आन्या से सच्चाई उगलवाना, पुलिस से सहायता लेना आदि उसे न सिर्फ़ गैसलाइटिंग से मुक्ति दिलाता है अपितु अपनी बेटी को वह सुरक्षा भी प्रदान करती है।

'नीली डायरी' अत्यधिक यौन इच्छा रखने वाले एक पुरुष की कहानी है, जो अपनी इच्छापूर्ति के लिए यौवनाओं और महिलाओं को न केवल अपना निशाना बनाता है, बल्कि अपनी डायरी में अपने शारीरिक संबंधों की गिनती और उनका लेखा-जोखा भी रखता है। उसका लक्ष्य सौ स्त्रियों से संबंध बनाने का है किंतु "विवाह एक गोपनीय अंत्येष्टि की रस्मों को निभाने" वाली स्नेहा से प्रेम होने के बाद उसे सब कुछ निरर्थक लगने लगता है; प्रेम में सेक्स गौण हो जाता है।

प्रवासी साहित्यकार दिव्या माथुर इन सभी कहानियों में विकसित देश में प्रवासियों की अनुभूति, पीड़ा, अंतर्द्वंद्व और यथार्थ को सामने ले आती हैं और उनकी संवेदनाओं को उभारने में सफल होती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

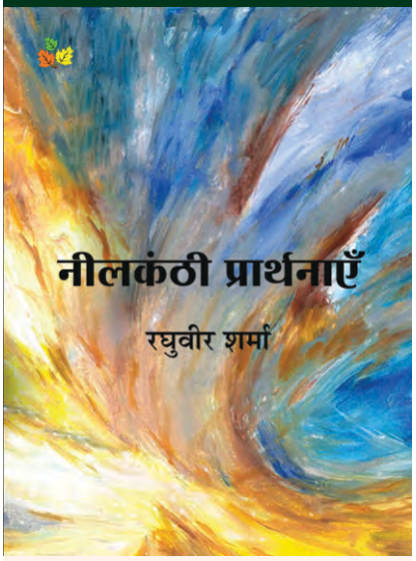

(नवगीत संग्रह)

नीलकंठी प्रार्थनाएँ

समीक्षक : डॉ. रंजना गुप्ता

लेखक : रघुवीर शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. रंजना गुप्ता
सी /172 विहान
निराला नगर
लखनऊ, उप्र 226020
मोबाइल- 9936382664

'मनोभावों के सहज संप्रेषण का एक सशक्त माध्यम है गीत! सतरंगी त्योहारों के देश भारत में आल्हा पँवारा चंद्रायणी जैसी गाई जाने वाली लोकगाथाओं में रस राग विहाग विछोह आदि तत्व सदियों से घुले मिले हैं, आंतरिक अनुभूतियों की परंपरागत लय आज भी सौंधी माटी के कण कण में प्रवाहमान है। विकास कालक्रम का नियम है, गीत से क्रमशः आसन्न होता नवगीत! सीधे जुड़ता है खेत, गाँव, पास-पड़ोस, रोटी-पानी, घर-बार अथवा इंद्रधनुष के एकसार होते हुये रंगों से, अपनी संपूर्ण ऊर्जा के साथ जो जीवन के खारे अंगों, उपांगों में समाहित होकर गतिमान रहता है, गेयता का लय का यही गति बोध तो शिव है साहित्य के मंगल कलश का यही शिव स्वास्तिक बना रहे, आलोक पर्व की कंचनी उजास की तरह अजर अमर!' (निर्मल शुक्ल) गीतों में भावनाओं को लोक धर्मिता, राजनीतिक गुटबाज़ियों पर प्रहार और मानवीय सहकार के साथ प्रस्तुतीकरण के लिए जाने जाते हैं - रघुवीर शर्मा !

रघुवीर जी संवेदना को अपने धनाढ्य शब्द भंडार के साँचे में पिघला कर जो काव्यात्मक संरचना ढालते हैं वह रचना साँस लेती धौंकनी सी जीवंत लगने लगती है। उन्हें आज की अव्यवस्था से राजनीतिक दाँव-पेंचों से सख़्त चिढ़ है, पर वे अपनी सीमा से भी परिचित हैं, उनके शब्द-शब्द में एक तीखी सी असहज हुंकार भी है, और विवशता का आर्तनाद भी। सार्थक गीतों की इस अद्भुत जिजीविषा में सम्मिलित होता है, उनका ध्येय, मानवीयता ही नहीं वरन् संपूर्ण सृष्टि, यहाँ उनकी दृष्टि में समाहित है, जल, जीवन, वृक्ष, प्रकृति, गाँव के साथ उसका संपूर्ण परिवेश, सभी उनकी चिंताओं की परिधि में बारी-बारी घूमते रहते है। वे अपने अकिंचन साहित्यिक और व्यक्तिगत सीमाओं से ख़ूब परिचित हैं, उसे ढाल बना कर वे अपने शब्दों को तराशते अवश्य हैं, लेकिन उनके उदास पर उदार प्रयास कहीं भी लघुता का स्पर्श नहीं करते। उनका यह दूसरा गीत- नवगीत संग्रह है 'नीलकंठी प्रार्थनाएँ'। इस संग्रह के अंत में उन्होंने अपने गाँव हरसूद को भी शिद्दत से याद किया है, वास्तव में कोई भी व्यक्ति अपने जन्म स्थान को विस्मृत नहीं पाता, यह अलग बात है कि वह उसे शब्दों द्वारा प्रस्तुत कर पाये या सामर्थ्यहीन होने के कारण न कर पाये। या न करना चाहे।

पाश्चात्य विचारक हडसन तो काव्य में जीवन की व्याख्या, कल्पना और मनोयोग तीनों का संयोग होना मानते हैं; 'वास्तव में कविता सुनिश्चित करती है कवि की अमरता !' इसीलिए भर्तृहरि तो स्पष्ट कहते है, कि कवि का भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है, पर उसका जरा-मरण से रहित यशःशरीर सदा जीवित रहता है, काव्य या साहित्य के रूप में—

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरः
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयं'

रघुवीर जी का मन कच्चे काँच सा निर्मल है, सो उन्होंने अपने गीत के माध्यम से अपना मन को ही उकेरा है, अपने वैचारिक अंतर्द्वंद्वों को भी एक नया आकाश उन्होंने इन गीतों में दिया है। रघुवीर जी राजनीतिक तिकड़मों और झाँसों की अच्छी ख़बर रखते थे, इन राजनैतिक चरित्रों का अभिप्राय उन्हें ठीक से ज्ञात रहता है, उनकी दृष्टि, उनकी मानवीय चरित्रों को परखने की क्षमता अद्भुत है -

'पृष्ठ उनके आँकड़े हैं / और व्यथा को हाशिया / चमकते विज्ञापनों में / हँसता रहा बहुरूपिया / हैं कहाँ पगडंडियों को राज पथ की मान्यताएँ'

मनुष्य अपनी सहिष्णुता के लिए, दया और मानवीय संवेदनाओं के लिए ही निर्मित किया गया था, सृष्टि द्वारा, पर आज का मनुष्य अपनी क्रूरता और संवेदनहीनता के लिए ही जाना जाता है, उसका भौतिक रूप से तो समाजीकरण हो गया है, पर भीतर से वह आज भी दरिंदा है, मनुष्य ने आज पूरी सृष्टि उजाड़ कर रख दी है, न जंगल में जानवर के सुरक्षित रहने की जगह है, न सागर में कोई जल-जीव शांति से जी रहा है और न आकाश में पक्षी को उड़ने के लिए पंख खोलने की आज़ादी है, सारी व्यवस्था बिगड़ चुकी है, धरती अपशिष्टों से कराह रही है, पर्यावरण प्रदूषण अपने चरम पर है, पहाड़, धरती, सागर, वायु और पेयजल सब विषैले हो चुके

हैं, बंजर और ज़हरीली होती धरती की ऊपरी परत स्वास्थ्य वर्धक खेती को भी ले डूबी है। सारी धरती आज मनुष्य की जागीर बन चुकी है किसी और के जीवन की उसे अब कहाँ परवाह है-

'पहने हुए शिकारी सारे शुभचिंतक का बाना / जंगल के चप्पे चप्पे पर क़ाबिज़ हैं जागीर समझ कर / रुकी हुईं है सभी उड़ानें धुआँ-धुआँ मौसम के तेवर / मुश्किल में इस वन के पाँखी बनते रहे निशाना'

दैनिक जीवन आज मनुष्य का इतना कठिन और दुर्निवार बन चुका है कि सहमी सिसकती जिजीविषा उद्विग्न और इतनी उत्पीड़ित है, कि जीवन का कोई चिह्न अब उसमें नहीं दृष्टिगत् होता-

'रोज़ झुलसती उम्मीदों को ज़िंदा रखना मजबूरी / समय-समय पर लोक तंत्र के होती है वे बहुत ज़रूरी / विज्ञापन की खुशहाली को सत्ता के उमराव कहेंगे / संविधान के सुभाषितों से घायल मन के घाव कहेंगे'

छल कपट और दुष्टता ही आज के इंसान का मूल चरित्र है, वह आज स्वार्थ में इतना डूब चुका है कि उसे अब सही-ग़लत का फ़र्क़ करना नहीं आता। चमचमाते शहरों की विलासिता और गगन चुंबी अट्टालिकाओं में दिन-रात जश्न मनाने के लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है और प्रपंच ऐसा करता है कि उसके ढोंग को सामाजिक विज्ञापन के माध्यमों में केवल अनुशंसा ही मिलती रहती है।

'धूप से जो दूर हैं वे पसीने के प्रवक्ता / शब्द जिनके छल भरे बन गए वे प्रखर वक्ता'

शुभ नहीं है कुछ भी ! रघुवीर जी कहते हैं, अनिष्ट तो सिर पर आकर खड़ा हो गया है, उसके लक्षण भी स्पष्ट हैं, जीवन अब कहाँ सुरक्षित है ?-

'डबरों में अधमरी मछलियाँ /आसहीन हैं शंख सीपियाँ / निर्वसना निरुपाय नदी अब / कैसे अपनी लाज छुपाए / शापित हैं खेतों की फ़सलें / बदल रूठे मौसम बदले / खोज रही है बस्ती इसमें / लुप्त हुई जीवन रेखाएँ !'

दुनिया में सदा से दो वर्ग रहे हैं एक निम्न वर्ग और एक उच्च वर्ग। यह सामाजिक व्यवस्था केवल जाति से संबंधित नहीं है, बल्कि अर्थ और बल से भी संबंधित है, सदा ही रहा है। कवि की संचेतना और संवेदना हमेशा ही संस्पर्श करती है ऐसी बिंदुओं को, विडंबनापूर्ण स्थितियों को ! कवि चिंतित भी है और दु:खी भी-

'उनके हिस्से धवल चाँदनी कृष्ण पक्ष अपने हिस्से है / वे मायापति वैभव उनका लोकतंत्र के हम मजदूर / मतपेटी तक सफ़र हमारा राजपथों से कोसों दूर / अख़बारों से जनहित ग़ायब केवल उनके ही क़िस्से हैं'

कुटिल और क्रूर समय जब निराशाओं के लिए कुख्यात हो चुका हो, तब भी लगातार उम्मीद की डोर थामे रहना और सकारात्मकता के साथ लगातार कार्य करते रहना सामाजिक स्थापनाओं के अनुरूप भी विरुद्ध भी, आसान नहीं होता, पर आत्मबल का जुझारूपन हर असंभव को संभव कर देता है।

आज़ादी का जश्न तो हर वर्ष मनाया जाता है पर आज़ादी कितने लोगों के लिए है या कितने लोगों ने आज़ादी का सुख भोगा, इसका उत्तर शायद किसी के पास नहीं है, वस्तुत: आज़ादी एक आभासी ख़याल सी है जो मन को तो लुभाती है, पर हक़ीक़त में बहुत रुलाती भी है क्योंकि आमजन को इससे ज़्यादा मतलब नहीं है, उसके लिए कमर तोड़ मेहनत करके ही दो रोटी मुश्किल से पहले भी मिलती थी और आज़ादी के बाद भी वही सब कुछ है, कुछ भी नहीं बदला- 'आज़ादी के जश्न बहुत हैं / गुम हैं सब प्रतिफल / झोपड़ पट्टी में अँधियारा राजमहल रौशन दृश्य हीन है कोहरे में संसद के अधिवेशन /अख़बारों में छाप रहे हैं प्रतिदिन शुभ मंगल'

रघुवीर जी ने अपने जन्मस्थान को बहुत अधिक याद किया है अपने गीतों में, उनका जन्म स्थान हरसूद गाँव है जो बिहार के धारुखेड़ी, (जिला खण्डवा) का ही एक गाँव है, जिसे वे बार-बार डूबने से बचाने चाहते हैं, हरसूद गाँव के मंदिर के कलश की ही भाँति उनका मन भी उसकी यादों में अक्सर डूब जाता है- 'सुधियों के भरे घट ख़ुशियों से रीते / छोड़े हरसूद को बरस कई बीते/ खूँटे पर लाकर बाँध दिया गाय सा / दौड़ता हाँफता असमय असहाय सा / गुज़र गई एक उम्र दिवास्वप्न जीते'

गाँवों को शहरों का नशा चढ़ गया है, उनका भोला पन उनकी सरलता उनकी भाषा और उनकी बोली बानी की मिठास सब लगभग ग़ायब हो चुकी है, गाँवों से गीतकार को बहुत शिकायतें हैं, पर गीत कवि का मन कर भी क्या सकता है, बस उदासी से ये बदलाव लिखने के सिवा और क्या है उसके पास- 'गाँव तुम क्यों कर बदल गए / नदियों जैसे सरल तरल तुम / शीतल छाया अमराई / खेतों की मेढ़ों पर बजती फसलों की ज्यों शहनाई / किंचित् सुविधाओं के भ्रम में ही तुम इतने बहल गए ?'

रघुवीर जी संवेदनशीलता के मुहाने पर गीत नवगीत के विविध आयाम बिखरे हुए हैं, कुछ अधिक नहीं रच कर भी इन्होंने जो भी रचा वह समय की शिला पर अंकित रहेगा, इनके गीतों में लय बोध, भाषा का संतुलित और टटका प्रयोग दृष्टव्य है, उन्होंने गाँव की पृष्ठभूमि को बहुत अधिक महत्त्व दिया है, वास्तव में गाँव की मिट्टी हमारी माँ जैसी होती है, क्योंकि जो समय जीवन का हमने वहाँ बिताया वह कभी वापस नहीं आ सकता, पर दर्द के कगूँरों पर टिकी हमारी स्मृतियाँ सदा उन्हें गुनती रहेंगी जन्म भर ! रघुवीर जी की यही सघन वैयक्तिता और उत्कृष्ट वैचारिकता उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में झलकती है।

वास्तव में हिन्दी काव्य की मुख्य धारा में नवगीत की उपस्थिति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है, काव्य की यह विधा सीधा जनता से संवाद है, जनपक्षधरता ही इसकी सबसे बड़ी कसौटी है, जो जनपक्षधर नहीं, हाशिए के समाज का दर्द नहीं लिख सकता, वह नवगीतकार कैसे हो सकता है ? हिन्दी की अन्य काव्य धाराओं का जो महत्त्व है, वही नवगीत का भी है, टटकी भाषा, बिम्ब धर्मिता, जन जन की पीड़ा की त्रासदी का ही तो मंच है ये, हिन्दी कविता से यदि नवगीत आज निकाल दिया जाए, तो एक ऐसा शून्य उपस्थित होगा, जिसकी पूर्ति आने वाली सदियों में भी असम्भव होगी।

000

पुस्तक समीक्षा

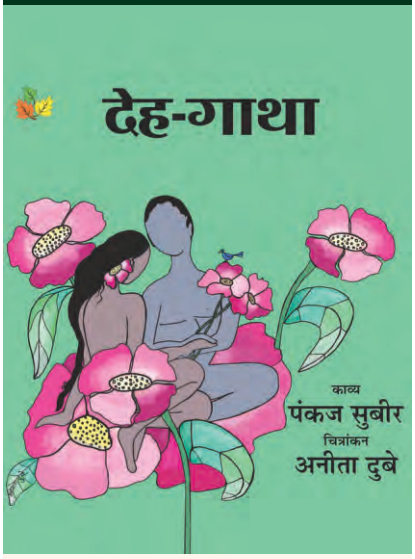

(खण्ड काव्य)

देह-गाथा

समीक्षक : रेखा भाटिया

लेखक : पंकज सुबीर

रेखांकन : अनिता दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

रेखा भाटिया
9305 लिंडन ट्री लेन, शार्लेट, नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए-28277
मोबाइल- 704-975-4898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

पंकज सुबीर का लघु खण्ड काव्य 'देह-गाथा' अभी हाल ही में शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस लघु खण्ड काव्य के लिए अनीता दुबे ने रेखा चित्र तैयार किए हैं। एक नज़र में यह खण्ड काव्य किसी काम सूत्र-सा प्रतीत हुआ, सोचा था कुछ दिन मौन रहकर आराम करूँगी और इस क़िताब को पूरी तरह दिमाग़ ख़ाली कर सबसे अंत में पढ़ूँगी। एक बार पढ़ना शुरू किया था, दिमाग़ में मची खलबली और व्यस्तता ने इसे यूँ ही पढ़ने की अनुमति नहीं दी। वैसे पंकज सुबीर की क़िताबों को मैं हवाई सफ़र, यात्राओं या एकांत में अपनी दुनिया में सिमट कर पढ़ना पसंद करती हूँ। उनका लेखन दुनिया और पाठक के बीच एक रेखा खींच कर अपनी ओर खींच लेता है। दिल और दिमाग़ दोनों के तारतम्य को एक सार में रखना पड़ता है उनकी रचनाएँ पढ़ने के लिए। गंभीर लेखक पंकज सुबीर की काव्य पुस्तक 'देह गाथा' सूर्य की पहली किरण है, जो भोर में सूर्य के चमकने से पहले सिंदूरी छटा बिखेरती दिन के आगमन की रोमांचित दस्तक देती है, युवावस्था के सूरज के उदय से पहले की कोमल भोर की किरण समान है यह 'देह गाथा'।

यह काव्य पुस्तक एक ही साँस में तरन्नुम-सी बजती, लहरों पर डोलती, झीने-झीने मन में डोलती समुंदर के उस गहरे रहस्य को परत-दर-परत खोलती है, जिसे हर युवा मन उस ज़माने में सात सौ तालों में बंद कर चाबी ख़ुद से भी छिपा लिया करता था- "है अतीत का धुँधला-दर्पण, उसमें धूमिल-सा प्रतिबिम्बन, सदियों से ठिठका सुधियों में, जीवन का वह प्रथम-प्रभञ्जन", "अब जो सोचूँ तो लगता है, कितनी सदियों बात पुरानी। बीत चुकी है वर्षों पहले, किन्तु नवल अनुराग-कहानी। एक प्रतीक्षारत-अलाव को, जब था मिला प्रथमत: ईंधन।" प्रथम स्पर्श शायद भूलें लेकिन प्रथम बार जब सम्पूर्ण सृष्टि का द्वार खुल जाता है, पहले एहसास का मादक पहला गहरा अनुभव जिसे देहों ने भोगा, उस चरम को जो सृष्टि का सत्य है हर जीव के लिए। जिससे प्रेम उपजता है, नव अंश की ऊर्जा जन्म लेती है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी की पंक्तियाँ, "अंत और अनन्त के तम-गहन-जीवन घेर, मौन मधु हो जाए, भाषा मूकता की आड़ में, मन सरलता की बाढ़ में जल-बिन्दु सा बह जाए, सरल

अति स्वछन्द", मौन की उसी अनंत कसमसाती नदी को, जहाँ जटिल सरल हो जाता है और सरल अति जटिल, पंकज सुबीर ने बड़े चाव से बहा कर गहन मंथन किया है।

"तभी मौन की सार्थकता का, मिला हृदय को प्रथम ज्ञान था।" यह उनका मौन प्रचंड गुंजन है, " चेष्टाएँ थीं मूक-मूक-सी, शब्दहीन-सा था आंदोलन" कामदेव के इस सम्मोहन को शब्दों में उतार पाना बहुत टेढ़ी खीर होती है। देहों का गणित चरित्रों के गणित से गहरा जुड़ा है, भारत जैसे देश में जहाँ 'कामसूत्र' की रचना की गई हो, खजुराहो जैसे मंदिर का निर्माण किया गया है, वहाँ आज भी इस विषय पर पहेलियों में बात की जाती है। यह सही है वक़्त के साथ आते सामाजिक, मानसिक और आर्थिक बदलाव ने वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया है, समाज, सोच, रहन-सहन, पहनावे, जीवन शैली, मीडिया, सिनेमा में बहुत खुलापन आ गया है जिससे अश्लीलता और फूहड़पन सहज सामाजिक जीवन में व्याप्त हो गया है। यहाँ कहना बहुत उचित होगा पंकज सुबीर की लेखनी ने अश्लीलता के ढोंग से उनकी काव्य रचना को साफ़ बचाकर, नीरसता और दूरी बनाकर एक बहुत उच्च स्तर के कलात्मक काव्य की रचना की है। चित्रकार अनीता दुबे ने इस काव्य के हर चित्र का चित्रांकन उसी कुशलता से उसी स्तर का किया है। इस काव्य के हर शब्द के दर्पण को चित्रों में सुवासित कर सार्थक किया है। जैसे प्रेम के लिए परस्पर दो की अनिवार्यता और पूरकता होती है, जिसकी कल्पना एक दूसरे के बिना अधूरी है।

"मर्यादा की सीमा से कुछ, बाहर हम आए थे चल कर, कायाएँ कुसुमित होती थीं, एक नवल साँचे में ढल कर, प्रलय बीतने पर होना था, नवल-सृष्टि का फिर से सर्जन।" एक यायावर मन से सारे बाँधों और बंधनों को तोड़ कर प्रथम अनुभव के सौंदर्य को बेझिझक, बेबाकी से अपने मनोभावों को प्रकट कर पंकज सुबीर ने उत्सव मनाया है। उस उत्सव की तरंगों में आह्लादित सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का समन्वय पंकज सुबीर को तृप्त करता है। इस साहित्यिक कला कृति में रूहानी लयबद्धता है, समसामयिक से परे यह याद दिलाती है उस काल की जब ध्वनियों की पुनरावृत्ति में बहकर पाठक कंठस्थ कर लेता था काव्य को। एक ही भाव में पूरा काव्य रचा गया है। यहाँ कई बिंबों, प्रतिबिंबों के माध्यम से भावनाओं का आवेग बहता है। प्रकृति की छाँव में अंबर से धरा तक अति कोमल मनोभावों का स्फोट है, "नीलगगन की ऊँचाई में, उड़ते हुए युगल पल्लव थे, क्षण-क्षण में होता था जैसे, सृजन शिल्प का और विखण्डन।" आधुनिक युग से उस युग तक सेतु का काम करते हैं। स्मृतियों के असाधारण संवेदन को भीतर दबा-छिपा, लेखक हृदय भीतर दबोच न सका और स्मृतियों का एक ज्वालामुखी उद्भूत हुआ है, जिसके शक्तिशाली लावा से जैसे लेखन ने स्वयं को तृप्त किया है, "जैसे असंतृप्त-आत्माएँ, शक्तिशाली होतीं मावस को। भीषण-तड़ित गगन में कौंधी, और हुआ मेघों में घर्षण।"

पंकज सुबीर का भीतरी संघर्ष चलता है और लेखक स्वयं के अन्वेषण से अचंभित है, "बोधि-वृक्ष की छाया ने फिर, योगी को निर्वाण दिया था। सब विस्मृत करना होता है, करने प्रणय-कर्म निर्वाहन।" लेखक अपनी स्मृतियों से प्रेयसी की तरह अनुराग करता है, "संज्ञा शून्य अवस्था में तब, केवल शेष रहा अवलोकन। कस्तूरी-मृग के जैसे ही, खोज अभी तक है सुगंध की।" आह्लादित है यह ज्वार भावनाओं और रेखाचित्रों का, जैसे एक नई ऊर्जा ने जन्म लिया हो ! विज्ञान के नियमों अनुसार ऊर्जा न उत्पन्न की जा सकती है, न नष्ट की जा सकती है, उसे एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। जब ऊर्जा के दोनों रूप एक जैसे हों तदुपरांत दोनों ऊर्जाओं का समन्वय हो, तब नई ऊर्जा जन्म लेती है, जैसे इस काव्य ने जन्म लिया है। "उन्मादित गजराज वहाँ जब, रौंद रहा था पुष्पलताएँ। मेघ हुई यूँ उन्मत जैसे, सुरापान कर आया श्रावण"।

देहों की ऊर्जा से उपजे मन के भावों को पंकज सुबीर ने कभी निश्छल पानी की तरह बहाया है, कभी पतंग की तरह स्वच्छंद खुले आकाश में उड़ाया है, कभी मदमस्त, इठलाती, बेक़ाबू हवा-सा झुमाया है, कहीं तपती धरा में पड़ती शीतल जल की बूँदों-सा झमझमाया है। नव युवा मन के हर भाव कली को शनैः-शनैः खिलाकर सुंदर पुष्पों में व्याख्या दी है। अनीता दुबे के कला बोध से ओतप्रोत रेखा चित्र हर शब्द के सम्मुख सहज ही कवि की गहन आतुरता को ऊष्मा का प्रेम प्रदान करते हैं। इन रेखा चित्रों ने 'देह-गाथा' काव्य को पूर्ण से सम्पूर्णता प्रदान की है। पंकज सुबीर ने अंतःप्रेरणा से प्रकृति के उजले आँचल की छाँव में मन के उष्ण भावों को पनाह दी है, प्रकृति का दामन थामा है। प्रकृति यहाँ चुपचाप अपना काम करती है बोलकर नहीं, हृदय की मिट्टी में उर्वर बनकर।

आनंद पाने की कुंजी है, पंकज सुबीर ने जितना कहा है, उससे अधिक अनकहा महसूस कराया है। यही विशिष्टता है उनके लेखन की। सृष्टि की सुन्दर रचना, प्रेम के कोमल भाव और देहों का उल्लास इस विरले काव्य में ख़ूबसूरती से रचे-बसे हैं। जब बाल्य काल और किशोरावस्था से बाहर निकल कर जीवन युवावस्था की प्रथम देहरी पर क़दम रखता है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

श्वेत योद्धा

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : ज्योति जैन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016, मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"श्वेत योद्धा" सघन संवेदना के साथ सुपरिचित कथाकार ज्योति जैन द्वारा लिखित दूसरा उपन्यास है। ज्योति जी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। ज्योति जी की प्रमुख रचनाओं में भोरवेला, सेतु तथा अन्य कहानियाँ, नज़रबट्टू (कहानी संग्रह), मेरे हिस्से का आकाश व माँ-बेटी, जेब में भरकर सपने सारे (कविता संग्रह), पार्थ... तुम्हें जीना होगा, "श्वेत योद्धा" (उपन्यास), जीवन दृष्टि (निबंध संग्रह), यात्राओं का इंद्रधनुष (यात्रा वृत्तांत), जलतरंग, निन्यानवे का फेर, बिजूका (लघुकथा संग्रह), गोदभराई, नानी-नानी बारता (मालवी लघुकथा संग्रह) शामिल हैं। इनकी लघुकथाओं का बांग्ला, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। लेखन में इतनी विविधता एक साथ कम देखने को मिलती है। ज्योति जी के कथा साहित्य में नारी मन, उनकी समस्याओं, नारी की अस्मिता और उनके संघर्ष का यथार्थ चित्रण स्पष्ट रूप से झलकता है। ज्योति जैन का "पार्थ तुम्हें जीना होगा" उपन्यास बहुत अधिक चर्चित रहा था।

ज्योति जैन अपने अनुभवों और संवेदनाओं को कथा एवं पात्रों में पिरोकर अभिव्यक्त करती हैं। उन्होंने अपने इस उपन्यास में मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर सृजन किया है। ज्योति जैन की लेखनी में सहजता, जीवन का स्पंदन, आत्मिक संवेदनशीलता प्रतिबिंबित होती है। इस उपन्यास में भारतीय संस्कृति की सौंधी महक है। ज्योति जैन एक ऐसी कथाकार हैं जो देश की पारम्परिक संस्कृति एवं इतिहास को, युवाओं तथा बुज़ुर्गों की मानसिकता को, सामाजिक विसंगतियों व विकृतियों को, पीढ़ीगत अंतराल के कई पक्षों को यथार्थ की कलम से उकेरती हैं और वे भावनाओं को गढ़ना जानती हैं। वे अपने इस उपन्यास के द्वारा भारतीय मूल्यों को पुर्नस्थापित करती हैं। ज्योति जैन के इस उपन्यास में रोचकता तथा सकारात्मकता पाठकों को आकर्षित करती है। कथाकार ने लोगों के विभिन्न भावों को मार्मिकता, सहजता और सकारात्मक रूप से अपने इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। यह उपन्यास कथानक और घटनाओं की दृष्टि के साथ-साथ भावनात्मक धरातल पर कुछ अलग रंग लिए हुए है। इस कृति में लेखिका ने कोरोना काल की ज्वलंत समस्याओं के साथ-साथ लोगों की नकारात्मक शक्तियों को सकारात्मक शक्तियों में परिवर्तन को केंद्र में रखकर कथा का ताना-बाना बुना है।

इस उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। उपन्यास का कथानक इस तरह का है कि एक रात को तेज़ हवा के साथ भारी बारिश हो रही थी। लीमड़ी को नींद नहीं आ रही थी। उसे एक बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दे रही थी। लीमड़ी माँ को बिना बताए झोपड़ी से बाहर निकल जाती है। तब उसे बच्चे के रोने की आवाज़ हनुमानजी वाले चबूतरे से सुनाई दे रही थी। वह हनुमानजी वाले चबूतरे पर पहुँचती है। वहाँ उसे एक गठरी में बँधी बच्ची दिखती है। वह उस बच्ची को अपनी छाती से चिपका लेती है। सुबह होने पर लीमड़ी देखती है कि सभी झोपड़ियाँ पानी में बह गई हैं। लीमड़ी के माँ और बाप भी पानी में बह गए थे। सुबह बचाव के लिए आदिम जाति कल्याण विभाग की गाड़ियाँ आईं। बचाव दल वाले लीमड़ी को और उस छोटी बच्ची को पास की डिस्पेंसरी में सिस्टर जेम्स के पास ले गए। सिस्टर जेम्स ने नवजात बच्ची को अपनी गोदी में ले लिया। सिस्टर जेम्स यह जानकर प्रसन्न हो गई कि नवजात शिशु एक लड़की है। सिस्टर जेम्स ने लीमड़ी को और उस नवजात बच्ची को अपने पास रख लिया। सिस्टर जेम्स के यहाँ एक सहायिका रामप्यारी रहती थी। रामप्यारी ने बच्ची को बॉटल से दूध पिलाया। लीमड़ी ने बच्ची का नाम वर्षा रखा और सिस्टर जेम्स ने लीमड़ी और वर्षा को अनाथालय भेजने के बजाए अपने घर में ही रख लिया। लीमड़ी और वर्षा के सरकारी काग़ज़ात बनवाकर और फॉर्म भरकर लीमड़ी क़ायदे से वर्षा की माँ बन जाती है। लीमड़ी को घर पर ही अक्षर ज्ञान करवाया जाता है। लीमड़ी सिस्टर जेम्स की सहायिका बनकर नर्स का काम सीख जाती है। धीरे-धीरे वर्षा बड़ी होने लगती है। वर्षा को आगे की पढ़ाई के लिए शहर के एक स्कूल में उसका एडमिशन कराया जाता है और वर्षा के रहने के लिए एक हॉस्टल में उसकी व्यवस्था की जाती है। सिस्टर जेम्स लीमड़ी को भी शहर में डॉक्टर बृज के क्लिनिक पर नौकरी दिलवा देती है। नर्सिंग का कोर्स करने के पश्चात वर्षा को सरकारी नौकरी लग जाती है। वर्षा एक सफल नर्स साबित होती है। वह रोगियों से बड़े प्रेम से बात करती है। वर्षा जिस अस्पताल में नौकरी कर रही थी, उसी अस्पताल में डॉक्टर मोहित भी नौकरी कर रहे थे। धीरे-धीरे डॉक्टर मोहित वर्षा को पसंद करने लग जाते है। लीमड़ी और वर्षा अपने पेशे के साथ बराबर न्याय करती हैं। दोनों ही बहुत मेहनती हैं। सभी डॉक्टर्स और अस्पताल का स्टाफ दोनों के काम से काफी संतुष्ट है।

अचानक एक दिन कोरोना वायरस हमारे देश में आक्रमण कर देता है और सारे अस्पताल और क्लिनिक में कोरोना के मरीज भर्ती होने लगते है। लीमड़ी और वर्षा अपने को बचाते हुए रात दिन मरीज़ों की सेवा करती है। कई मरीज़ों की मौत होने लगती है। पूरे देश में हाहाकार मच जाता है। सरकार लॉकडाउन लगा देती है। एक दिन लीमड़ी कोरोना संक्रमित हो जाती है। उधर गाँव में सिस्टर जेम्स भी ग्रामीणों की सेवा करते हुए कोरोना संक्रमित हो जाती है। एक दिन वर्षा गाँव जाकर सिस्टर जेम्स को अच्छे उपचार के लिए शहर भिजवा देती है और वह स्वयं गाँव में ही रुककर गाँववाले कोरोना संक्रमितों को देखती है और उनका इलाज करती है। वर्षा अकेली ढेर सारे मरीजों को देखती है, उनका इलाज करती है और उन्हें इस बीमारी के बारे में समझाती भी है। गाँव में दवाइयाँ ख़त्म हो जाती है तो वर्षा कतरन को शहर भेजकर सारी दवाइयाँ मँगवाती है। एक दिन लीमड़ी की मौत हो जाती है। सिस्टर जेम्स ठीक हो जाती हैं। वर्षा को लंग्स में इन्फेक्शन हो जाता है। डॉक्टर मोहित और डॉक्टर बृज वर्षा को शहर ले जाते है और उसका इलाज करवाते हैं। कोरोना काल समाप्त हो जाता है। डॉक्टर बृज वर्षा का नाम दिल्ली सरकार के पास भिजवाते हैं कि किस प्रकार वर्षा ने मौत की परवाह न करते हुए मरीजों की सेवा की। ज़ोरदार तालियों के साथ सबसे कम उम्र की परिचारिका श्वेत योद्धा वर्षा को दिल्ली में राष्ट्रपति के हाथों पुरस्कार मिलता है। सिस्टर जेम्स आशीर्वाद स्वरूप वर्षा के सर और पीठ को सहलाती है। डॉक्टर मोहित वर्षा का हाथ अपने हाथ में ले लेते हैं।

ज्योति जी ने इस उपन्यास में नर्स वर्षा के माध्यम से अवसाद से ग्रसित ग्रामीण लोगों की मानसिकता को प्रकट करने के साथ उनकी नकारात्मकता को सकारात्मकता में परिवर्तित कर उनकी समस्याओं का समाधान किया है।

उपन्यास की मुख्य किरदार वर्षा, लीमड़ी, डॉक्टर मोहित, सिस्टर जेम्स, कतरन, डॉक्टर बृज हैं क्योंकि उपन्यास का ताना-बाना इनके इर्द-गिर्द बुना गया है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए आप वर्षा, लीमड़ी, डॉक्टर मोहित, जेम्स आंटी, कतरन, डॉक्टर बृज इत्यादि किरदारों से जुड़ जाते हैं। कथाकार ने बड़ी कुशलता से सिस्टर जेम्स, लीमड़ी और वर्षा की भावनाओं के उफान का सृजन इस उपन्यास में किया है। कथाकार ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा ख़ुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है। सिस्टर जेम्स, लीमड़ी, वर्षा का व्यक्तित्व कमाल का है। कथाकार ने सिस्टर जेम्स, लीमड़ी, वर्षा के अदम्य जिजीविषा तथा असीम सहन शक्ति का अंकन किया है। कथाकार ने पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक रूप से किया है। ज्योति जैन ने कोरोना काल की समस्याओं और इस भयानक बीमारी से जूझती श्वेत योद्धा सिस्टर जेम्स, लीमड़ी और वर्षा की कार्यशैली को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। कथाकार के अनुभवों की स्पष्ट झलक इस उपन्यास में दिखती है। इस उपन्यास को पढ़ने वाले की उत्सुकता बराबर बनी रहती है, वह चाहकर भी उपन्यास को बीच में नहीं छोड़ सकता। उपन्यास की कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है। उपन्यास फ्लेश बैक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास में संवेदनात्मक गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ हैं। इस कृति में लेखिका की परिपक्वता, उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अगर आप एक रोचक, सकारात्मक और प्रेरक उपन्यास पढ़ना चाहते हैं तो "श्वेत योद्धा" को अवश्य पढ़ें। ज्योति जैन एक सशक्त और रोचक उपन्यास रचने के लिए बधाई की पात्र हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

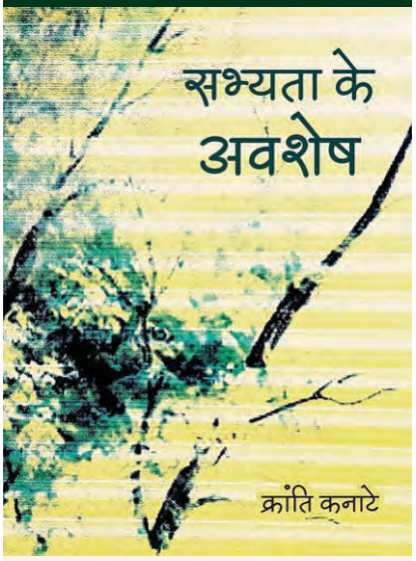

(कविता संग्रह)

सभ्यता के अवशेष

समीक्षक : गोविंद गुंजन
लेखक : क्रांति कनाटे
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर
राजस्थान

गोविंद गुंजन
18, सौमित्र नगर,
खंडवा मप्र 450 001
मोबाइल- 9425342665
ईमेल- govindgunjan128@gmail.com

सभ्यता का सीधा सा अर्थ है, मानवीय विकास का वह चरण जब मानव ने अपने आदिम पाशविक जीवन से एक अलग मोड़ ले कर सृष्टि के अन्य जीवों से पृथक और उच्चतर सोपान चढ़ते हुए सामाजिक विकास के नए आयामों को स्पर्श करना शुरू किया। इस सभ्यता के असंख्य चरण हैं, और प्रत्येक चरण में मनुष्य ने अपनी संस्कृति के भी नए -नए प्रतिमान गढ़ना शुरू कर दिए थे। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य कितना सभ्य हुआ यह प्रश्न आज भी विचारणीय है, 'सभ्यता के अवशेष' कविता संग्रह की पहली ही कविता में क्रांति सवाल उठाती है- 'फिर वह चाहे कितनी ही / असभ्य क्यों न रही हो/ अवशेष हमेशा किसी न किसी /सभ्यता के ही कहाते हैं/ कितना अच्छा है/ आज से पाँच - दस हज़ार वर्ष आगे चल कर/ हमारे जीवाश्म / किसी सभ्यता के अवशेष कहाएँगे !'

इन छोटी-छोटी पंक्तियों में हमारी सभ्यता का एक बड़ा विमर्श देखा जा सकता है, साथ ही इन पंक्तियों में ध्वनित होते हुए व्यंग्य से हमारी सभ्यता के वास्तविक विकास पर जैसे एक बड़ा प्रश्न चिह्न लग जाता है। क्रांति कनाटे की कविताओं की यही विशेषता है कि वह आकार में छोटी और विचार में बड़ी होती है।

अपनी दुनिया को बेहतर बनाने के सपने सँजोये मन को कितनी व्यथा होती है, जब युद्ध, हिंसा और निजी स्वार्थ से लथपथ हमारा संसार हमें मिलता है। क्रांति के शब्दों में इस विडंबना को महसूस किया जा सकता है-'कितनी शताब्दियाँ बीती/ बीत गई पीढ़ियाँ कितनी / हर युद्ध से पहले शिखरवार्ताएँ हुईं / और युद्ध के बाद संधियाँ / किंतु मनुष्य रहा वहीं का वहीं / अपने लिए हम न बना सके- एक बेहतर दुनिया।

'एक बेहतर दुनिया की तलाश' कवि का स्वप्न है, किन्तु वह बेहतर दुनिया कहीं बाहर नहीं है। कवयित्री क्रांति कनाटे की इन कविताओं में हमारे समकालीन लहूलुहान विश्व का जो चेहरा उभरता है, वह थर्रा देने वाला है। अपने समय की पड़ताल करती कविताओं में आदमी का असली चेहरा देखने की जद्दोजहद है, लेकिन मुश्किल ये है कि- 'चेहरों से भारी हो गए हैं मुखौटे / अब हालत यह है कि घर के घर में भी / मुखौटे लगाए रहता है आदमी।'

आख़िर आदमी इतने मुखौटे लगाता क्यों है ? वह क्या छिपाता है इन मुखौटों के भीतर ? कौन सा ख़ालीपन है उसके भीतर जो वह सबसे छिपाता है? क्रांति कनाटे की कविता में मुखौटों का रूपक एक बड़े फ़लक वाला रूपक है, क्योंकि यह मुखौटा अब बाहरी दुनिया तक सीमित नहीं रहा। क्रांति इस मुखौटे को आदमी के घर में घुसपैठ करते हुए देखती और हमें दिखा कर सचेत करती है। घर में भी यदि आदमी को मुखौटे लगाना पड़े तो फिर उसके भीतर कितना छिपाने लायक सामान जमा हो गया है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

क्रांति की कविता किसी आतंरिक संगीत की सुकोमल लय पर सधी हुई है, उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ किसी नवगीत की छान्दसिक सरसता से टक्कर लेती हुई प्रतीत होती है- 'मैंने बोये बीज प्यार के / तन्हाई के मौसम में / फूल खिलेंगें यादों के/' इन तीन पंक्तियों में लगता है जैसे जापान के संतों का कोई हायकू ही बोल उठा हो। आगे वह लिखती है- 'ख़ूब तपेगी धरती जब / आकुल होंगे तन मन भी / तब असाढ़ की रिमझिम बन / फूल झरेंगे यादों के /''

सभ्यता के अवशेष की कविताएँ अनेक यक्ष प्रश्न भी उठाती हैं, आधुनिक मनुष्य के सामने। जैसे एक कविता सवाल उठाती है- 'जो चले गए वह तुम थे / तो रह गया वो कौन है? प्रश्न ही प्रश्न है / मौन ही मौन है।'

ऐसे स्थलों पर क्रांति सवाल उठा कर निरुत्तर कर देती है। पाठक हतप्रभ रह जाता है। 'सभ्यता के अवशेष' कविता संग्रह इसीलिए हमारी सभ्यता के सम्यक विमर्श की कविताओं का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ भी बन गया है।

इस संग्रह की कविताएँ स्त्री की गरिमा का उद्घोष भी प्रचलित नारी विमर्श के मुहावरों में नहीं करतीं, वह स्त्री को एक विश्वास से भरती हैं, जिसके बिना उसकी शक्ति उसकी मुक्ति नहीं बन सकती। हमारी दुनिया में आज भी स्त्री के साथ जिस तरह का भेदभाव किया जाता है, उसे

देख कर लगता है कि हम अपनी मध्ययुगीन मानसिकता से अभी तक मुक्त नहीं हो पाए हैं, लेकिन कवयित्री को विश्वास है कि एक दिन यह परिदृश्य बदलेगा, क्योंकि अब स्त्री अपनी शक्ति को पहचान चुकी है- 'देखना ! एक दिन ज़रूर आएगा / जब औरत सिर्फ़ इसलिए गुनाह के कटघरे में नहीं खडी होगी / क्योंकि वह औरत है / और न ही आदमी बैठेगा इंसाफ़ की कुर्सी पर / सिर्फ़ इसलिए कि वह आदमी है / देखना एक दिन ज़रूर आएगा / जब आदमी अपने सच का इस्तेमाल ढाल की तरह / और औरत के सच का इस्तेमाल / तलवार की तरह नहीं कर पाएगा / देखना ! एक दिन ज़रूर आएगा।

क्रांति की कविता में कई बार जैसे लोक मन बोल उठता है, उदाहरण के लिए एक कविता दृष्टव्य है- 'आँसू' -'एक आँसू लंबा है मेरा / एक आँसू है छोटा / एक आँसू गोल / एक है थोड़ा मोटा / एक हाथी, एक भागता घोड़ा / और एक है जैसे बरसता कोड़ा / एक आँसू याद तुम्हारी / एक है बचपन मेरा / एक बीच हाथ पर मोती ढुलका / जैसे माँ कहती हो, 'मत रो, खाना खा ले बेटा'

अक्सर माँ बेटी को प्यार से बेटा कह कर भी संबोधित करती है, वह बेटी को बेटे का संबोधन दे कर शायद उस आकांक्षा की क्षतिपूर्ति करती होगी जिस प्यार से बेटों की चाह वाले संसार में बेटियाँ अक्सर वंचित रह जाती है। क्रांति की इस कविता में सहज रूप से चला आया यह वात्सल्य के उस रस से सराबोर कर सकती है, जो जीवन से खोता जा रहा है।–'एक है बचपन मेरा/ एक बीच हाथ पर मोती ढुलका / जैसे माँ कहती हो, 'मत रो, खाना खा ले बेटा'

कभी-कभी आश्चर्य होता है कि समकालीन कविता में यह वात्सल्य रस सिरे से ग़ायब क्यों हैं? जीवन की भागमभाग में जीवन के कितने रसों की धाराएँ रेत में गुम हो गई नदियों सी विलुप्त होती जा रही हैं, जो हमारे जीवन को हरियाला बना सकती थीं। अब इस तरह की काव्यभाषा को हमारे समय की शुष्क बौद्धिकता ने बेदख़ल करने का बीड़ा उठा रखा है, मगर कविता तो शुष्क बौद्धिकता के बीहड़ में नहीं हार्दिकता के मरुद्यान में रहती है। संग्रह में छोटी कविता है- स्वस्तिक निशान, इस कविता में एक दृश्य है किसी पुरातन घर की एक जीर्ण दीवार के ढह जाने का, कवयित्री का ध्यान जाता है मलबे में पड़ी हुई एक ईंट पर जहाँ एक स्वस्तिक का मांगलिक चिह्न बना हुआ है। वह इस खंडित दीवार पर साबुत बचा हुआ वह स्वस्तिक हमें दिखाती है, जो मानों कहता है कि कितनी सभ्यताएँ मिट गईं, परंतु संस्कृति कभी नहीं मिटती। यह एक सांस्कृतिक आस्था की कविता है- 'क्षत-विक्षत देह पर / शेष है कुछ सुवास / खंडित दीवार पर जैसे / यथावत रह जाए / स्वस्तिक निशान।' यहाँ क्षत-विक्षत देह पर बची हुई सुवास प्रेम की भी प्रतीक है।

एक कवि को अपने शब्दों की ताक़त पर जो विश्वास होता है, वह उसके सत्य की आस्था से आता है। ये शब्द हर अन्याय का प्रतिकार कर सकते हैं, ये शब्द एक दिन तलवार बन कर अन्यायी शक्तियों का सामना करने के लिए भी उठ खड़े हो सकते हैं। शब्द की इसी शक्ति का परिचय हमें 'अभी तो' शीर्षक की एक कविता में मिलता है- 'अभी तो शब्द उतरे हैं / पन्नों पर कविता बन कर / मगर जब वे धार बन कर / चलेंगें सड़कों पर / उतरेंगें गलियों में / तब तुम्हारा कोई अन्याय / उनके सामने ठहर नहीं पाएगा / और न ही चलेगा / तुम्हारा कोई झूठ उनके आगे / शब्दों में अगर आँच हो / तो उन्हें तलवार बनते देर नहीं लगती'।

वस्तुत: शब्दों के भीतर यथार्थ की जितनी आँच होगी, उतनी ही कविता सार्थक होगी।

क्रांति कनाटे की कविता शब्दों की इसी आँच को बचाने का उपक्रम है, और यही उपक्रम उनकी कविता को महत्त्वपूर्ण बनाता है, हम जब तक अपने आप में लीन रहते हैं तब तक सारे शिखर दूर ही रहते है। अपने आप के भीतर धँसे हुए इस 'मैं' को काट कर बाहर निकालने की सर्जरी कितनी जरुरी है, उसे इन पंक्तियों में महसूस किया जा सकता है- 'बस वह मेरे ख़ुद को ख़ुद से काटने की देर थी कि / दूर हो गया धुँधलका / आगे दिखाई देने लगा शिखर।' वह आह्वान करती है कि- 'एक आग- सी जलने दे भीतर / एक लावा- सा निकलने दे बाहर / एक धुआँ- सा उठने दे ऊपर / होने दे हलचल अपने चारों तरफ़ / होने दे हलचल अपने चारों तरफ़'।

यह एक प्रस्थान बिंदु है, जहाँ से कविता लिजलिजी भावुक कल्पना के जाल से यथार्थ संसार में प्रवेश करती है। आधुनिक मनुष्य ने अपने आपको अपने भीतर इतना बंद कर लिया है कि उसके भीतर कोई पुकार नहीं पहुँचती। क्रांति कनाटे इस बंद मकान जैसे मनुष्य से एक सहज प्रश्न पूछती है, और वह प्रश्न ही जैसे अपने आप में कोई उत्तर बन जाता है- 'सब तो बंद कर दिये तुमने / दरवाज़े, खिड़कियाँ, रौशनदान / कहाँ से आएगी हवा ? कहाँ से आएगा प्रकाश।'

एक अन्य कविता 'उत्तरार्ध' में हमारे सारे संबंधों की निरंतर बदलती जा रही भूमिका की चिंता इस तरह सामने आती है- 'कल तक जिनके बिना / सारे सुख दु:ख अधूरे थे / कल तक जिन्हें लेने-छोड़ने / हम उनके घर तक जाते थे / अब उनके फ़ोन भी आते हैं तो / हम घर पर नहीं होते।' संग्रह की एक ख़ूबसूरत कविता है 'कितने मन्वन्तर' जिसमें एक ऐसा मासूम सवाल है जो केवल कोई आत्मवान कवि ही कर सकता है- 'बस/ सात नदियाँ, /सात पर्वत / सात लोक / सात आकाश / ही तो थे हमारे बीच / पर देखो ना ! पार करने में / कितने मन्वंतर बीत गए !'

क्रांति की कोई कविता ऐसी नहीं हैं जो आत्ममंथन से न उपजी हो। संग्रह में एक कविता इस यात्रा को और भी आगे तक ले जाती है। वह परिणाम की सफलता या विफलता की चिंता न करते हुए आश्वस्ति देती है- 'क्या हुआ ग़र न उगी / उजालों की कोंपलें ?/ हथेली पर सूरज तो बोया मैनें–तुमने।'

ये कविताएँ हथेली पर सूरज उगाने और उजालों की कोंपलें हमारे जीवन में फैलाने की आश्वस्ति की कविताएँ हैं। निश्चय ही ये कविताएँ पाठकों के साथ हमेशा के लिए रह जाने वाली कविताएँ हैं, जिनको पुस्तक के रूप में बोधि प्रकाशन ने बड़े ही सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है।

000

पुस्तक समीक्षा

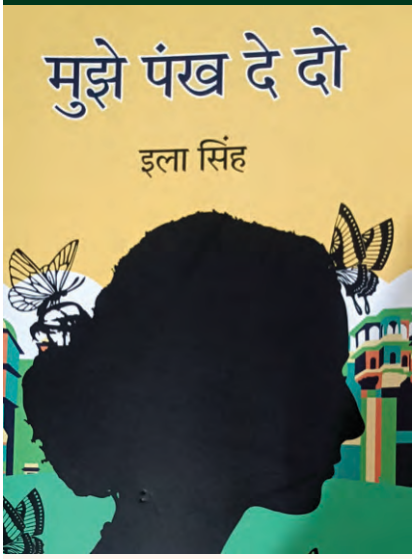

(कहानी संग्रह)

मुझे पंख दे दो

समीक्षक : रमेश शर्मा

लेखक : इला सिंह

प्रकाशक : प्रतिबिम्ब, चेन्नई, तामिलनाडु

रमेश शर्मा
92 श्रीकुंज, बोईरदादर, रायगढ़
छत्तीसगढ़ 496001
मोबाइल- 7722975017
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

इला सिंह की कहानियों को पढ़ते हुए यह बात कही जा सकती है कि इला सिंह जीवन में अनदेखी, अनबूझी सी रह जाने वाली अमूर्त घटनाओं को कथा की शक्ल में ढाल लेने वाली कथा लेखिकाओं में से एक हैं। उनका पहला कहानी संग्रह 'मुझे पंख दे दो' हाल ही में प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुँचा है। इस संग्रह में सात कहानियाँ हैं। संग्रह की पहली कहानी है अम्मा। अम्मा कहानी में एक स्त्री के भीतर जज़्ब, सहनशील आचरण, धीरज और उदारता को बड़ी सहजता के साथ सामान्य सी लगने वाली घटनाओं के माध्यम से कथा की शक्ल में जिस तरह इला जी ने प्रस्तुत किया है, उनकी यह प्रस्तुति कथा लेखन के उनके मौलिक कौशल को हमारे सामने रखती है और हमारा ध्यान आकर्षित करती है। अम्मा कहानी में दादी, अम्मा, भाभी और बहनों के रूप में स्त्री जीवन के विविध रंग विद्यमान हैं। इन रंगों में अम्मा का जो रंग है वह रंग सबसे सुन्दर और इकहरा है। कहानी एक तरह से यह आग्रह करती है कि स्त्री का अम्मा जैसा रंग ही एक घर की ख़ूबसूरती को बचाए रखने में बड़ी भूमिका निभाता है। अम्मा कहानी में स्त्री का सहनशील आचरण रिश्तों को बाँधे रखने में बड़ी प्रभावी भूमिका निभाता नज़र आता है। इला सिंह सीधे तौर पर न कहते हुए भी यह कह पाने में यहाँ सफल हुई हैं कि सहनशीलता का गुण स्त्री का सबसे क़ीमती आभूषण है जो मूर्त रूप में भले आँखों को नज़र न आए पर व्यवहार में उसकी झलक हमेशा मिलती रहती है। अम्मा कहानी की सबसे बड़ी विशेषता पर ग़ौर करें तो यह कहानी इस बात को परिभाषित करने में सफल हुई है कि घर और समाज की धुरी अम्मा जैसी स्त्रियों के ऊपर ही टिकी हुई है। एक स्त्री जब माँ का स्थान ग्रहण करती है तब वह अधिक सहनशील, अधिक विवेकवान और अधिक सहिष्णु होने भी लगती है। सम्भव है इला सिंह के भीतर बसे एक स्त्री के मातृत्व भाव ने ही उन्हें इस बात की गहरी समझ दी हो और उन्होंने अम्मा जैसी कहानी रचकर पाठकों के सामने रखा हो। यह कहानी हमें स्त्री जीवन के अलग अलग रूपों को समझने का भी एक अवसर देती है। सचमुच यह एक ऐसी कहानी है जो दिल के बहुत क़रीब पहुँचती है और हमें अपने भाव, शिल्प और सम्प्रेषण कला से अंत तक बाँधे रखती है।

जहाँ कहानी न दिखाई पड़े वहाँ भी अगर कोई कहानी खोज ले और उसे किस्सागोई एवं मज़बूत कथ्य के साथ पाठकों के सामने ले आए, तब उसे रचनाकार की रचनात्मक कुशलता के रूप में ही देखा जाना चाहिए। इला सिंह की कहानी 'ढीठ' पढ़ते हुए भी कुछ इसी तरह के पाठकीय अनुभवों से हम गुज़रते हैं। हम जिस परिवार में रहते हैं उस परिवार के सदस्यों की संवेदना किसी संदर्भ में भिन्न-भिन्न हो सकती है। दरअसल यह संवेदना दया और करुणा के इर्द गिर्द ही जीवन मूल्यों के रूप में अपना ठीहा बनाती है। इला सिंह इसी सघन और परिपक्व संवेदना के इर्द-गिर्द ही अपनी इस कहानी को रचती हैं। अधिकांशत: परिवारों में घर की जो स्त्री होती है, इस सघन और परिपक्व संवेदना की संवाहक होती है। कहानी में यही स्त्री पात्र केन्द्र में है जो अप्रिय स्थिति में भी अपना संतुलन नहीं खोती। वह दरवाज़ा खोलती है और एक ज़रूरतमंद स्त्री को अपने सामने पाती है। ज़रूरतमंद महिला जिसका नाम निशा है उसका एक माह का बच्चा भी है और घर में बहुत आर्थिक तंगी है। वह कहती है कि अगर कपड़े नहीं दे पा रही हैं तो कुछ रुपये ही उधार में दे दीजिए। बाद में वह उन रुपयों को लौटा देगी या उसके बदले कपड़ों पर इस्त्री करके उसे चुकता कर देगी। परिस्थिति की नज़ाकत को भाँपते हुए उस परिवार की स्त्री, उस ज़रूरतमंद महिला को दो हज़ार रुपये दे देती है।

दरअसल कहानी उसके बाद ही शुरू होती है। इस तरह दो हज़ार रुपये दिए जाने पर घर के अन्य सदस्यों को बहुत तकलीफ़ और आपत्ति है। उसके लिए सभी लोग उसको खरी-खोटी सुनाते हैं। पति रूपेश द्वारा मूर्ख जैसे विशेषण से भी वह संबोधित की जाती है। महिला परिवार के अन्य सदस्यों की अप्रिय बातें सुनते सुनते एयर फ़ोन से गाने सुनने की कोशिश में एक कान में एयर फ़ोन के हियरिंग डिवाइस को खोंचती है और दूसरे कान में जैसे ही वह डिवाइस को खोंचने को होती है उसके कानों में पति के शब्द सुनाई पड़ते हैं .....ढीठ औरत ! इन दो शब्दों के साथ कहानी समाप्त ज़रूर हो जाती है पर पाठक के भीतर ही भीतर ये दो शब्द गूँजते रहते हैं।

संग्रह की एक कहानी है काला फ़िराक। यह कहानी अपनी भाषा और अपनी बुनावट में अंत तक हमें बाँधे रखती है। माँ के इलाज के लिए साथ में शहर गई सात साल की बेटी अहिल्या डॉक्टर कोहली की बेटी परी को वहाँ देखती है जो उसकी हम उम्र है। उसकी देह पर शोभायमान काला फ़िराक को देखकर उसकी भी इच्छा होती है कि वह काला फ़िराक पहने। बच्चों के मनोविज्ञान को टटोलती हुई बच्ची की इसी इच्छा के इर्द-गिर्द यह कहानी धीरे धीरे इस तरह गतिमान होने लगती है कि बच्ची के भीतर की इच्छा काला फ़िराक से होते हुए उसकी अपनी माँ से मिलने की इच्छा तक जा पहुँचती है। बाल इच्छाओं की यह शिफ्टिंग इस कहानी की विशेषता है। माँ, बाबूजी, बड़ी दीदी, दादी और अभी अभी कुछ दिनों पहले शहर के हस्पताल में जन्मा छोटा भाई। सात साल की अहिल्या इन रिश्तों की डोर पकड़े दरअसल अपने समय को देख रही है। इस समय में उस बच्ची के भीतर उठता हुआ एक आवेग है। उसके भीतर आती-जाती इच्छाएँ हैं। इस समय में उसके मन में दादी की डाँट-फटकार का भय है। इस समय में उसके लिए पिता का कड़कपन है और उस कड़कपन के भीतर छुपा हुआ प्यार भी है। इस समय के भीतर बड़ी दीदी का वात्सल्य और उसकी संगत है। गाँव से दूर शहर के हस्पताल में भर्ती हुए माँ से पुन: मिलने की तीव्र इच्छा इस कदर अहिल्या के भीतर जज़्ब है कि वह नाज बीनकर चवन्नी इकठ्ठा करती है ताकि बस में बैठकर अपनी माँ से मिलने जा सके। यह सच है कि छोटे बच्चे अपनी माँ से एक दिन भी दूर नहीं रह सकते। सात साल की अहिल्या के दिलो-दिमाग़ में माँ से मिलने की इच्छा ही घूम रही है। वह जानती है कि बापू उसे दोबारा शहर लेकर नहीं जाएँगे। वह जानती है कि दादी की फटकार ही उसे मिलेगी। और फिर इसी उधेड़बुन में एक दिन मुट्ठी में चवन्नी दबाए वह बस में चढ़कर शहर निकल पड़ती है। रास्ते में फिर उसे सहीदन का साथ मिलता है। उस साथ को वह कभी भी बेझिझक स्वीकार नहीं पाती क्योंकि उसके मन में सहीदन के प्रति ग़लत धारणाएँ बिठा दी गई हैं।

कहानी में सहीदन नाम की महिला एक ऐसा पात्र है जो समाज में उपेक्षा और जलालत की शिकार है। अहिल्या की दादी जिस पर आए दिन गाली-गलौज करती रहती है। उसे डायन जैसे शब्दों से संबोधित करने का क्रम कभी नहीं टूटता। यह महिला पात्र अपनी उदारता के साथ लड़कियों के प्रति अतिरिक्त सुरक्षा की चेतना का भाव लिए कहानी में जिस तरह सामने आती है, उसका आना आश्वस्ति से भर देता है। कथा लेखिका की नज़र समाज में उपेक्षित और जलालत में डाल दिए जाने वाले ऐसे पात्रों पर भी गई है जो समय आने पर बहुत उपयोगी हो सकते हैं। काला फ़िराक के बहाने रिश्तों के ताने-बाने और भीतर चल रहे मनोभावों को यह कहानी समझने बूझने का एक बड़ा अवसर देती है। सहीदन पात्र के बहाने यह कहानी समाज में चली आ रही ग़लत धारणाओं को ध्वस्त करने का भी काम करती है। शहर जाकर माँ से मिलने के बाद अहिल्या के मन में आते-जाते भावों का एक ऐसा चित्रण है जिसका आस्वादन कहानी को पढ़कर ही लिया जा सकता है।

संग्रह की एक और कहानी है 'मास्टरनी का जादू-मंतर'। यह कहानी स्त्रियों के जनरेशन गैप से उपजी रिश्तों की कड़वाहट को दूर करने की दिशा में संवाद करती हुई आगे बढ़ती है। ताई की नासमझी और अशिक्षा के कारण उसके भीतर उपजी असहिष्णुता और जातीय उच्चता का भाव बोध रधिया जैसी दलित लड़की का मन आहत करता है। नीरू जैसी पढ़ी-लिखी बहू, ताई की इस असहिष्णुता और जातीय उच्चता के भाव की बोधग्रस्तता का तार्किक प्रतिरोध करती हुई नज़र आती है। नीरू का यह प्रतिरोध टकराव के रास्ते पर न जाकर प्यार का रास्ता अख्तियार करती है। दरअसल जातीय उच्चता का भाव आज के संदर्भ में एक किस्म की कुंठा ही है जिसका निदान टकराव के रास्तों पर चलकर नहीं किया जा सकता। इसका एक मात्र निदान प्यार के माध्यम से दिलों को जीतकर ही किया जा सकता है। नीरू प्यार जैसे अचूक हथियार का जब उपयोग करती है तब ताई जैसी कर्कश स्त्री के दिल के भीतर जमी हुई बर्फ़ पिघल कर पानी-पानी होने लगती है। उसके भीतर वर्षों से बसे नफ़रत और असहिष्णुता के भाव प्यार नामक हथियार के डर से दुम दबाकर भाग जाते हैं। प्यार ही एक मात्र जादू-मंतर है जो अनपढ़ नासमझ स्त्रियों तथा पढ़ी-लिखी समझदार स्त्रियों के बीच के गैप को भर देता है। इला जी ने इस कहानी को यूँ ही नहीं लिख दिया होगा, बल्कि यह कहानी तो उनके जीवन के आसपास के अनुभवों से उपजी हुई कहानी होगी। अनुभव से उपजी हुई कहानियाँ पाठक को अपील भी करती हैं।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'मुझे पंख दे दो' भी स्त्री अस्मिता और उसके सपनों को विस्तार देने की कथा से जुड़ी कहानी है। इस कहानी में भी अन्य कहानियों की तरह इला हमें उसी दुनिया की ओर लिए चलती हैं जहाँ स्त्रियों के संघर्ष को विस्तार मिलता है। आज की स्त्री पढ़ना-लिखना चाहती है, पढ़-लिख कर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है। इस चाहने में अनगिनत बाधाएँ हैं, इला सिंह उन्हीं बाधाओं की पहचान करती हुईं इस कहानी को बुनती हैं। फिर शनै:-शनै: स्त्री स्वतंत्रता के लिए इला की जगह उनकी यह कहानी हमसे संवाद करती है 'मुझे पंख दे दो' 'मुझे पंख दे दो' ! स्त्री के पंख आख़िर क्या हैं ? जब स्त्री पढ़ लिख लेगी, तभी वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकेगी, तभी उसे स्वतंत्र पहचान मिलेगी।

इला की समस्त कहानियों को पढ़ लेने के बाद मन में यह एहसास तारी होने लगता है कि फेमिनिज़्म कोई दूसरी दुनिया की परिघटना नहीं है। उसके लिए शोर-शराबा मचाने की जगह स्वरों की धीमी आँच से भी बदलाव के रास्ते प्रशस्त किये जा सकते हैं।

इला की समस्त कहानियों को स्त्री अस्मिता और उसकी स्वतंत्रता के लिए उसी धीमी आँच के रूप में भी बतौर पाठक देखा महसूसा जा सकता है। हाँ यह आवश्यक है कि इसके लिए इस संग्रह से होकर गुज़रने का अनुभव हमें अर्जित करना होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

नकटौरा

समीक्षक : डॉ. उमा मेहता
लेखक : चित्रा मुद्गल
प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

डॉ. उमा मेहता,
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
गुजरात आर्ट्स एण्ड साइंस कॉलेज,
एलिसब्रिज, अहमदाबाद-380006
गुजरात
मोबाइल- 9429647368
ईमेल- umhindi13@gmail.com

चित्रा मुद्गल कृत 'नकटौरा' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है, जिसके तार चित्रा मुद्गल के जीवन यथार्थ से जुड़े हैं। चित्रा जी के जीवन का अनुभव बाहुल्य उनके उपन्यासों में अक्सर झलकता है, जो पाठकों को उपन्यास के अंत तक बाँधे रखता है। अंत में स्वयं पाठक जीवन यथार्थ रूपी महासागर से अनुभव के मोती प्राप्त कर ख़ुद लाभान्वित होता हैं। चित्रा मुद्गल अपने साहित्य के प्रत्येक पात्र से चाहे वह कहानी हो या उपन्यास, पाठक को इस कदर रूबरू करवाती हैं, जैसे कि पाठक को लगता हैं वह स्वयं उन सभी चरित्रों को क़रीब से जानता है, समझता है और कहीं न कहीं वह ख़ुद को भी उनके स्थान पर रखकर जीवन की सच्चाई का घोल पीता चला जाता है। चित्रा मुद्गल भी बड़े चाव और प्यार से जीवन मूल्यों की जड़ी-बुट्टी का घोल पिलाती चलती हैं, जिससे समाज में निश्चित रूप से परिवर्तन आना संभव है; जो कि साहित्य का साध्य भी है।

'नकटौरा' कुल 62 भागों में विभाजित और 399 पृष्ठों तक फैला हुआ बृहद औपन्यासिक प्रयोग है। इस उपन्यास की कथा प्रथम पुरुष एक वचन में 'मैं' सर्वनाम को लेकर आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। दरअसल इसमें कथा-शृंखला नहीं मिलती, किन्तु चित्रा जी के साथ जुड़े चरित्रों के प्रसंग अलग ही अंदाज़ में अभिव्यक्त हुए हैं, जिन्होंने चित्रा जी को प्रभावित किया है। इन चरित्रों के साथ वह भावनात्मक तौर पर डूबती- उतरती आगे बढ़ती चली जाती हैं। संपूर्ण कथा फ्लैश बैक सिस्टम से चलती रहती है, सहज-स्वाभाविक ढंग से। 'नकटौरा' को उपन्यास कम आत्मकथा कहना उचित लगता है। क्योंकि 'नकटौरा' लेखिका के सूक्ष्म भाव संवेदन और स्वानुभूति जन्य यथार्थ से भरा पड़ा है। इसमें पाठकों को लेखक के अनुभव बाहुल्य का भरा-पूरा संसार मिल जाता है। जिसमें चित्रा जी के परिवार से लेकर उनके सामाजिक दायित्व, साहित्यिक दायित्व और लेखकों की दुनिया का सच; सब कुछ एक साथ मिल जाता है। उन्होंने इस उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि "बहुत बरसों से इच्छा थी, एक औपन्यासिक प्रयोग की। एक सर्जक घर की चौहद्दी में कैसा होता है! और घर से बाहर ऊबड़-खाबड़ चुनौती देती परिस्थितियों में पीठ पर लदी प्रतिबद्धताओं में खौलते, उबलते मूल्यों, नैतिकताओं के घात-प्रतिघात झेलते...बचना जरूरी है भीतर के सूखे से...।" यह उपन्यास उस समुद्र की भाँति है, जिसमें गहरे पैठ कर पाठक लेखक के अनुभव के अमूल्य मोती पा सकता है। जहाँ तक संभव हो पाया है, चित्रा जी ने समाज की सांप्रत समस्याओं को स्पर्श करने का प्रयास किया है। कहीं समस्या है, तो उसका समाधान भी दिया गया है। कहीं तो समस्या देकर उसका समाधान पाठकों के उपर छोड़ दिया है, जिससे पाठक उपन्यास की उस घटना व चरित्र के उपर सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। उपन्यास की मौलिकता सहज ही बन पड़ती है, जिससे पाठकों की जिज्ञासा बढ़ जाती है।

'नकटौरा' उपन्यास में चित्रा मुद्गल जी ने विजयमोहन, कमलेश्वर, नागार्जुन, कृष्णा सोबती, कृष्ण बलदेव वैद्य, शानी जी, नामवर जी, अशोक वाजपेयी जी, धर्मवीर भारती, अवध

जी, मृदुला गर्ग, निर्मल वर्मा, पद्मा सचदेव, शिवनाथ जी इत्यादि साहित्यकारों के साथ अपनी निजी संवेदना और अनुभव को अभिव्यक्त करके लेखकों के विचार और जीवन दृष्टि की बात बहुत सूक्ष्मता के साथ रखी है। कहीं-कहीं तो इन सभी लेखकों का शब्द चित्र उनकी आंतरिक प्रकृति के साथ अंकित किया है। इन चरित्रों के साथ जुड़ कर अपने जीवन की परेशानियों में भी वह सकारात्मकता के साथ आगे बढ़ती हैं, उनका हौसला ध्यानाकर्षित करता है। चित्रा जी कहती हैं कि इन परेशानियों को झेलते हुए "मुझ से मेरे रंग कब, कहाँ, कैसे छूट गए या मैंने ख़ुद ही उनसे किनारा कर लिया, मालूम नहीं...अपनी विवशता को ढँकने के लिए कुछ मनचाहे तर्क निर्मित किए थे मैंने। वो तर्क बड़े भले थे। उदार थे। आश्वस्त करते थे। परेशान मत हो, ऊपर से नाता टूटा हैं रंगों से, भीतर से नहीं। झाँको भीतर, रंग जब तक नहीं सूखते भीतर, रंग बने रहते हैं जीवन में। दृष्टि की चेतनता में। संवेदना में। भीतर के पानी को सुरक्षित रखो, बस!"

अपर्णा और अवध का बाप-बेटी का प्रेम, बसंत-मंदा की कहानी, रामवती की मृत्यु की कहानी, सुनहरी-रुपहली की कहानी, सिराज, माया बीजी, स.ब. की बातें, रामावती, विद्या, पुष्पा और रंजना इत्यादि के मार्मिक प्रसंग उपन्यास को नया रूप प्रदान करते हैं। आधुनिक संदर्भो के अनुसार समाज में कुछ पैंठी हुई समस्याओं के उपर भी चिंतनात्मक शैली में विचार किया गया है। जैसे कि- स्त्रियों में आत्महत्या का आधिक्य, वृद्धाश्रम में जीने को मजबूर वृद्ध माता-पिता, बेटे और बहू का वृद्धों के प्रति निर्ममता और तिरस्कार।

चित्रा जी मंदा की मृत्यु को लेकर चिंता प्रकट कर रही हैं कि "आजकल स्त्रियों में आत्महत्या का अनुपात बढ़ रहा है। पढ़ी-लिखी स्त्रियों में अधिक। ग्रामीण इलाकों में आत्महत्याएँ कम, हत्याएँ अधिक होती हैं।" मंदा स्वाभाविक मौत मरी या उसकी हत्या की गई थी, यह बात अभी तक खुलकर सामने नहीं आई थी। उसके पलंग के नीचे से नींद की गोलियों की शीशी ख़ाली पड़ी मिली थी। फिर उसके पति बसंत को देख कर भी यह बिलकुल नहीं लगता कि उसे मंदा की मृत्यु का कोई दु:ख हो रहा हो। मंदा और बसंत को लेकर चित्रा जी की जद्दोजहद बढ़ती ही जाती है। ऊपर से बसंत के द्वारा मंदा के बहाने स्त्री पर लगाए गए आरोप और उसकी संकुचित सोच समाज में बसंत जैसे पुरुषों की पोल खोल कर रख देती है। उस वक़्त स्त्री और पुरुष के मुद्दे पर उठाए गए बसंत के किसी भी सवाल का जवाब देना चित्रा जी उचित नहीं समझतीं, क्योंकि जवाब पाठकों को बसंत के व्यवहार से अपने आप मिल ही जाता है।

वृद्धाश्रम का कोई भी प्रश्न हो तो चित्रा जी रात-दिन अपनी परवाह किए बगैर वृद्धों की समस्या का समाधान करने निकल पड़ती हैं। किसी की तबीयत ख़राब हो या कोई दवाई लेने को तैयार न हो, तब भी चित्रा जी को ही याद किया जाता है। अपने संवेदनशील स्वभाव की वजह से समाज के हर एक व्यक्ति की समस्या उन्हें अपनी समस्या लगती है, फिर जुट जाती हैं समस्या का समाधान करने। वृद्धाश्रम में ऐसी ही एक माया बीजी की समस्या सामने आती है। रात के तीन बजे माया बीजी की साँसें उखड़ रही थीं, उस वक़्त उन्होंने अपना कठोर निर्णय सब को सुना दिया की उनकी मृत्यु की सूचना बेटे को न दी जाए। उनका अपना घर अब आश्रम ही है, आश्रम में ही उनका अंतिम क्रिया-कर्म किया जाए। पति की मृत्यु के बाद बेटे और बहू के दुर्व्यवहार की वजह से माया बीजी आश्रम में रहने को मजबूर हो गई थीं। अब अपने अंतिम समय में माया बीजी ने अपने पास रखा थोड़ा-बहुत सोना, फिक्स डिपॉज़िट और कैश बीस हज़ार रुपये पंचनामा करवा कर आश्रम को दान कर दिया। अंतिम साँसें ले रही माया बीजी पुत्र मोह से उबर न सकीं और अपने अंतिम समय में उसका नाम लेकर पुकारने लगी। आश्रम में मौजूद सभी लोगों ने पुत्र को फ़ोन करके बुलाने के बारे में सोचा, ताकि बीजी जाते वक़्त अपने बेटे से मिल सकें। बेटे से बात होने पर उसने बेरुख़ी से जवाब दे दिया कि, शायद हो सकता हैं मेरी उनसे मुलाकात न हो पाए, दिल्ली बहुत दूर हैं। मेरी तरफ़ से आप लोग ही उनका क्रिया-कर्म कर दीजिएगा। जो कुछ भी ख़र्च होगा वह आकर मैं दे दूँगा। बेटे के ऐसे जवाब से निरुपाय अब नीलम को ही उनका बेटा बनाकर उनसे फ़ोन पर बात करवाई गई। रिसीवर उनके कान के पास लगाया गया और अपने बेटे की आवाज़ सुनकर अचानक आँखें खोल दीं और फिर उसी वक़्त वह अपनी देह से मुक्त हो गईं। सप्ताह बाद जब बेटे और बहू आए तो माया बीजी की जमा पूँजी की माँग करने लगे, तब आश्रम वालों ने माया बीजी का पंचनामा उनके सामने धर दिया। पंचनामा देख कर बेटा तमतमा उठा और उनके ख़िलाफ़ केस फाइल करने की धमकी देने लगा। तब चित्रा जी ने उसके गाल पर तीन-चार थप्पड़ जड़ दिए, और वॉच मैन को बुला कर उन्हें बाहर निकाल दिया। जाते-जाते भी वह धमकी देने लगा। उसकी धमकी सुन कर आश्रम वाले कहने लगे कि- "पिंड नहीं छोड़ेगा यह, दीदी। इस नकटौरे से सामना करना ही पड़ेगा। करेंगे। वैसे, यह बूढ़े भी कम नहीं। औलादों का मोह नहीं छोड़ पाते।" इस प्रसंग के माध्यम से चित्रा जी ने वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या से रूबरू करवाया है। आज के समय में अधिकतर परिवार में बूढ़े माता-पिता किसी को अच्छे नहीं लगते। चाहे अपनी सारी संपत्ति ही उनके नाम क्यों न कर दें। अपने बेटे और बहू के निर्मम व्यवहार की वजह से वह अंतत: वृद्धाश्रम में रहने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उनकी मृत्यु पर न तो उन्हें कोई दु:ख होता है, न अपने किए पर कोई पछतावा। यह स्थिति शायद वह लोग तब समझ पाएँगे, जब उनके बेटे उन्हें वृद्धाश्रम भेजेंगे।

इस तरह नकटौरा उपन्यास सांप्रत समय में, समाज में व्याप्त विभिन्न प्रश्नों की एक ऐसी शृंखला है, जिसकी कड़ियाँ एक-दूसरे से जुड़ कर समाज की नब्ज़ को पकड़ते हुए समाधान की दिशा में अग्रसर होती हैं। इस उपन्यास के माध्यम से चित्रा जी समाज के हर वर्ग की तह में जाकर उनकी बखिया उधेड़ती हैं और बदलाव के मंज़र की ओर इशारा करती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

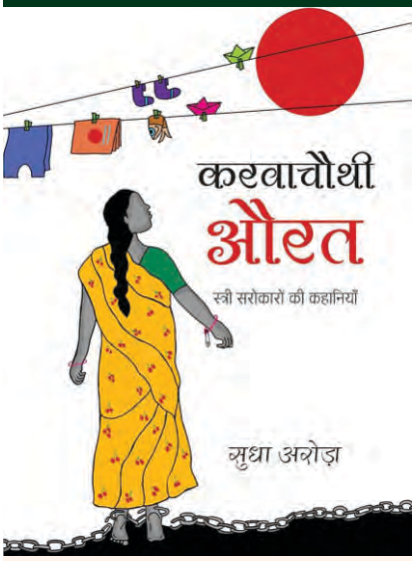

(कहानी संग्रह)

करवाचौथी औरतें

समीक्षक : निर्मला डोसी

लेखक : सुधा अरोड़ा

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान

निर्मला डोसी
मोबाइल- 93224 96620
ईमेल- nirmaladoshi1953@gmail.com

चर्चित कथाकार, कवयित्री और चिंतक सुधा अरोड़ा की कहानियों का नया कथा संग्रह 'करवाचौथी औरत' आया है। संग्रह की पहली कहानी 'बुत जब बोलते हैं' एक बेहद मार्मिक कहानी है जिसे पढ़ कर पाठक एक बारगी ख़ुद बुत बन जाता है। डॉक्टर अभिभावकों का जुनून की हद तक यह मानकर चलना कि उनके बच्चे भी डॉक्टर ही बनें बेशक उनकी सारी रचनात्मक प्रतिभा ऑपरेशन टेबल के औज़ारों के बीच दम तोड़ दे, यह आज का जाना-पहचाना सच है। छोटे बेटे अभिजित के माध्यम से कथा विस्तार पाती है जिसे अपनी माँ के डॉक्टरी पेशे से विमुख हो जाना समझ नहीं आता। अल्प आयु में बड़े भाई का दिवंगत हो जाना परिवार में पतझड़ ला देता है जिसका सबसे ज्यादा असर माँ पर है। अंत में यह कहानी आपको स्तब्ध कर देती है।

'पीले पत्ते' कहानी स्त्री की दो पीढ़ियों की व्यथा की गहरी कथा है। उसे लोग 'पगली अम्मा' कहते हैं। प्यार के लिए बेतहाशा तरसी हुई औरत की ज़िंदगी कब किस तरह पटरी पर से उतर गयी कि वह बोलना तक भूल गयी। बेटी पर उस चोट का असर दूसरी तरह से हुआ। बहुत कम शब्द ख़र्च करके, दो चरित्रों के माध्यम से, लेखिका माँ और बेटी- दोनों के दर्द से पाठकों को बख़ूबी अवगत करवा देती हैं और यही इस कहानी की ख़ूबी है। 'उधड़ा हुआ स्वेटर' मन की कोमल भावनाओं की बारीक पकड़ की कथा है, जो पाठक के अंतस को छूकर उसके स्मृति पृष्ठों में हमेशा के लिए जगह बना लेती है। कहानी का परिवेश जाना-पहचाना है। पात्रों का परिचय वार्तालाप और कथा का समापन भी स्वाभाविक है, किंतु एक बिंदु पर आकर कहानी मानवीय संवेगों का अद्‌भुत रहस्य खोल देती है और लेखिका के क़लम की हद को अनहद कर देती है। मात्र एक अपनत्व भरा स्पर्श कितना कुछ संप्रेषित करने की कुव्वत रखता है।

'महानगर की मैथिली' लेखिका की प्रारंभिक कहानियों में से एक है। ग़ौरतलब यह है कि लगभग आधी सदी पहले लिखी कहानी के भाव-भाषा, शिल्प-शैली में ज़रा सा भी कच्चापन नहीं है। कामकाजी माता-पिता बड़े शहरों में एकाकी परिवारों में रहते हैं, उनके दुधमुँहे बच्चों का बचपन किसी 'सखूबाई' के, किसी 'तारा बाई' के रहमोकरम पर परवान चढ़ता है। माँ का कलपता, कसकता कलेजा चाह कर भी बीमार बच्ची को पनाह नहीं दे पाता। नौकरी छूटने की तलवार हर वक्त उसके गले पर धरी होती है। यह कहानी भी एक टीस के साथ समाप्त होती है और सोचने के लिए अनगिनत सवाल छोड़ जाती है। 'बगैर तराशे हुए' एक प्रेमी और प्रेमिका के मनोविज्ञान की कथा है जिसमें प्रेमी लेखक है और प्रेमिका सेल्स गर्ल।

अन्नपूर्णा मंडल का जीवन से हार जाना और जुड़वाँ बेटियों को अपनी माँ को सौंपते हुए यह लिखना कि 'ये बड़ी होने पर आसमान छूना चाहें तो यह जानते हुए भी कि वे आसमान को कभी छू नहीं पाएँगी, इन्हें रोकना मत।' अर्थात् औरत के जीवन का शाश्वत सच जल्दी ही पहचान गयी वह बाँकुड़ा के बाँस पुकुर की लड़की। जिसे माँ बाप ने बीए की सालाना परीक्षा में बैठने नहीं दिया और ब्याह दिया रेलवे के स्थाई सरकारी नौकरी वाले वर के साथ। भेज दिया हज़ारों किलोमीटर दूर मुंबई महानगर में, जहाँ हार गयी अन्नपूर्णा मंडल अपने जीवन से। 'अन्नपूर्णा मंडल की आख़िरी चिट्ठी' कहानी को मुद्राराक्षस ने 'छोटे आकार की महा गाथा' यूँ ही नहीं कह दिया। एक-एक वाक्य में बड़ी शिद्‌दत से गूँजते सच की टंकार कलेजे में बजती है।

'एक औरत तीन बटा चार' एक बेहद चर्चित कहानी है। लेखिका नारी मनोविज्ञान की सिद्धहस्त चितेरी हैं और शब्दों की लगाम उनके हाथ में है। ज़ाहिर है उनकी रचनाओं में शब्द पूरी मुखरता के साथ कथा वस्तु का वितान रचते हैं और उसमें गुंफित चित्र पाठक अपनी कल्पना में देखने लग पड़ता है। 'एक औरत तीन बटा चार' को ही लें। कहानी में पति पुरुष को 'साहब' कह देना भर कथा का 'कर्टन रेजर' दिखा देता है। इस कहानी की औरत क़स्बे की नहीं महानगर की है। बहरहाल, औरत कहीं की भी हो उसके जीवन का आरंभ, मध्य और अंत घर की चार दिवारी के भीतर सिर्फ 'साहब' के इर्द-गिर्द बग़ैर किसी पटाक्षेप के घटता चला जाता है।

'तेजस्विनी की मौत पर माँ का बयान' में- 'आप पूछेंगे कि उसकी मौत का ज़िम्मेदार किसे ठहराया जाए तो मेरी उँगली अपने आप पर ही उठेगी' तेजी की माँ का यह इकरार पाठकों को

अचंभित करेगा ही, क्योंकि माँ ने अंतर्मुखी बेटी के अंतस को कभी जाना ही नहीं। उसके न रहने पर धारों-धार बहते आँसुओं के लिए भी उसकी बेबाक कैफ़ियत- 'कभी-कभी हत्यारों को खुद भी पता नहीं होता कि वे कर क्या रहे हैं।' यह एक माँ के कलेजे में उठती कचोट की कथा है। बेटी खिलने की उम्र में ही मुरझाने की तैयारी कर चुकी थी और अंतत: झड़ ही गयी, तब उसे चेत आया। सचमुच माँएँ भी कभी-कभी अनजाने में कैसी कसाई हो जाती हैं। बेटी को पराए घर टोरा नहीं कि उससे जुड़ी सारी चीज़ें फेंक-फूँक देती हैं। छोटी सी कथा कितने सवाल छोड़ जाती है कि पढ़ने के बाद संवेदनशील पाठक स्तब्ध रह जाता है।

सुधा अरोड़ा के बारह साल के लंबे मौन के बाद जन्मी थी कथा- 'रहोगी तुम वही'। इस बेहद छोटी सी चार पन्नों की कहानी में लंबा मौन खुलकर सामने भी आया है। आम ढर्रे से हटकर एका-लाप संवाद शैली में लिखी गयी यह कहानी सतही तौर पर देखने पर हास्य व्यंग्य की छटा बिखेरती हुई, एक पति के औसत संवादों की और रोजमर्रा की स्थितियों की कहानी लग सकती है पर निरंतर ऐसी स्थिति में रहने वाली स्त्री के शरीर व मन पर कितने दूरगामी और घातक परिणाम हो सकते हैं इसका तो अंदाज़ भी नहीं लगाया जा सकता।

'रहोगी तुम वही' कहानी का विस्तार है 'सत्ता संवाद' जहाँ कमाऊ औरत बोल रही है और उसका कवि, कलाकार पति चुप है। औरत सिर्फ तभी बोलती है जब उसके पास अर्थ की सत्ता हो। आख़िर हर समाज में वर्चस्व का निर्धारण अर्थसत्ता से ही होता है। इस कहानी में हरफन मौला कलाकार मिज़ाज का पति घर की ज़िम्मेदारियों से परे अपनी ही हवाई दुनिया में मस्त रहता है 'रहोगी तुम वही' में पति ग़ैर ज़िम्मेदारी की तोहमत पत्नी पर लगाता है तो 'सत्ता संवाद' में पत्नी पति पर, इसमें कोई संदेह नहीं अलग तरह से लिखी गयी ये दोनों कहानियों को पढ़ने या फिर इसकी नाट्य रूप में प्रस्तुति देखने से मनोरंजन के साथ-साथ खरी और खारी सच्चाइयों की घुट्टी गले के नीचे उतरती है।

'करवाचौथी औरत' की सविता के साथ परिवार के किसी सदस्य की सहानुभूति नहीं है। न बेटियों की, न उनके पिता की और न पालतू कुत्तिया लॉपी की ही। सबको सब कुछ अपने मन मुताबिक समय पर चाहिए बेशक उसे जुटाने वाली सविता, पूरे दिन से भूखी प्यासी बेहाल ही क्यों न हो। थक हार कर चाँद निकलने पर वह चाँद को अर्घ्य देती है और वर माँगती है कि उसे अगले जन्म में मनुष्य योनि की जगह घर की पालतू कुत्तिया ही बना देना!

'ताराबाई चॉल : कमरा नंबर एक सौ पैंतीस' एक कामगार मज़दूरिन की कहानी है। एक दुर्घटना में पति की मौत के बाद आईना देखते हुए उसने वक्ष पर सूखे घाव की पपड़ी को उँगली से जरा सा खरोंचा तो खून की लाल बूँदें छल-छलाने लगी। उसका भ्रम था कि घाव सूख रहे हैं पर वे अभी भी गीले थे। नारी उत्पीड़न की मार्मिक कथा है 'ताराबाई चॉल'। हिंसक पति की मौत के बाद भी वह खुद को मुक्त नहीं महसूस कर पाती क्योंकि उसके रग-रग में जमा संस्कारों का सनातन सच उसे आजादी की साँस लेने ही नहीं देता। ऐसी नारी जाति का उद्धार करे भी तो आखिर कौन, जब वह पीड़ा में ही सुख तलाशने का संस्कार नहीं छोड़ पाती।

'डेजर्ट फोबिया उर्फ समुद्र में रेगिस्तान' अर्थात एक टीस जो आँखों में रेत सी हर वक्त रड़क रही है। 'एक औरत : तीन बटा चार' की तरह ही यहाँ भी लेखिका ने पति को 'साहब' संबोधन दे कर कहानी का बयान किया है। मात्र दो संवादों में कही गयी कहानी अपने भीतर कितना कुछ समेटे है। वह कथा नायिका जो अपना नाम तक भूल चुकी है, अचानक एक पूर्व सहपाठी के मुँह से अपना नाम सुनकर पूरी तरह ढह जाती है और उस नाम से गले मिलकर अपने को जी भरकर बिखर जाने देती है। छोटी सी कहानी तीन बच्चों वाले विधुर से ब्याहने वाली एक लड़की के जीवन का बहुत बड़ा कैनवास समेटे है।

'छोटी हत्या बड़ी हत्या' कहानी का सच सनातन है। भले शहरों में दृश्य थोड़ा बदला है लेकिन भारत का बहुसंख्यक समाज गाँवों में निवास करता है और गाँव का कमो-बेश सच यही है कि कन्या भ्रूणों की समाधि माँ के पेट में ही बनती है या फिर जनमते ही उन्हें मौत की नींद सुला दिया जाता है। मरी बच्ची के लिए दो बूँद आँसू का अर्घ्य देना भी अभागी माँ को नसीब नहीं। डेढ़ पन्ने की यह कहानी अपने कलेवर में कितना विराट् और चीर देने वाला सच समेटे है।

'तीसरी बेटी के नाम' इस कहानी का परिवेश अलग पर अंतिम नियति वही, जो उसके लिए तयशुदा थी। मेधावी सुनयना रूप रंग शिक्षा संस्कार सब में अव्वल, उसको तो राजकुमार मिलना ही था और मिला भी, लेकिन सुनयना के गले में मंगलसूत्र पहना कर वह राजकुमार, राजकुमार नहीं रहा, पति बन गया। पति अर्थात् मालिक, घणी, जो उसे सीढ़ी बनाकर ऊपर उठता गया और उसे तहखाने की क़ैद में धकेलता गया। सुनयना को सज़ा तो मिलनी ही थी। पति से ऊँचा उठने की सजा, बगावत करने की सज़ा, अपने सपनों को सच में बदलने की सज़ा, अपनी कोठरी से बाहर की दुनिया तक सुरंग खोदने की सज़ा और उसने सुनयना के उड़ान भरते पंखों को कतर कर झोंक दिया जलती आग में।

कथा संग्रह की सभी कहानियाँ बेहद विश्वसनीय कथानक को लेकर सच्ची और सारगर्भित रचनाएँ हैं जो पाठक को आदि से अंत तक न केवल बाँधे रखती हैं अपितु विस्मय विमुग्ध भी करती हैं। कहीं आँखें नम होती हैं, कहीं मुस्कान भी आती है। कथाएँ हों या कविताएँ, सुधा अरोड़ा की सभी रचनाएँ गहरे शोध, अनुभव और सरोकार का निचोड़ प्रतीत होती हैं। भाषा का सौंदर्य, कलात्मक अभिव्यक्ति, छवियों और बिंबों के प्रयोग से भली भाँति परिचित लेखिका हिंदी कथा साहित्य का एक सिद्धहस्त और प्रतिष्ठित नाम यूँ ही नहीं हैं। उनकी कहानियों के विषय जितने खरे हैं, उससे ज्यादा खारे हैं। 'करवाचौथी औरत' संग्रह उसकी जीवंत बानगी है।

000

पुस्तक समीक्षा

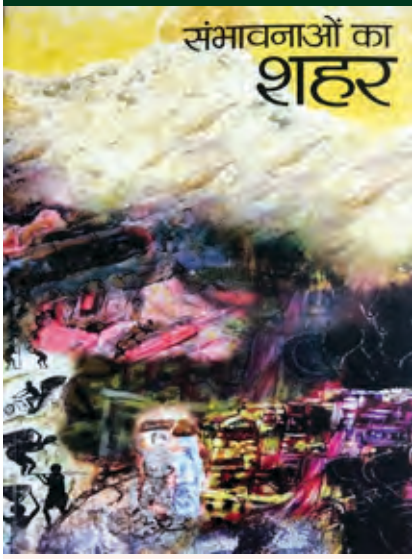

(कविता संग्रह)

संभावनाओं का शहर

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : सुशील स्वतंत्र

प्रकाशक : शब्दारंभ प्रकाशन, दिल्ली

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी-ए, जिला - हजारीबाग
झारखण्ड - 829108
मोबाइल - 9931117537
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

'संभावनाओं का शहर' कवि सुशील स्वतंत्र का पहला कविता-संग्रह है जिसमें 56 कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्यिक वेब पोर्टल्स पर प्रकाशित हो चुकी हैं। सुशील स्वतंत्र की कविताएँ असीम संभावनाओं की तलाश के क्रम में जन्मीं बेचैनी की कविताएँ हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए पाठक के मन में उम्मीदों का महासागर उफान मारने लगता है। कवि जीवन के हर पहलू में सकारात्मक संभावना को तलाशता है। यही कारण है कि इनकी कविताएँ उम्मीद जगाती हैं। शहर में अनेक संभावनाएँ विराजमान रहती हैं और उसे अपने अनुरूप चुनने की आज़ादी भी होती है। लेकिन इसके लिए पैनी नज़र होनी चाहिए। इनकी कविताएँ शहरी और क़स्बाई जनजीवन के सम्मिश्रण से बनी हुई हैं। सुशील स्वतंत्र असीम संभावनाओं के कवि हैं। भविष्य में इनसे बेहतरीन कविताओं की आशा है।

सुशील स्वतंत्र की कविताओं के बारे में प्रसिद्ध लेखक अशोक कुमार पांडे ने लिखा है "विडंबनाओं से भरे इस समय में कवि कर्म एक जटिल कर्म है। ख़ासकर तब, जब हर ओर एक शोर है कि कविता के पाठक नहीं हैं और इस शोर के साथ हर गली-चौराहे पर उपस्थित हुई समस्याएँ, जो अपनी निर्मिति में ग्लोबल हैं। एक तरफ आदमी की ज़िन्दगी को मुश्किल करते हुए बाहरी हालात तो दूसरी तरफ सामाजिक संरचना में उपस्थित सामंती तत्व, जो कभी खाप पंचायतों में तब्दील होते हैं, तो कभी दलितों, आदिवासियों, महिलाओं के साथ अत्याचार में अनुदित होते हैं। हमारे समय का कोई कवि इन सब से आँख मूँदकर सार्थक कवि कर्म नहीं कर सकता है। सुशील स्वतंत्र का यह संकलन इन्हीं विडंबनाओं से जूझने के क्रम में उपजीं कविताओं से बना है।"

'संभावनाओं का शहर' शीर्षक नामित कविता ने से ही मैं अपनी बात प्रारंभ करना चाहूँगा। कवि ने इस कविता के माध्यम से करना चाहा है कि दिल्ली जैसा शहर किस प्रकार खौफ़ और बेफिक्री के संतुलन के साथ जीने का अभ्यस्त हो चुका है। यहाँ चारों तरफ ख़ौफ़ का वातावरण

है, फिर भी ज़िंदगी अपनी पटरी पर चल रही हैं। कव्वाल बेख़ौफ़ सुना रहे हैं - सूफ़ियाना कलाम और प्रबुद्ध वर्ग के लोग और चमक रहे हैं। यही कारण है कि दिल्ली चौकस भी है और बेख़ौफ़ भी। कवि ने लिखा है -

"और / कॉफी हाउस में जुटी है / इंटेलेक्चुअल्स और कवियों की मंडली / एक-एक चुस्की में / एक-एक पहर सुड़कते हुए / संभावनाओं का शहर / दिख रहा है / चौकस भी बेख़ौफ़ भी"

'हाँफ रही है पूँजी' कविता के माध्यम से कवि ने पूँजीवाद के बढ़ते शिकंजे और उसके प्रभाव का वर्णन किया है। पूँजीवाद की चपेट में पूरी दुनिया आती जा रही है। यही कारण है कि दो राष्ट्रों के बीच की दूरियाँ बढ़ने लगी हैं। पूँजीवाद ने आज के विश्व को दो खेमों में बाँट कर रख दिया है। अब कई देश खेतों में अनाज की जगह हरवे-हथियार उगाने की जुगत में लग गए हैं। पूँजीवाद का इतना प्रभाव पड़ रहा है कि इसकी चपेट में पूरी दुनिया आ गई है। कवि ने लिखा है- "और जब पूँजी हाँफने लगती है / तब खेतों में अनाज की जगह बंदूकें उगाई जाती हैं / भूख के जवाब में हथियार पेश किये जाते हैं / परमाणु, रासायनिक, और जैविक"

'अनगढ़ पत्थर' कविता के माध्यम से कवि ने कृत्रिमता की जगह नैसर्गिकता को जगह दी है। पाषाण खंडों को हम विभिन्न शक्लों में छेनी-हथौड़े से आकार दे देते हैं, परन्तु उसमें प्राकृतिक सौंदर्य नहीं मिलता है। प्राकृतिक सौंदर्य के लिए पत्थर का अनगढ़ होना आवश्यक है। कवि अनगढ़ पाषाण खण्डों के माध्यम से उन वंचित-दमित जन समूहों की ओर भी इशारा कर रहे हैं जिन तक अभी तथाकथित विकास रूपी छेनी-हथौड़े नहीं पहुँचे हैं। आगे कवि का कहना है कि जब भी कभी परिवर्तन की लहर चलेगी तो यह अनगढ़ पत्थर रूपी वंचित समाज सबसे पहले चेतना से भरकर खड़ा हो जाएगा। कवि ने लिखा है - "जब भी कभी जीवन संगीत / इन पहाड़ों पर बजेगा / सबसे पहले उठ खड़े होंगे / ये अनगढ़ पत्थर / आकार से मुक्त और चेतन"

'एक मौत ही साम्यवादी है' कविता के माध्यम से कवि ने मौत को साम्यवादी कहा है। साम्यवाद में सभी को बराबरी का हक़ मिलता है। यही बात मौत के मामले में भी लागू होती है। जिसने जीवन पाया है उसकी मौत निश्चित है। मौत ग़रीबी-अमीरी नहीं देखती। कवि ने लिखा है - "भूख की लड़ाई में / एक के बाद एक / सबने अलविदा कहा / पिता, बड़ा भाई, माँ, चाचा / और वह जान पाया कि / हर काली रात / एक सुर्ख़ सुबह पर जाकर ख़त्म होती है /जहाँ सबके हिस्से में एक बराबर आती है मौत / इस क्रूर व्यवस्था में / एक मौत ही साम्यवादी है"

'सबसे ज़रूरी शर्त' कविता के माध्यम से कवि ने कहना चाहा है कि भूख वह चीज़ है जो लड़ने के लिए विवश कर देती है। कोई व्यक्ति कई दिनों तक भूखा रह सकता है, परन्तु उसकी भी एक सीमा है। इसके बाद व्यवस्था के ख़िलाफ़ उसके हाथ तो उठेंगे ही। इसके लिए सबसे ज़रूरी शर्त है- पेट का ख़ाली रहना। कवि ने लिखा है -

"तुम जानते थे / अच्छी तरह कि / तुम्हारे बदलाव की लहर में / मेरे पेट का ख़ाली रहना / सबसे ज़रूरी शर्त है"

'सेलिब्रेटी हत्यारा' कविता के माध्यम से कवि ने सवाल खड़ा किया है कि अगर कोई हत्यारा एक दिन सेलिब्रेटी बन जाए तो क्या उसे अनाथालय के उद्घाटन में फीता काटने के योग्य माना जाएगा? यह कविता बेबस अदालतों के चेहरे पर से भी पर्दा उठाती है, जब कवि सवाल पूछने वालों को कटघरे में खड़ा देता है। कवि ने लिखा है-

"नरसंहार, अपहरण / करता रहा वह / और धीरे-धीरे / सेलिब्रेटी बन गया"

'कविता का जन्म' कविता के माध्यम से कवि ने कवि की बेचैनी का ज़िक्र किया है। कोई कविता काग़ज़ पर उतरने से पहले उद्वेलित कर देती है। कवि बेचैन हो जाता है और अपनी बेचैनी को कागज़ पर शब्दों के माध्यम से लिखता चला जाता है, जो कविता का आकार ग्रहण कर लेती है। कवि ने लिखा है -"पहनाने लगता हूँ नग्न बेचैनी को / शब्दों का जामा / गढ़ता हुआ वाक्य-दर-वाक्य / कोसता हूँ निर्लज्ज बेचैनी को / जो नग्न हो जाती है / पुन: अगली पंक्ति तक जाते-जाते"

'तुम्हारी उँगली पकड़कर' कविता के माध्यम से कवि ने एक ऐसी माँ का ज़िक्र किया है, जो कई रूपों में अवतरित होकर समाज को कुछ-न-कुछ देती ही रहती है। वह अपने पति के संघर्षों में साथ देती है, तो पुत्र को स्नेह भी देती है। यह सब करते हुए वह अपने कर्मपथ से अलग नहीं होती है। कवि अपनी माँ की उँगली पकड़कर उनकी तपोभूमि में स्थित कोयला खदानों में जाना चाहता है, जहाँ संघर्ष करते हुए कोयला हीरा बन जाता है। कवि ने लिखा है -"जहाँ से तुमने लड़ाई शुरू की थी / तुम्हारी ऊँगली पकड़कर / एक बार कोलियरी के उन खदानों में चलना है / जहाँ संघर्ष की परिणति में / कोयला हीरा बन जाता है"

'भूख की कालिमा भारी है' कविता के माध्यम से कवि ने भूख की जंग लड़ने वाले लोगों की भयावह स्थिति का वर्णन किया है। कोयला खदानों से कोयला निकालकर पेट भरने वाले आसपास के लोग भूख और ग़रीबी में अपने जीवन को जीते हैं। इसके लिए उन्हें काफी श्रम करना पड़ता है। कवि ने लिखा है - "बहराल / झारखंड की सियासी सरगर्मियों / और कारोबारी उथल-पुथल से इतर / नेशनल हाईवे तैंतीस की ऊँची घाटियों से होकर / पेट की जंग में अँधेरे के विरुद्ध / बिना पैडल की / साइकिल वाले लोगों की / मुसलसल यात्रा जारी है / मतलब कोयले और अंधकार पर / भूख की कालिमा भारी है"

'संभावनाओं का शहर' कविता संग्रह की कविताएँ पाठकों को अपनी ओर बहुत सहजता से आकर्षित करने में पूरी तरह सफल हुई हैं। ज़्यादातर कविताएँ जिस स्थान पर पाठक को ले जाकर छोड़तीं हैं, वहाँ से पाठक मंथन के अपने सफ़र पर निकलता है। कवि ने अपनी कविताओं में ऐसे कई अनछुए विषयों पर कविताएँ लिखी हैं, जिन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है। कवि की पकड़ की बदौलत पूरी कविताएँ मुखर हो उठी हैं। कवि सुशील स्वतंत्र को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

000

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

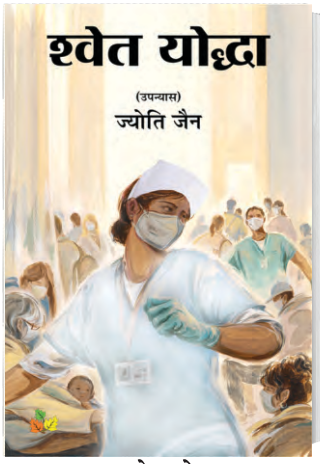

श्वेत योद्धा
उपन्यास
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

ऐ वहशते-दिल क्या करूँ
उपन्यास
लेखक - पारुल सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

टूटी पेंसिल
कहानी संग्रह
लेखक - हंसा दीप
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

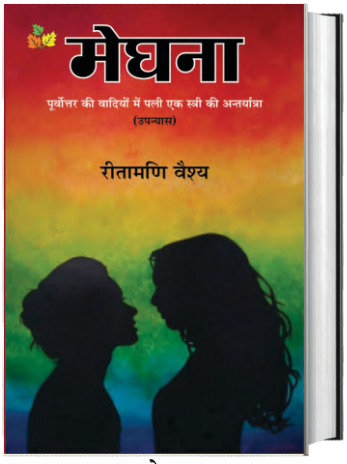

मेघना
उपन्यास
लेखक - रीतामणि वैश्य
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2024

पीली पर्ची
कहानी संग्रह
लेखक - शिवेन्दु श्रीवास्तव
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

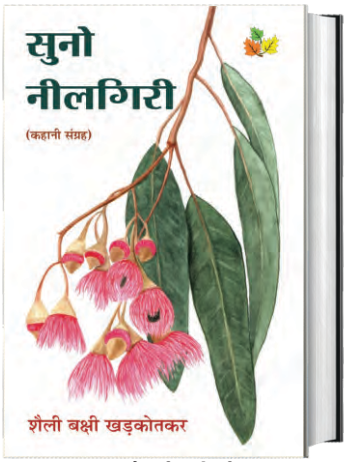

सुनो नीलगिरी
कहानी संग्रह
लेखक - शैली बक्षी खड़कोतकर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

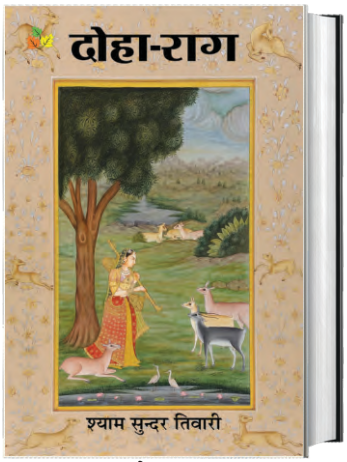

दोहा राग
दोहा संग्रह
लेखक - श्याम सुन्दर तिवारी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

कुछ चेहरे कुछ यादें
रेखाचित्र संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

व्यंग्य के नेपथ्य - 2
आलोचना
संपादक - प्रेम जनमेजय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

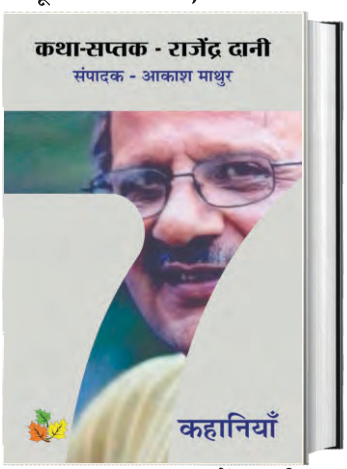

कथा सप्तक - राजेंद्र दानी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

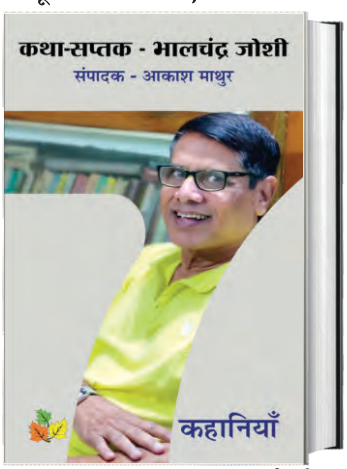

कथा सप्तक - भालचंद्र जोशी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

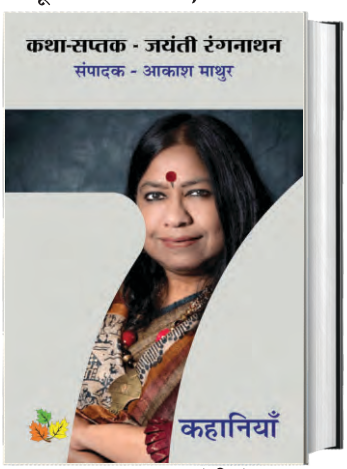

कथा सप्तक - जयंती रंगनाथन
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-8959446244 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● July-September 2024 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

शिवना नवलेखन पुरस्कार

शिवना नवलेखन पुरस्कार

शिवना प्रकाशन द्वारा नये लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए इस वर्ष से 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' की शुरुआत की जा रही है। यह पुरस्कार गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं- कहानी, उपन्यास तथा कथेतर विधा में प्रदान किया जायेगा। हर वर्ष किसी एक पांडुलिपि को ही यह पुरस्कार प्रदान किया जायेगा। पुरस्कृत पांडुलिपि तथा अन्य दो अनुशंसित पांडुलिपियों का प्रकाशन शिवना प्रकाशन द्वारा किया जायेगा। पुरस्कृत लेखक को नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में यह पुरस्कार प्रदान किया जायेगा तथा उसी समय पुस्तक का लोकार्पण भी किया जायेगा। अनुशंसित पुस्तकों का भी विमोचन उसी कार्यक्रम में किया जायेगा। वर्ष 2024 के लिए कहानी, उपन्यास तथा कथेतर (डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्तांत, रिपोर्ताज) विधाओं में पांडुलिपियाँ आमंत्रित की जा रही हैं।

पुरस्कार के लिये नियम तथा शर्तें-

1. पुरस्कार के लिए जिस वर्ष हेतु पांडुलिपि आमंत्रित की गयी है, उस वर्ष की 1 जनवरी को लेखक की आयु 40 वर्ष (प्रवासी लेखकों हेतु 45 वर्ष) से अधिक नहीं होनी चाहिए। पांडुलिपि के साथ आधार कार्ड की छायाप्रति संलग्न करना आवश्यक होगा।
2. लेखक की पहली किताब होनी चाहिए, इससे पूर्व उसकी किसी भी विधा की कोई किताब प्रकाशित नहीं होनी चाहिए। इस संबंध में एक स्व-हस्ताक्षरित घोषणा पत्र लेखक को पांडुलिपि के साथ भेजना होगा।
3. पांडुलिपि कम से कम चालीस हज़ार तथा अधिकतम अस्सी हज़ार शब्दों की होनी चाहिए। इससे कम या अधिक शब्द संख्या होने पर पांडुलिपि अमान्य कर दी जायेगी।
4. पांडुलिपि 15 अक्टूबर 2024 के पूर्व शिवना पुरस्कार के ईमेल shivna.awards@gmail.com पर प्राप्त हो जाना चाहिए। पांडुलिपि वर्ड डॉक में यूनीकोड फॉण्ट में टाइप होनी चाहिए। किसी अन्य फॉण्ट में होने पर स्वीकार नहीं की जायेगी।
5. पुरस्कृत लेखक को 11,000 रुपये (ग्यारह हज़ार रुपये) नगद राशि, पुरस्कार पत्र तथा 5,100 रुपये (पाँच हज़ार एक सौ रुपये) मूल्य की शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उनकी पुस्तक की प्रतियाँ प्रदान की जायेंगी।
6. दो अनुशंसित पुस्तकों के लेखकों को 5,100 रुपये (पाँच हज़ार एक सौ रुपये) मूल्य की शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उनकी पुस्तक की प्रतियाँ प्रदान की जायेंगी।
7. लेखक को पांडुलिपि के साथ पुस्तक के मौलिक, स्वलिखित तथा अप्रकाशित होने का हस्ताक्षरित पत्र भेजना आवश्यक है।
8. पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर लिखा होना चाहिए- 'शिवना नवलेखन पुरस्कार के लिए'।
9. प्रकाशित पुस्तकों के कॉपीराइट (प्रिंट, डिजिटल तथा ऑडियो) पाँच वर्ष तक लेखक तथा शिवना प्रकाशन के पास संयुक्त रूप से रहेंगे, इस अवधि में लेखक उस पुस्तक को अन्यत्र कहीं से प्रकाशित नहीं करवा सकेगा।
10. पुरस्कार के लिए अंतिम निर्णय निर्णायकों का होगा जो प्रतिभागियों के लिए मान्य होगा।
11. पुस्तक का प्रकाशन शिवना प्रकाशन के निर्धारित मापदण्डों के अनुसार किया जायेगा, उसमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन लेखक के अनुरोध पर नहीं किया जायेगा।
12. पुरस्कार के लिए एक पाँच सदस्यों की समन्वय समिति बनायी गयी है, लेखक पुरस्कार के बारे में और जानकारी प्राप्त करने के लिए उनसे संपर्क कर सकते हैं। समिति के सदस्य हैं-

सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका), ज्योति जैन (इन्दौर), शैलेन्द्र शरण (खण्डवा), पारुल सिंह (नई दिल्ली) तथा शहरयार (सीहोर)।

संपर्क- शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

दूरभाष- 07562-405545, व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.awards@gmail.com

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।